अक्टूबर, १९५२
तुला २००९

भाग ७६
संख्या १

वार्षिक मूल्य
तीन रुपए

प्रति अंक
पाँच आने

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh for use in Schools, Colleges and Libraries

विज्ञान के नियम

१—वार्षिक मूल्य ३) तथा प्रति अंक का ।=) है

२—प्रतिमास प्रथम सप्ताह में विज्ञान प्रकाशित होता है।

३—ग्राहक किसी भी मास से बनते हैं।

४—वार्षिक मूल्य सदा दो एक मास पूर्व अग्रिम भेजने से ।=) वी. पी. व्यय की बचत हो सकती है।

५—नमूने की प्रति माँगने पर या बिना मांगे भी ज्ञात पतों पर मुफ्त भेजी जाती है।

लेखकों से निवेदन

१—लेख किसी भी विषय के वैज्ञानिक 'पक्ष' पर होना चाहिए।

२—लेख मनोरंजक और सुबोध होना चाहिए।

३—कागज पर एक ओर ही सुपाठ्य लिखना चाहिए।

४—चित्र सदा काली स्याही से बने होने चाहिए। हल्के या अन्यरंग में बने चित्रों का ब्लाक नहीं बन सकता।

५—लेख भेजने के दो मास पश्चात् भी न छपने पर स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य तीन रुपये, एक संख्या का मूल्य पाँच आने।

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५

भाग ७६ | तुला २००६; अक्टूबर १६५२ | संख्या १

हिन्दी में वैज्ञानिक ज्ञान-कोश

वैज्ञानिक ज्ञान-कोश की महत्ता बताने की आवश्यकता नहीं है । विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में जो कुछ तथ्य ज्ञात हो सके हैं तथा जिन शोधों के कार्य में विशेष प्रगति हो चुकी है उनकी रूप-रेखा, सैद्धान्तिक बातें, मानव-हित के लिए उनकी उपयोगिता, खोजों तथा आविष्कारों के विवरण सरल और सुबोध रूप में लिखित या मौखिक रूप में जनता तक पहुँचाना वैज्ञानिकों या उनके कार्यों का विशेष मर्म जान सकने वाले विद्वानों का कर्तव्य होता है। विज्ञान परिषद् का उद्देश्य इस दिशा में ही कार्य करना है । मौखिक रूप से प्रचार का तो विशेष आयोजन नहीं हो सका है परन्तु लिखित साहित्य तथा "विज्ञान" मासिक का हम बराबर प्रकाशन करने का उद्योग करते रहते है ।

वैज्ञानिक साहित्य के प्रचार का कार्य विशेष रूप से बढ़ाने के लिए परिषद् ने थोड़े समय में ही एक बृहद् वैज्ञानिक ज्ञान-कोश प्रकाशित करने का निश्चय किया है जो जनवरी १९५३ तक छप कर तैयार हो जायगा और कानपुर के परिषद् के अधिवेशन के समय प्राप्त हो सकेगा । उसकी निम्न विशेषतायें होंगी :—

(१) विज्ञान के आकार के लगभग १००० पृष्ठों में विज्ञान के सभी विषयों का समावेश होगा ।

(२) विषय सरल तथा साधारण पाठकों के समझने योग्य तथा स्नातक श्रेणी तक के छात्रों को लिए भी उपयोगी रूप में प्रतिपादित होंगे ।

(३) चित्रों की बहुलता रख कर विषय मनोरंजक तथा सुबोध बनाए जाएँगें।

(४) विज्ञान विषय के चोटी के विद्वानों का इस वैज्ञानिक ज्ञान-कोष के लेखन तथा सम्पादन में सम्यक सहयोग होगा। लेखकों तथा विद्वानों के निर्देश के लिए हम अपनी प्रस्तावित विषय-सूची भी साथ छाप रहे हैं।

विज्ञान के कुछ विद्वानों के नाम निम्न प्रकार हैं जिनसे वैज्ञानिक ज्ञान-कोश में लिखने तथा सहयोग देने का वचन अब तक मिल चुका है या मिलने की आशा है :—

डा० मेघनाथ साहा (कलकत्ता)
डा० हरिश्चन्द्र (अहमदाबाद)
डा० ए० एन० सिंह (लखनऊ)
डा० ब्रजमोहन (बनारस)
डा० चन्द्रिका प्रसाद (रुड़की)

तथा

प्रोफेसर नीलरत्न धर
प्रोफेसर श्री रंजन
प्रो० सालिग्राम भार्गव
डा० सत्य प्रकाश
डा० गोरख प्रसाद
डा० बी० एन० प्रसाद
डा० राम कुमार सकसेना
श्री श्री चरण वर्मा
डा० उमा शंकर
डा० देवेन्द्र शर्मा
डा० दिव्य दर्शन पन्त
डा० राम दास तिवारी
डा० हीरा लाल दुबे
डा० रमेश चन्द्र कपूर आदि

इस वैज्ञानिक साहित्य-प्रचार के शुभ कार्य में हम सरकार से ग्रांट मिलने की आशा रखते हैं। देश के विद्या-प्रेमी उदारमना सज्जनों तथा धनिक पुरुषों को हम इस योजना में पुष्कल धन दान करने के लिए आमंत्रित करते हैं।

हम ऐसे बृहद् आयोजन को विद्या-प्रेमी धनिकों की आर्थिक सहायता तथा विद्वानों द्वारा लेखन रूप में क्रियात्मक सहयोग के बिना पूर्ण करने में समर्थ नहीं हो सकते। अतएव सभी उदार सज्जनों को अपनी शक्ति भर इस कार्य के लिए दान देने तथा वैज्ञानिकों और अधिकारी विद्वानों को विज्ञान के विभिन्न अंगों पर सरल रूप में लिखने के लिए हम इस विज्ञप्ति द्वारा सूचना दे रहे हैं। हमारे सभापति श्री० हीरालाल जी खन्ना, आर्य नगर, कानपुर इस सम्बन्ध में धन एकत्र करने तथा उप-सभापति डा० गोरख प्रसाद इस ग्रंथ के लिए लेख लिखवाने में विशेष उद्योगशील हैं। हमें आशा है कि इनकी कर्मठता से हम अपने इस उद्योग में अवश्य सफल होंगे।

वैज्ञानिक ज्ञानकोश के मुख्य विषय-विभाग

कृषि और डेयरी

वनस्पति विज्ञान

रसायन विज्ञान

इंजिनियरिंग

भूगर्भ, भूभौतिक विज्ञान तथा भूगोल

गणित, ज्योतिष

चिकित्सा विज्ञान

युद्ध विज्ञान

भौतिक विज्ञान

जन्तु विज्ञान

उद्योग

विभिन्न विषय

विस्तृत विषय-सूची

Poison
Power alcohol
Putrefaction
Quinine
Radium
Radioactivity
Silver
Sugars
Sulphuric acid
Taste
Tin
Vitamins
Water
Waxes
Zinc

Engineering

Baloons and aeroplanes
Boiler
Bridge
Canals
Cranes
Drainage
Dynamos
Engineering,
– –, chemical
– –, electrical
– –, mechanical
– –, naval
– –, radio
Firebridge
Fly wheel
Fuse
Gearing
Harbour
Housing and town planning
Irrigation
Lighthouse
Machines
Material, building
Railways
River
Roads
Salvage
Sewerage
Seasounding
Shipbuilding
Signal
Steam engine
Steam turbine
Telephone
Tractors
Tunnel
Welding
Windmill

Geology Geophysics, Geography Etc.

Earth
Earthquake
Geography
Geophysics
Geological Survey
Geology
Glacial period
Glaciers
Gravitations
Gulfstreams
Gyroscope
Igneous rocks
Latitude
Longitude
Lightning
Mines and minerals
Mountains
Oceanography
Ore deposits
Paleonography
Paleontology
Peat
Petrography
Petroleum
Rain
Rainbow
Sea
Silurian system
Snow
Stone age
Storms
Tides
Water
Wind

Mathematics, Astronomy

Algebra
Analysis
Analytical Geometry
Arithmetic
Astronomy
Astrophysics
Calculating machine
Calculus
Comets
Differential Equations
Dynamics
Eclipses
Fluidity
Fourieres theorem

Galaxies
Geometry
– –, noneucleadian
Harmonics
Hindu Mathematics
Hydrodynamics
Hydrostatics
Logarithms
Moon
Observatories
Planets
Probability
Relativity
Satellites
Stars
Statics
Statistics
Sun
Telescopes
Trigonometry
Variables and nonvariables
Vectors

Medicine

Anaesthesis
Anatomy
Antibiotics
Ayurvedic system
Bacteria
Bone
Brain
Cancer
Cataract
Cholera
Cerebrospinal fluid
Choloroform
Chromopathy
Colour
Delirium
Dentistry
Diet
Digestion
Diphtheria
Dipsmania
Disease
Drugs
Dreams
Epilopsy
Dysentary
Ear
Epidemics
Eugenics
Eye disease
Fever
Fibrin
Foetus
Food
Fracture
Germ theory
Glands, diseases of
Hallucination
Hand
Hindu medicine
Hipjoints
Heart
Hormones
Hospitals
Hydrophobia
Hygiene
Hysteria
Insanity
Light therapy
Malaria
Memory, diseases of
Naturopathy
Nervous system
Nose
Nursing
Penicillin
Plague
Poison
Quinine
Radio therapy
Respiration
Rontgen rays
Sex
Skin
Skull
Small pox
Spinal chord
Stomach
Surgery
Sweating system
Taste
Teeth
Typhoid
Tubercle
Tuberculosis
Unani medicine
Vaccination
Veneral diseases
Vitamins

Military Science

Artillery
Blasting bomb
Bombs
Canons

पृथ्वी का अन्तर्भाग

श्री० महाराज नारायण मेहरोत्रा एम० एस-सी०

[पृथ्वी की रचना का विषय बड़ा ही मनोरंजक है। इस विषय पर यह पहला लेख आंतरिक रचना के सम्बन्ध में प्रकाशित किया जा रहा है। इस निबंध के लेखक का० वि० वि० के प्राध्यापक श्री मेहरोत्रा द्वारा लिखित सरल रूप में लिखे हुए अन्य लेख अन्य अंकों में प्रकाशित किए जाएँगे।]

वैज्ञानिक खोजों की सहायता लेकर मनुष्य वायुमण्डल को भेदने तथा महासागर में बैठने में सफल हुआ परन्तु पृथ्वी के अन्तर्भाग में उसकी पहुँच अनुमान तक ही सीमित है। पृथ्वी के अन्तर्भाग का जो कुछ भी ज्ञान हमें उपलब्ध हो सका है, बहुत कुछ भूचालित लहरों तथा संछिद्रों (Bore holes) के अध्ययन पर ही निर्भर है।

पृथ्वी का अर्धव्यास लगभग ४००० मील है, और अधिक से अधिक गहराई जहाँ तक मनुष्य की पहुँच हो सकी है केवल तीन मील—अर्थात नहीं के बराबर। इसलिये पृथ्वी के अन्तर्भाग का साक्षात ज्ञान बहुत ही सीमित है।

बड़ी-बड़ी खदानों तथा संछिद्रों (Bore holes) के अध्ययन तथा संचित ज्ञान के समालोचन से दो मुख्य बातों का पता चला :—

(१) पृथ्वी के अन्दर गहराई के साथ-साथ तापक्रम की वृद्धि।
(२) पृथ्वी के अन्दर गहराई के साथ-साथ घनत्व का बढ़ाव।

तापक्रम की वृद्धि

तापक्रम में वृद्धि का सबसे अच्छा प्रमाण संछिद्रों (Bore holes) तथा खदानों का अध्ययन करने से मिलता है। ज्यों-ज्यों हम नीचे जाते हैं तापक्रम की वृद्धि प्रत्यक्ष मालूम होती है। खदानों में अधिक नीचे उतरने पर पसीना बहने लगता है। औसतन प्रति ३० या ३५ मीटर पर १० सेंटीग्रेड तापक्रम बढ़ता है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर यह वृद्धि भिन्न-भिन्न हैं, जैसे अमेरिका में ४२ मीटर में १ डिगरी तथा युरुप में ३०—मीटर में एक डिगरी।

इनके अतिरिक्त गर्म पानी के झरनों तथा ज्वालामुखी के अध्ययन से भी पृथ्वी के भीतर के ताप का पता चलता है। यदि ५० मीटर पर ही १ डिगरी के अन्तर का हिसाब लगाया जाये तो भी पृथ्वी के केन्द्रीय भाग (Core) का तापक्रम कम से कम १३०० डिगरी सेंटीग्रेड होगा।

पृथ्वी की सतह में भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न तापक्रम वृद्धि निम्नलिखित कारणों से है :—

(१) चट्टानों की संवाहिता शक्ति (Conductivity) अलग-अलग है। रवेदार चट्टानें (Crystalline rocks) ताप की सबसे अच्छी संवाहक है।

(२) तेजोद्गर पदार्थ (Radioactive substances) कहीं-कहीं पर संग्रहित हो जाने के कारण भी तापक्रम औसत से अधिक बढ़ जाता है।

घनत्व का बढ़ाव

पृथ्वी का औसत घनत्व ५.५ है। पृथ्वी के पृष्ट का घनत्व २.७—२.६ है। इससे ज्ञात होता है कि पृथ्वी के केन्द्रीय भाग (core) का घनत्व ५.५ से कहीं अधिक है।

भूचालित लहरों के अध्ययन से भी ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी के केन्द्रीय भाग का घनत्व बहुत अधिक है।

उल्कांशों (meteorites) की जाँच से जो कि दूसरे ग्रहों से टूटकर पृथ्वी पर गिरे हैं, यह पता चलता है कि पृथ्वी का मध्य भाग भी उन्हीं वस्तुओं का बना है जो कि

उल्कांशों के अन्दर पाई गई हैं, जैसे लोहा, निकल आदि। इन वस्तुओं का घनत्व अधिक है। (लोहा = ७-५)

पृथ्वी के अन्तर्भाग की दशा

इसके उपरान्त हमें पृथ्वी के अन्तर्भाग की दशा पर विचार करना है। अन्तर्भाग ठोस है, या तरल है, या गैसीय है।

डारविन, डैली आदि वैज्ञानिकों के विचारानुसार पृथ्वी का अन्तर्भाग ठोस है। लार्ड कैलविन नामक वैज्ञानिक ने दो अन्डे लेकर, जिनमें एक उबला हुआ था और दूसरा बिना उबला हुआ, यह दिखाया कि केवल उबला हुआ अन्डा ही घूम (rotate) सकता है (क्योंकि इसके भीतर का भाग ठोस है) पृथ्वी भी सुचारु रूप से चक्कर लगाती है और अपनी कीली पर घूमती है, यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि पृथ्वी का भीतरी भाग ठोस हो।

इसके अतिरिक्त पृथ्वी के भीतरी भाग का घनत्व ११ के लगभग है। इतने अधिक घनत्व की वस्तु कोई ठोस ही हो सकती है।

इसके विपरीत कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथ्वी में गहराई के साथ-साथ तापक्रम वृद्धि का हिसाब लगाने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वी के पृष्ठ से २० मील नीचे प्रत्येक वस्तु तरल के रूप में होनी चाहिये। बड़े-बड़े ज्वालामुखियों में तरल लावा के ढेर (जो पृथ्वी के अन्दर से निकलते हैं) भी इस बात की पुष्टि करते हैं।

पहले कुछ वैज्ञानिकों का विचार था कि पृथ्वी के केन्द्रीय भाग में गैसें (Gases) हैं। यही गैसें चरम तापक्रम (Critical Temperature) से ऊपर होने के कारण ठोस के समान व्यवहार करती हैं।

पृथ्वी के कवचों (Shells) के विषय में भी भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। प्राचीन लोगों की यह धारणा थी कि पृथ्वी का सारा भाग समांग है केवल मध्य भाग पिघला हुआ है।

डाना ने पृथ्वी को दो कवचों का बना हुआ बतलाया है, एक सिलीकेट चट्टानों का और दूसरा लोहे का।

गोल्डस्मिथ ने पृथ्वी के चार भाग किये हैं :—

१. सिलीकेट परत (Silicate layer)—१२० किलोमीटर
२. एक्लोगाइट परत (Eclogite layer)—१२०० "
३. सल्फाइड्स तथा आक्साइड्स (Sulphides and Oxides)—२६०० "
४. लोहे तथा निकल से बना केन्द्रीय भाग { Core of Ni fe }

ग्राक्ट (Gracht) के अनुसार भी पृथ्वी के चार कवच हैं।

१. ग्रेनाइट तथा गैब्रो (granite & gabbro)—६० किलोमीट
२. पैरिडोटाइट (Peridotite)—१६०० "
३. पैलेसाइट (Pallasite)—३००० "
४. निफे (लोहा तथा निकल) (Nife)—६४०० "

वाशिंगटन के विचार में पृथ्वी का मध्य भाग उन तत्वों का बना है जिनके अणुभार (Atomic weights) बहुत अधिक हैं।

सारांश में भिन्न-भिन्न विचारों के अध्ययन के बाद भी किसी निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत कठिन है। पृथ्वी का केन्द्रीय भाग तरल है या ठोस है, पूरी दृढ़ता के साथ नहीं कहा जा सकता। तथापि अब अधिकांश वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि पृथ्वी का केन्द्रीय भाग अनुमानतः ठोस है। सरलता के लिये आधुनिक खोज तथा अध्ययन के ऊपर अवलंबित विचार नीचे दिया गया है :—

१—पृथ्वी का $\frac{1}{8}$ भाग (केन्द्रीय भाग) लोहा तथा निकिल मिश्रित धातुओं का बना है और इसका धनत्व ११-६ है।

२—पृथ्वी का बाहरी भाग ($\frac{1}{8}$० भाग) जो कि १००० मील मोटा है, सिलीकेट चट्टानों का बना है।

३—पहले और दूसरे भाग के बीच का हिस्सा जो कि लगभग ८०० मील चौड़ा है और पूरी पृथ्वी का $\frac{1}{5}$ भाग घेरता है लोहा सिलीकेट चट्टानों का बना है।

बानर और उनका उपद्रव

लेखक—प्रेमदुलारे श्रीवास्तव, एम० एस०-सी०

[बन्दरों को हमारे देश में धार्मिक दृष्टि से हनुमान का अवतार ही मानते हैं, परन्तु उनसे मानव समाज को कितनी हानि होती है उसका वर्णन इस लेख में किया गया है।]

खाद्य समस्या भारत में दिनों दिन विकट होती जा रही है। इतनी कोशिशों के बाद भी भारत सरकार पैदावार बढ़ा कर देश को विशेष कर अन्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाने में अभी तक बराबर असफल ही रही है और प्रति वर्ष विदेशों से टनों अन्न मंगाना ही पड़ता है। खाद्य समस्या को हल करने का एक दूसरा उपाय यह भी है कि खाद्य पदार्थों को नष्ट होने से यथासम्भव रोका जाय और खाद्य-पदार्थों के नाश के कारणों को समूल नष्ट कर दिया जाय।

खेतों तथा गोदामों आदि में खाद्य पदार्थों को नष्ट करने वालों में कीड़े, पक्षी तथा अनेकों पशुओं के नाम उल्लेखनीय हैं जिनमें बन्दरों का मुख्य स्थान है। अतः यदि किसी तरह खाद्य पदार्थों की रक्षा बन्दरों से की जा सके तो खाद्य समस्या कम से कम अंशतः तो अवश्य ही हल हो जाय।

पूरे भारत में बन्दरों की संख्या लगभग साठ लाख है जिसमें से एक तिहाई अकेले उत्तर-प्रदेश ही में हैं। कहीं कहीं पर लाल मुंह वाले अर्थात साधारण बन्दर और कहीं कहीं पर काले मुंह वाले अर्थात लंगूर अधिक पाये जाते हैं, पर साधारण बन्दर संख्या और उपद्रव दोनों ही दृष्टि से लंगूरों से काफी आगे हैं।

बन्दर शक्ल-सूरत, बनावट तथा बहुतेरी आदतों में मनुष्य से मिलते-जुलते हैं। इनके तथा मनुष्य के आहार में तो बड़ी ही समानता होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि बन्दरों की कुल संख्या के बराबर संख्या के मनुष्यों का भोजन छिन गया। यही नहीं, ये जितना खाते हैं उससे कहीं अधिक नष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त ये कच्चे घरों और फूस की बनी झोपड़ियों को भी तोड़-फोड़ डालते हैं। ये कई स्थानों पर धूप में सुखाने के लिये फैलाये कपड़ों को भी उठा ले जाते हैं और फाड़ डालते हैं। कितनी ही बार ये मनुष्य के बच्चे तक को उठा ले गये हैं। इनके उपद्रव का दृश्य देखना हो तो कभी आप बस्ती और गोरखपुर की यात्रा करें। वहाँ आपको कोई भी खपरैल का ऐसा मकान न मिलेगा जिसे इन्होंने तोड़ने-फोड़ने में कोई कोर-कसर उठा रखी हो। कोई खेत या कोई बाग इनसे अछूता बचा न मिलेगा। अयोध्या के स्टेशन पर यात्रियों के हाथ से ये पूरी के दोने इस सफाई के साथ छीन लेते हैं कि यात्री खड़े देखते ही रह जाते हैं। चालाक ये इतने अधिक होते हैं कि आसानी से पकड़ाई में नहीं आते।

कोई चीज इनके खाने योग्य है या नहीं इसे वे सूंघ या चख कर पता लगा लेते हैं। साधारणतः ये अधपके फल व तरकारियाँ आदि अधिक पसंद करते हैं। गन्ने के खेत में मनुष्य ही की तरह घुसकर गन्ने तोड़ना और उसे चूसना इनके बाँये हाथ का खेल है। ज्वार, बाजरे और मक्के आदि की बालें, सेम, चना और मटर आदि की फलियाँ तथा केला, आम, अमरूद और जामुन जैसे फल इनके प्रिय भोजन हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में ये सेब और अखरोट के बगीचों को बड़ी करारी हानि पहुँचाते हैं। लौकी, कुम्हड़े और कच्चे टमाटर जैसे फलों को ये चख कर फेंक देते हैं। आलू, शकरकंद और गाजर जैसे भूमि के भीतर उगने

वाले खाद्य पदार्थों को ये खोदकर खा जाते हैं। सोया, धनिया और सौंफ आदि की महकदार पत्तियों को ये तोड़ कर सूंघते और कभी-कभी खा भी जाते हैं। भिंडी जैसे फल लिबलिबेपन, मूली शलजम, करैले तथा मिर्च कड़ुवेपन तथा अरुई या घुँइयाँ, बंडा, सूरन या जमींकंद खुजली उत्पन्न करने के कारण इनसे अछूते रह जाते हैं। खट्टे फल भी ये बहुत कम खाते हैं।

हमारे देश और समाज का दुर्भाग्य कि इतने हानिकर होते हुए भी इन्हें हनुमानजी की सन्तान मानकर पूजा जाता है। जहाँ मनुष्य के बच्चे दाने दाने को तरस रहे हों वहाँ बन्दरों को विधि पूर्वक चने, मूंगफली तथा हलवा पूरी की दावत दी जाय यह कहाँ तक न्यायोचित है?

काले मुंह वाले हनुमान की और लाल मुंह वाले बालि की सन्तान माने जाते हैं। कहीं-कहीं पर काले मुँह वालों का और कहीं-कहीं पर लाल मुँह वालों का अधिक सम्मान होता है। ये दोनों जातियाँ एक साथ नहीं रह सकतीं। हमारी भोली-भाली भारतीय जनता को झूठे धार्मिक बन्धनों में जकड़े रहने के कारण इन्हें मारने में बड़ी झिझक होती है। परन्तु शत्रु को मारने में कभी भी कोई दोष नहीं होता, चाहे शत्रु कोई भी हो। इतिहास इसका साक्षी है। बालि-सुग्रीव, रावण-विभीषण और कौरव-पांडव आखिर भाई-भाई ही तो थे फिर भी उनमें कितना घमासान युद्ध हुआ था। स्वयं रामचन्द्र जी ने ही बालि को बन्दर होते हुए भी उसकी अनीति के कारण अपने तीरों का शिकार बनाया था। फिर उन्हीं की सन्तान को मारने में हमें उलझन होना भला कहाँ तक युक्तिसंगत है?

इसके अतिरिक्त एक बात और है, वह यह कि हनुमान बालि व सुग्रीव आदि तो बन्दर थे ही नहीं। ये सब के सब वानर अवश्य थे। वानर का अर्थ होता है नर सदृष्य अर्थात मनुष्य की तरह और रामचन्द्र जी के सम्पर्क में आने के कारण ये अपनी बुरी आदतों को छोड़ कर मनुष्य हो गये। पूरी रामायण इनके वीरता पूर्ण और समझदारी के कामों से भरी पड़ी है। यहाँ आजकल एक क्षेत्र का मनुष्य दूसरे क्षेत्र के मनुष्य की बोली नहीं समझ पाता वहाँ मनुष्य व बन्दर दोनों एक दूसरे की बोली भली भाँति समझ लेते रहे हों इस पर सहसा विश्वास नहीं होता।

यह तो रहा बन्दरों का हाल। अब तनिक हमें उनसे बचाव के उपायों पर भी विचार करना चाहिए।

(१) बन्दरों की पूजा करना तथा उन्हें दावत खिलाना बन्द कर देना चाहिये, जिससे वे भूख की व्यथा से व्याकुल होकर कहीं और भाग जाँय।

(२) बन्दर कुत्तों से बहुत डरते हैं क्योंकि वे उन्हें अवसर मिलने पर घायल कर देते और कभी कभी मार भी डालते हैं, इसलिए कुत्तों का पालना कुछ अंश तक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(३) खेतों में यथासम्भव कुलफा, चौलाई तथा पालक आदि के साग, मूली मिर्च, अरुई, बंडा और सूरन इत्यादि बोना चाहिए क्योंकि इन्हें ये कम या बिलकुल ही हानि नहीं पहुँचाते। परन्तु इस नियम के पालन में अनेकों व्यवहारिक कठिनाइयाँ हैं; क्योंकि इस तरह अन्न जो मनुष्य के आहार का मुख्य अंग है, बोया ही नहीं जा सकेगा।

(४) कभी कभी ऐसा भी करते हैं कि खेत में किनारे की ओर थोड़ी दूर तक न खाये जाने वाली चीजें ही बोते हैं जिससे वे धोखे में पकड़कर भीतर की ओर उगने वाली फ़सल का पता न पा सकें परन्तु उसमें कठिनाई यह है कि इसका पालन वे ही कर सकते हैं जिनके पास कई और बड़े-बड़े खेत हों।

(५) काँटे भी बन्दरों से बचाव के अच्छे साधन हैं। गोरखपूर और बस्ती आदि ज़िलों में प्रायः बागों और खेतों के किनारे नागफनी लगा दी जाती हैं जो कुछ ही वर्षों में बढ़कर काफी घनी हो जाती है। मकानों की खपरैल और फूस की झोपड़ियों पर भी नागफनी उगाई जाती है। जहां ऐसा नहीं कर सकते वहाँ बबूल आदि की कांटेदार डालें काट-काट कर बिछा दी जाती हैं। परन्तु कभी कभी ये कांटों को भी सफ़ाई से हटा देते हैं।

(६) जहां तक सम्भव हो इन्हें पकड़ कर दूर जंगलों में छोड़ देना चाहिये जिससे ये फिर बस्ती में न लौट सकें। पर बन्दरों का एक जोड़ा भी अगर किसी तरह छूट गया तो उसी के सहारे फिर संख्या की वृद्धि हो जाती है। आज-

[शेष पृष्ठ १५ पर]

'भाखरा' संसार का विशालतम बांध

ले०—मार्गरेट वीत

[भाखरा बांध की पन-बिजली की योजना पूर्ण होने पर पूर्वी पंजाब की आर्थिक स्थिति पर विशेष प्रभाव डाल सकेगी। उसका विशद वर्णन इस लेख में दिया गया है।]

नांगल (पंजाब) आज हिमालय की श्रृंखलाओं में ५,००० व्यक्ति भारत के लिये सुख-समृद्धि के एक नये युग का निर्माण करने में जुटे हुए हैं। अत्यन्त विकट और संकटपूर्ण परिस्थितियों के बावजूद वे लोग वहाँ संसार के सर्वाधिक विशाल बांध के निर्माण-कार्य में संलग्न हैं।

भाखरा-नांगल बाँध योजना विशाल जल और विद्युत साधनस्रोतों को जुटाने और उनका उपयोग करने के सम्बन्ध में भारत की उत्कट अभिलाषा से परिपूर्ण एक साहसिक योजना है।

उपत्यका के बीच एक संकड़े मार्ग में बल खाती हुई सतलज नदी पर बाँध बन जाने से पंजाब राज्य में नहरों का एक जाल-सा बिछ जायगा और उनसे ६५ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई की जा सकेगी। इस से प्रतिवर्ष १३ लाख टन अतिरिक्त अन्न का उत्पादन होगा—अन्य की दुर्लभता से पीड़ित देश के लिये यह अन्न-राशि बड़ा महत्व रखती है।

भाखरा बांध की ऊंचाई ६८० फीट होगी और अमेरिका के बूल्डर बांध के बाद इसका दूसरा स्थान होगा। भाखरा बांध पर १२ बिजली घर बनाये जायेंगे और प्रत्येक बिजलीघर में ६३, ३३३ किलोवाट घंटा बिजली तैयार की जायगी। आशा है कि इस सस्ती बिजली से रासायनिक खाद के कारखानों सहित सभी प्रकार के कारखानों की स्थापना को प्रोत्साहन मिलेगा और उत्तरी भारत एक महान औद्योगिक प्रदेश के रूप में परिणत हो जायगा।

चार वर्ष पूर्व जब इस कार्य को आरम्भ किया गया था। उस समय इस क्षेत्र में पहुँचने और सामग्री ले जाने के लिये न तो कोई सड़क थी और न कोई रेलवे लाइन। मशीनों तथा अन्य सामग्री को, जिस में से अधिकांश विदेशों से खरीदी गई थी, इस क्षेत्र में पहुँचाना बहुत कठिन था और वे बहुत धीरे धीरे वहां पहुँच रही थीं। दो पहाड़ियों के मध्य जिस कटाव पर मुख्य बांध का निर्माण किया जा रहा है, वह बहुत ही विकट प्रदेश था—वह स्थान इतना अधिक ढालू था कि कहीं भी ऐसा समतल क्षेत्र दृष्टिगोचर नहीं होता था जहां इस काम को शुरू किया जा सके अथवा सामग्री को रखा जा सके।

फिर भी ८० इंजीनियरों और लगभग ५,००० मजदूरों के अनुपम सहयोग और अहर्निश प्रयत्नों के फलस्वरूप आज यह योजना काफी आगे बढ़ चुकी है और इस के १९५९ तक पूरा हो जाने की आशा की जाती है।

कुछ समय पहले इस कार्य को करने वाले व्यक्तियों में सब भारतीय थे। जनवरी में कुछेक अमेरिकी विशेषज्ञ भी भारत सरकार के कर्मचारियों के रूप में इन में शामिल हो गये। इस दल के नेता हार्वे स्लोकम का कहना है 'भारत सरकार और यहां की जनता के लिये यह सचमुच श्रेय की बात है कि उसने प्रत्येक वाधा और कठिनाई के बावजूद बिना किसी पूर्व अनुभव के इतनी बड़ी योजना को हाथ में लेने का साहस और दूरदर्शिता दिखाई।' श्री हार्वे स्लोकम ने अमेरिका के अनेक विशाल बांधों का निर्माण किया है।

कोलाहलपूर्ण क्रियाकलाप

योजना की ७०० एकड़ भूमि आज कोलाहलपूर्ण

कार्यों का स्थल बन चुकी है। कहीं खुदाई की मशीनों से काम लिया जा रहा है, तो कहीं क्रेनों की सहायता से बड़ी-बड़ी वस्तुओं को एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर रखा जा रहा है। मशीनों को ले जाने के लिये डीजल इंजनों की छक-छक तो कर्ण-कटु लगती ही है, पर हिमालय की शान्त और आकर्षक पहाड़ियों को उड़ाने के लिये किये जाने वाले बारूदी विस्फोटों से तो कान फट से जाते हैं।

दिन में तीन बार एक विशेष रेलगाड़ी मजदूरों को नांगल से भाखरा लाती है और उन्हें वापस ले जाती है। नांगल भाखरा से ८ मील दूर है और इस रास्ते को पैदल तय करने में लगभग ३ घंटे लग जाते हैं।

जब भाखरा-नांगल बांध का कार्य आरम्भ हुआ था, तब नांगल में केवल कहीं-कहीं छोलदारियां दीख पड़ती थीं, पर आज वह एक आधुनिक ग्राम जैसा नजर आता है—अब वहां ३ स्कूल, १ अस्पताल, २ बाजार, बड़े-बड़े वर्कशाप (जहां डीजल इंजन तक तैयार किये जाते हैं) अधिकारियों और मजदूरों दोनों के लिये क्रीड़ा भवन और बिजली तथा उद्यानयुक्त खुले मकान हैं।

नांगल का अपेक्षाकृत छोटा बांध बन कर तैयार हो चुका है। यह बांध ६५५ फीट लम्बा और ६० फीट ऊंचा है। जलागार के निकट सैकड़ों मजदूर ४० मील लम्बी मुख्य नहर को खोदने में लगे हुए हैं। १६५४ तक नहर और २ बिजलीघर बनकर तैयार हो जायेंगे। बाद में एक और बिजलीघर का भी निर्माण किया जायेगा।

किन्तु इन दिनों सब के मुख्य और कठिन कार्य भाखरा में चल रहा है, जहाँ सतलज नदी की दिशा बदलने के पर्वतीय कटाव के दोनों ओर ५० फीट व्यास की आध मील लम्बी दो सुरंगें तैयार की जा रही हैं।

उत्साही कार्यकर्त्ता

पहाड़ी चोटियों के कारण सुरंगें बनाने का काम बड़ा कठिन और खतरनाक है। इस कार्य में अब तक ३ व्यक्ति अपने प्राणों की बलि दे चुके हैं और १७ आहत हो चुके हैं। किन्तु सभी संकटों और बाधाओं के बावजूद निरीक्षकों और मजदूरों दोनों का उत्साह उनकी निरन्तर सफलताओं का सूचक है।

दायीं ओर की सुरंग के इन्चार्ज इंजीनियर श्री एस० सी० कटोच को इस क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों का एक नमूना कहा जा सकता है। वह इस कार्य को तब से कर रहे हैं, जब कि यह क्षेत्र बीहड़ जंगल था। उनका कथन है 'मुझे नहरों तथा अन्य कार्यों का काफी अनुभव है। किन्तु इससे पहले मैंने सुरंग बनाने का काम कभी हाथ में नहीं लिया था। इस कार्य से मुझे नित नया सबक मिला है। कभी-कभी मैं तड़के ही भाखरा आ जाता हूँ और आधी रात तक यहाँ रहता हूँ। नांगल में मेरी पत्नी और चार बच्चे रहते हैं, किन्तु मेरी हालत ऐसी है मानो मैं अपने परिवार का सदस्य नहीं रहा हूँ—मेरा सारा ध्यान इस सुरंग पर ही केन्द्रित रहता है।'

कठिन कार्य

इंजीनियरिंग की दृष्टि से, इस बांध का निर्माण-कार्य अत्यन्त कठिन और श्रम-साध्य है। इसका निर्माण नदी-तल से ६८० फीट की ऊंचाई पर किया जायगा। इसे कंकरीट से बेजोड़ बनाना आवश्यक है, क्योंकि यदि बांध में जरा सा भी छिद्र हो गया तो सारा पंजाब जलमग्न हो जायगा।

बांध के निर्माण का विचार सर्व-प्रथम १६०८ में ब्रिटिश सेना के एक इंजीनियर के मन में उठा था। किन्तु जांच पड़ताल करने वालों का कहना था कि इस क्षेत्र में बांध का निर्माण करना बड़ा खतरनाक काम है। १६४६ में इस योजना पर फिर विचार किया गया, पर विभाजन के कारण तत्सम्बन्धी प्रयत्न बीच में ही रह गये।

वर्तमान योजना के अनुसार, बांध के निर्माण में ५० लाख घन गज कंकरीट और २६ करोड़ ६० लाख पौंड इस्पात की आवश्यकता होगी।

भाखरा-नांगल योजना पर १ अरब ५६ करोड़ ८० व्यय होंगे। इस योजना का संचालन पंजाब सरकार की देखरेख में किया जा रहा है और केन्द्रीय सरकार ने इस के लिये ऋण दिया है। योजना का व्यय पंजाब राजस्थान और पेप्सू वहन करेंगे क्योंकि इस से इन तीनों राज्यों को ही सीधा लाभ पहुँचेगा।

बांध के दूसरी ओर ४१ मील लम्बी झील में सतलज के पानी को इकट्ठा किया जायगा और निश्चित परिमाण

में बांध के जरिये सारे साल उसका उपयोग लिया जाता रहेगा।

इस बांध के बन जाने का एक मुख्य लाभ यह होगा कि उत्तर भारत में लम्बे रेशे वाली कपास उगाई जा सकेगी। कपास के लिये यहां का जलवायु अनुकूल है। इस से भारत की कपड़ा-मिलों को काफी परिमाण में रूई उपलब्ध हो सकेगी और साथ ही इससे विदेशी मुद्रा का प्रश्न भी बहुत कुछ हल हो जायेगा।

इस योजना का दूसरा लाभ यह होगा कि इस क्षेत्र में कोयले के बजाय बिजली से रेलगाड़ियाँ चलाई जा सकेंगी। रेलगाड़ियां चलाने के लिये कोयला बिहार से लाना पड़ता है और वह बिजली की तुलना में बहुत मंहगा पड़ता है।

इस योजना से लगभग १२॥ करोड़ भारतीयों को प्रत्यक्ष और बहुत से अन्य व्यक्तियों को अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुँचेगा।

इस प्रकार विविध राज्यों में चालू की गयी अनेक बहुद्देशीय नदी-घाटी योजनाओं के इस अंग—भाखरा बांध से भारत को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने में बड़ी सहायता मिलेगी।

बन्दर और उनका उपद्रव

[पृष्ठ १२ का शेषांक]

कल वैज्ञानिक खोजों के लिये भी बन्दर विदेशों को भेजे जाने लगे हैं।

(७) नर बन्दरों को बधिया कर के छोड़ देना चाहिये जिससे वे सन्तानोत्पादन के योग्य न रह जायँ। जब गोमाता की सन्तान बछड़ों को बधिया किया जा सकता है तो बन्दरों को बधिया करने में क्या दोष है? पर यदि कहीं एक भी नर बिना बधिया किये रह गया तो वह सारे बधिया नरों की कमी पूरी कर देगा।

(८) परन्तु व्यवहारिकता के विचार से इनसे बचाव का सबसे अच्छा उपाय है इन्हें गोली से उड़ा देना। इसमें धार्मिक अंधविश्वास की अड़चनें अवश्य हैं पर वे सफल प्रचार द्वारा दूर की जा सकती हैं। यदि हमारी सरकार भी मध्यप्रदेश और पूर्वी पंजाब की प्रान्तीय सरकारों की भांति प्रति बन्दर इनाम के रूप में कुछ पैसे नियत कर दे तो आर्थिक कठिनाई के इस युग में धार्मिक ढकोसलों के रोड़े स्वयं ही हट जाँय।

आशा है हमारी भारतीय जनता बन्दरों को गोली का निशाना बनाने के सही रास्ते को अपना कर व्यावहारिकता का परिचय देगी और खाद्य समस्या को हल करने में हमारी सरकार की सहायता करेगी।

—:o—

भा-क्रमवाद

[ले० रामजी शर्मा, एम० एस० सी०, साहित्यरत्न]

[पुष्पोत्पत्ति का नियंत्रण कर सकने वाली प्रति क्रियाओं तथा वाह्य साधनों का विशद वर्णन इस लेख में किया गया है। इसी संबंध का वसन्तीकरण शीर्षक लेख अगले अंक में प्रकाशित होगा।]

यह सर्व विदित है कि प्रत्येक प्राणी कुछ काल के बाद वयस्कता (Adolescence) को प्राप्त होता है। वयस्क होने पर उसमें प्रजनन शक्ति का उदय होता है। केवल जन्तु-जगत में ही नहीं, प्रत्युत उद्भिज्जगत में भी यही क्रम दिखाई पड़ता है। प्रत्येक पौधा कुछ काल तक केवल वर्धि-वार्धक्य (Vegetative growth) को प्राप्त होता है और उस वर्धि-काल (Vegetative period) के समाप्त हो जाने पर उसके प्रजनन-काल का प्रारंभ होता है। जन्तु जगत के विरुद्ध, जिसमें प्रजनन काल एक ार प्रारम्भ होने पर मृत्यु पर्यन्त यथावत् अवस्थित रहता है, उद्भिज्जगत में पौधे का पूरा जीवन वर्धि (Vegetative) और प्रजनन Reproductive) काल के व्यवस्थित क्रमों से परिपूर्ण होता है। वर्धि और प्रजनन काल के इन क्रमों के अनुसार पौधों की दो कोटियाँ हैं।

(१) प्रथम तो वे जिनमें एक निश्चित वर्धि-काल समाप्त करने के बाद प्रजनन काल प्रारम्भ होता है और एक बार प्रजनन-क्रिया के बाद पौधे का जीवन समाप्त हो जाता है। ऐसे पौधे अपने जीवन-काल में केवल एक बार ही पुष्पित-फलित होते हैं। ऐसी कोटि में वे पौधे आ जाते हैं जिन्हें हम प्रतिवार्षिक (Annuals) या द्विवार्षिक (Biennials) कहते हैं।

(२) द्वितीय कोटि में वे पौधे आते हैं जो चिरकालिक (Pereunials) होते हैं। ये एक निश्चित वर्धिकाल के बाद प्रजनन के योग्य हो जाते हैं और तब इनके जीवन में वर्धि और प्रजनन के कालों का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। ये प्रतिवर्ष एक निश्चित ऋतु में फूलते-फलते हैं। प्रायः सभी वृक्ष (Trees) और क्षुप (Shrubs) इसी कोटि में आते हैं।

अब प्रश्न यह है कि इस प्रजनन काल का उद्भव कैसे और इसके क्रम का नियंत्रण किस प्रकार होता है? जन्तु जगत में इस विषय पर यथेष्ट अनुसन्धान हो चुका है और उसके आधार पर हम यह कह सकने के योग्य हैं कि वयस्कता शरीर के रक्त में अन्तर्दैहिक - ग्रन्थियों (Eudocrine glands) द्वारा निसृत एक विशिष्ट-रस, जिसे 'यौन-अन्तरानुरस' (Sex hormone) कहते हैं, के कारण होता है। अन्तरानुरस (Hormone का विज्ञान नवीन हैं और प्रगति की ओर उन्मुख है। जन्तु-जगत में इसकी सत्ता सिद्ध हो जाने पर भी हम उद्भिज्जगत में इसके आस्तित्व से अनभिज्ञ हैं। इसकी स्थिति पौधों में अभी तक प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है, परन्तु इस दिशा में किए गए प्रयोग एवं अनुसंधान द्वारा यही प्रतीत होता है कि पौधों में भी प्राणियों के यौन-अन्तरानुरस के सदृश ही कोई अन्तरानुरस है जो पौधों को पुष्पित करता है और जिसे हम पुष्पीयअन्तरानुरस (Flowering hormone) कह सकते हैं।

उपर्युक्त दृष्टिकोण को सामने रखकर वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययन को हम दो भागों में बांट सकते हैं, एक तो वे जो पौधों पर प्रभाव डालने वाले वाह्य-उपकरणों

(Environmental factors) के अध्ययन से संबन्ध रखता है, दूसरा वह जो पौधों के प्रजनन काल के समय हुए परिवर्तनों से सम्बन्धित है। द्वितीय कोटि का अध्ययन भी चार कोटियों का है।

१—प्राकारकी (Morphological) जिसमें यह देखा जाता है कि पुष्पोद्भव काल के समय पौधे में कौन-कौन से वाह्य-आकारिक परिवर्तन होते हैं। पौधों की अनेक जातियों, विशेषकर द्विवर्षियों, में प्रायः पौधे का पूरा स्वभाव एवं आकार पुष्पोद्भव के समय बदल जाता है। चुकन्दर, बीटा मैरीटाइमा भेद रापा (Beta maritima var Rapa) में वृद्धि के प्रथम वर्ष में चौड़ी पत्तियों का एक सघन-गुच्छ उत्पन्न होता है जो शर्करा उत्पादन का कार्य करते हैं। वह शर्करा जड़ों में जमा होती जाती है। दूसरे वर्ष एक लम्बा शाखायुक्त प्रकाण्ड उत्पन्न होता है जिसमें पतली पत्तियां और पुष्प लगते हैं। प्रायः सभी वृक्ष पुष्पोत्पत्ति के पूर्व पत्तियाँ गिरा देते हैं और वे केवल नग्न ठूंठ से प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार के अनेक अन्य परिवर्तन भी दीख पड़ते हैं।

२—शारीरिक (Histological) द्वारा पुष्पोत्पत्ति के समय पौधे के आन्तरिक ऊतियों (Tissues) में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। विशेष कर एधूति (Cambium) पर पुष्पोद्भव का यथेष्ट प्रभाव देख पड़ता है। भाक्रमों द्वारा पुष्पोद्भव में शीघ्रता होने से एधूति का पृथक्करण (Differentiation) भी शीघ्र हो जाता है। यही अवस्था सरसों में भी देखी गई है जब कि पुष्पोद्भव को 'बसन्तीकरण' (Vernalization) द्वारा शीघ्रता प्रदान किया गया है (चक्रवर्ती, १९५२)। विल्टन (१९३८) और स्ट्रकमेयर (१९४१) के अनुसार पुष्पोद्भव के समय एधूति की क्रियाशीलता शिथिल पड़ जाती है और अनेक जातियों में एकदम बन्द हो जाती है। परिणाम स्वरूप एक प्रजनन काल के बाद पौधा मर जाता है। ऐसे पौधे वार्षिकी होते हैं।

३—कोशीय (Cytological) अध्ययन द्वारा पुष्पोत्पत्ति काल में व्यक्तिगत कोशों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन होता है।

४—प्राणकीय (Physiological) एवं प्राणयरसायनिक (Biochemical) अध्ययनः—इसके द्वारा पौधे में चेतनता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्राण क्रियाओं (Physiological activities), रासायनिक पदार्थों एवं उनके आपसी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यह इस प्रकार के अध्ययन का विशिष्ट क्षेत्र है। पुष्पोद्भव का स्पष्ट प्रभाव, कार्बनडाई-ऑक्साइड विनिमय (Co_2 exchange) के ताल पर (रॉवर्ट्‌स व क्रान्स १९३४; रॉवर्ट्स, क्रान्स व लिविङ्गस्टन १९३७); दैनन्दिन वृद्धि-गति और अहोरात्रि वृद्धि-क्रम पर (ओवरकैश १९४१); मूल-वृद्धि एवं मूल-अनुपात पर (रॉवर्ट्‌स व स्ट्रकमेयर, १९४६); वर्णाणु (pigment) पर (रावर्ट्‌स ?) तथा खनिज-घनत्व (Mineral pattern) पर (स्ट्रकमेयर १९४३) देखे गए हैं।

इन बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'उद्भिद प्राणज्ञ' (plant physiologist) के पास केवल एक मार्ग है और वह यह कि पौधे के वाह्य-उपकरणों में प्रायोगिक परिवर्तन करें और उसके प्रभावों का अध्ययन किया जाय। इस प्रकार के अध्ययन हुए हैं और उसके परिणामस्वरूप हमारे पास पर्याप्त ज्ञातव्य बातों का भंडार है। मुख्यतः हमारे अन्वेषण का आधार दो मार्गों पर है जिससे कि वाह्य-उपकरणों (Environmental factors) और पुष्पोत्पत्ति के गुणों के सम्बन्ध में प्रकाश पड़ता है। यद्यपि अभी अनेक वाह्य-उपकरणों की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का, जिनसे कि पुष्पोत्पत्ति का नियंत्रण होता है, ज्ञान अधूरा सा ही है। परन्तु आशा है कि भविष्य में हम इसके रहस्य को समझने में सफल होंगे। प्रथम मार्ग वह है जिसका दिग्दर्शन जर्मन उद्भिज्ञ 'गैसनर' (Gassner) ने १९१८ में किया और जो अब बसन्तीकरण' (Vernalization) के नाम से अभिहित है। दूसरा 'गार्नर' व 'एलर्ड' (१९२०) द्वारा उद्भूत हुआ जिसे 'भाक्रमवाद'(photoperiodism) कहते हैं। 'ग्रेगरी' व 'पर्विस' के कार्यों में इन दोनों मार्गों का समन्वय हो गया है। बाद में 'मेल्चर्स' के प्रयत्न भी इसी ओर हुए।

'गार्नर' व 'एलर्ड' का अनुसन्धान भी अन्य अन्वेषणों की भाँति एकाएक ही सम्पन्न हुआ। तम्बाकू के एक तुषार-

पाती जातित्व (Frost susceptiple strain) को प्रयोग-शाला में उत्पन्न करने के प्रयत्न में ही उसे यह ज्ञात हुआ कि यह पौधा केवल शरद के छोटे दिनों में ही उत्फुल्ल हो सकता है चाहे वह जब भी बोया जाय। फिर उसने ग्रीष्म के लम्बे दिनों में पौधे को अंधेरे में रख कर प्रकाश-काल को घटाया और साश्चर्य देखा कि पौधा ग्रीष्म में भी प्रफुल्लित हो उठा। उसने अन्य पौधे पर भी; उन्हें कृत्रिम प्रकाश या अंधेरे में रखकर तत्परिणामभूत प्रकाश काल को बढ़ा या घटाकर, यही प्रयोग किए और इन प्रयोगों से उसने पौधों को तीन कोटियों में बाँटा :—

१—प्रथम तो वे जिन्हें पुष्पित होने के लिए लम्बे दिनों वा प्रकाश काल की आवश्यकता थी और जिनका पुष्पीकरण छोटे दिनों और लम्बी रातों से रुक जाता है।

२—दूसरे वे जिन्हें पुष्पित होने के लिए छोटे दिन और लम्बी रातों की आवश्यकता थी।

३—और तीसरी श्रेणी में वे पौधे थे जिनके पुष्पीकरण पर प्रकाशकाल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

क्रमशः इन तीनों को हम 'अतिभा' (Long day) 'अनुभा' (Short day) और 'भाऽप्रभावित' (Day neutral) पौधे कह सकते हैं। यहीं कारण है कि पौधों के पुष्पोत्पत्ति का काल ऋतु से नहीं प्रत्युत दिन और रात्रि की अवधि से अधिक सम्बन्धित हैं। रात्रि-दिवस की यह अवधि अक्षांश के अनुसार नियमित है न कि ऋतु के।

'गार्नर' व 'एलर्ड' ने पुष्पोत्पत्ति का लक्षण कलिका-स्फोटन को माना और उसके पूर्व के 'वृद्धिङ्गत-विन्दु' (Growing point) पर होने वाले पुष्प के प्रावृद्धि अवस्थाओं पर ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत; 'क्लेब्ज' (Klebs १६१८ जो कि प्रकाश और ताप को प्रधान प्रभावी उपादान मानता है, तीन 'वर्धमान अवस्थाओं' (Developmental phases) का वर्णन करता है।

१—पुष्पीय पक्वता (Ripeness to flower वह अवस्था है जिसके उपरान्त अनुकूल उपादान पाने पर पौधे में फूल आने लगते हैं। यह गुणात्मक परिवर्तन है जिस पर केवल ताप का प्रभाव होता है और जो प्रकाशकाल से असम्बन्धित हैं।

२—पुष्प-प्राद्भव (Initiation of Flower premordia) वृद्धिङ्गत विन्दु पर पुष्प बनने का प्रथम दृश्य परिवर्तन (Visible change) है, अतः यह परिमाणात्मक परिवर्तन है जिसे अनुवीक्षण से देखा जा सकता है।

३—पुष्पवृद्धि एवं स्फोट (Flower formation and opening अनन्तर की दृश्य अवस्थाएँ हैं। इसी अन्तिम अवस्था को 'गार्नर' व 'एलर्ड' ने पुष्पोद्भव का लक्षण माना था।

इन तीनों अवस्थाओं में 'पुष्प प्राद्भव' ही पुष्पोद्भव का प्रधान लक्षण है, क्योंकि इसी अवस्था में यदि आवश्यक उपादान मिलते हैं तो पुष्पविकास होता है, अन्यथा केवल वर्धिप्रांकुर (Vegetative shoot) ही बन पाता है। 'पर्विस' (१६३६) के खोजों के अनुसार 'आइपोमिया हिरसुटा' (Ipomea hirsuta) में लम्बे दिनों के कारण वर्धमान कलिका तो बनती हैं पर उनसे केवल वर्धि-प्रांकुर ही उत्पन्न हुए। 'फैजियोलस मल्टीफ्लोरस (Phaseolus multiflorus) में छोटे दिन द्वितीय अवस्था (पुष्पप्राद्भव काल) को शीघ्रता प्रदान करते हैं परन्तु तृतीय अवस्था (पुष्पवृद्धि) के लिए लम्बे दिनों की आवश्यकता पड़ती है। अतः आजकल पुष्पप्राद्भव काल ही पुष्पोत्पत्ति का प्रथम लक्षण माना जाता है और इसी अवस्था का अनुवैक्षिक अध्ययन पुष्पोत्पत्तिकाल जानने का प्रमुख साधन बन गया है।

विभिन्न उद्भिज्जातियों के लिए पृथक-पृथक अवधि वाले रात्रि और दिनों की आवश्यकता पड़ती है, जिससे कि वे पुष्पित हो सकें। रात और दिन का एक चक्कर २४ घंटे में पूरा होता है। इस २४ घंटे में अंधेरे और उजाले का अनुपात भिन्न-भिन्न हो सकता है। इस प्रकाश और अन्धकार के चक्कर को 'भा-स्फुरण-क्रम' (photo-inductive' cycle) भी कहते हैं। 'जैन्थियम पेन्सिलवैनिकम (Xanthium Pennsylvanicum) १६ या अधिक घंटों के प्रकाश और ८ या कम घंटों के अंधकार के क्रमों में अनिश्चित काल तक केवल वर्धि-अवस्था (Vegetative stage) में ही रहता है (हैमनर), परन्तु यदि उसे केवल एक क्रम, ६ से अधिक घंटों के अंधकार और १५

से कम घंटों के प्रकाश में रख दिया जाय तो पुष्पोद्भव प्रारम्भ हो जाता है, जो एक वर्ष तक बना रहता है। एक दूसरा 'अनुभा-पौधा' "ग्लाइसीन मैक्स भेद विलोक्साइ" (Glycine max var. biloxi) इन भाक्रमों के प्रति कम संवेदनशील होता है और केवल एक क्रम पुष्पोद्भव के लिए पर्याप्त नहीं होता। न्यूनतम पुष्पप्रांकुर ९ घंटों के प्रकाश और १५ घंटों के अंधकार वाले कम से कम दो भाक्रमों के बाद उत्पन्न होते हैं और भाक्रमों की बढ़ती हुई संख्या के अनुसार ही पुष्पप्रांकुरों की संख्या भी बढ़ती जाती है (हैमनर)। कम से कम ७ ऐसे भाक्रमों की आवश्यकता है जिसके बाद पौधे में भाक्रम निरपेक्ष पुष्पोद्भव होने लगता है।

यह बात ध्यान देने की है अत्यधिक क्षीण प्रकाश भी प्रकाश काल को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त होता है— एक फुट कैण्डिल प्रकाश ही पुष्पोद्भव के लिए प्रायः सभी उद्भिज्जातियों के लिए पर्याप्त होता है। अतिभा उद्भिदों के लिए भा तैक्ष्ण्य (Iight intensity) और प्रांगार-अन्तर्वेशन (Carbon assimilation) में कोई सम्बंध स्पष्ट नहीं होता, परन्तु अनुभा उद्भिदों के लिए कोई न कोई भारतीय प्रक्रिया (photo chemil reaction) लक्षित होती है जो कार्बन-डाई-आक्साइड (co_2) को ग्रहण करने से सम्बधित है, क्योंकि सोयावीन को यदि प्रकाशकाल में कार्बन डाई-ऑक्साइड रहित वायु में रक्खा जाय तो पुष्पोद्भव नहीं होता (बॉर्थविक पार्कर)

जैन्थियम (अनुभा उद्भिद) के बारे में यह देखा गया है कि पुष्पोद्भव के लिए ३० मिनट या इससे अधिक का प्रकाश काल लम्बे अंधकार काल के पूर्व ही प्रयुक्त होना चाहिए। यदि अन्धकार काल के बाद प्रकाश काल प्रयुक्त किया जाता है तो कोई परिणाम नहीं होता। अतःअनुभा उद्भिदों के लिए एक अल्पकालीन प्रकाश काल की आवश्यकता होती है जिसके बाद एक लम्बा अंधकार काल प्रयुक्त होना चाहिए। यदि इस अन्धकार काल को थोड़े से ही प्रकाशकाल (तीव्र प्रकाश के कुछ सेकेण्ड) से भंग कर दिया जाता है तो पुष्पोद्भव नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकाश काल में कोई ऐसा रसायनिक पदार्थ उत्पन्न होता है जिसकी पूर्ति अन्धकार काल में होती है और जो अन्धकारकालीन अपनी क्रियाओं के समय थोड़े से ही प्रकाश से नष्ट हो जाता है।

इसके विपरीत अतिभा उद्भिदों के लिए अन्धकार काल का होना आवश्यक नहीं। ऐसे पौधे अनवरत प्रकाश काल में भी पुष्पित हो सकते हैं। परन्तु एक बात ध्यान देने की है कि प्रत्येक पौधे के लिए एक निश्चित प्रकाश काल की आवश्यकता होती है जिसे "सन्तुलन काल Critical period) कहते हैं। चुकन्दर के लिए यह सन्तुलन-भाक्रम (Critical bhoto pheriod) काल १८ क्रमों का होता है, परन्तु यदि इन १८ क्रमों को बीच में अनुभा क्रमों से खण्डित कर दिया जाय तो भी प्रभाव वही रहता है जो १८ अतिभा क्रमों को लगातार प्रयुक्त करने से होगा (हैमनर) 'मेल्चर' द्वारा "हाइपोसिएमस नाइजर' के साथ किए गए प्रयोग भी इसी परिणाम पर पहुँचे थे।

इतनी कल्पना हो जाने पर कि पुष्पोद्भव के लिए किसी रसायनिक पदार्थ की उत्पत्ति, जिसका सम्बन्ध भाक्रमों से किसी न किसी प्रकार अवश्य है, संभव है, आगे के प्रयोग इस दृष्टि को सामने रख कर किए गये कि उन रसायनिक पदार्थों की गति किस प्रकार होती है। क्या वे स्थानीय प्रभाव वाले ही हैं या वे एक स्थान से दूसरे स्थान को भी जा सकते हैं? सर्वप्रथम 'गार्नर' व 'एलर्ड' ने कॉस्मॉस-बाइपिन्नेटस' (Cosmos bipinnatus) पर ऐसे प्रयोग किए। उसने पौधे के विभिन्न भागों को भाक्रमों से प्रयुक्त किया, परन्तु परिणाम केवल उन्हीं विशिष्ट अंगों, जो कि भाक्रमों से प्रयुक्त थे, में लक्षित हुआ। अर्थात् भाक्रमों का प्रभाव स्थानीय और अगतिशील था। परन्तु अधिक आधुनिक अन्वेषणों ने, विशेषकर रूस में 'पेरिला' (perila) और 'क्राइसेन्थेमम' (Chrysanthenm) पर, अमेरिका में कॉकिल बर' (Cockle-bur) और 'सोयावीन' (Soyabean) पर, जर्मनी में 'कैलेन्चू ब्लोस्फेल्डियाना' (Kalanchoe Blossfeldiana) व 'सोयाबीन' पर; इसकी गतिशीलता को सिद्ध कर दिया है। सुविधा के लिए ऐसे प्रयोगों में, पौधे के 'आक्रम' प्रयुक्त अंग को 'दाता' और शेष अप्रयुक्त अंग को 'ग्राहक' कहते हैं। उपर्युक्त सभी प्रयोगों में यही परिणाम निकला है कि केवल पत्तियों ही भाक्रमों की संवेदना को ग्रहण करती हैं

क्योंकि यदि पौधे की सभी पत्तियाँ तोड़ दी जाँय तो भाक्रम प्रयुक्त होने पर भी पौधे में पुष्पोद्भव नहीं होता। परन्तु यदि एक पत्ती का अष्टमांश भी पौधे से लगा रह जाता है तो आक्रम की 'संवेदना' वह ग्रहण कर लेती है और पुष्पोद्भव हो जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि यदि केवल एक पत्ती पौधे से लगी रहने दी जाय और उसपर आक्रम-प्रयुक्त करे तो न केवल उसी पत्ती की अत्तीय कलिका पुष्पित होती है, प्रत्युत पूरे पौधे की सभी कलियाँ पुष्पित हो जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि आक्रमों के कारण पत्तियों में कोई पदार्थ उत्पन्न होता है जो अत्तीय-कलिकाओं की ओर गति करता हूँ और उन्हें पुष्पित कर देता है। यह गति 'जैन्थियम' में अतिशीघ्र परन्तु सोयावीन में मन्थर और प्रायः स्थानीय होती है। 'सोयावीन' में यदि एक पत्ती को भाक्रम से प्रयुक्त किया जाय तो केवल उसी पत्ती के अत्त में पुष्पोद्भव होता है, शेष में नहीं। परन्तु यदि केवल उस पत्ती को छोड़ कर शेष सभी पत्तियों को तोड़ दिया जाय या अंधकार में रक्खा जाय तो सभी अत्तीय कलिकाओं में पुष्पोद्भव हो जाता है। इससे प्रतीत होता है कि भाक्रम विहीन पत्तियों में कोई ऐसा पदार्थ, उत्पन्न होता है जो भाक्रम युक्त पत्तियों में उत्पन्न हुए पदार्थ को नष्ट कर देता है। जिससे भाक्रम ही पत्तियों के रहते पुष्पोद्भव पूरे पौधे में नहीं हो पाता। इसका सुन्दर उदाहरण 'कैलेन्यू' और 'पेरिला' में मिलता है, जिसकी एक ही पत्ती का यदि अग्रिम अर्ध (Apical half) भाक्रम युक्त किया जाय और आधारीय अर्थ (Rasal hag) भाक्रम हीन ही रहे तो पुष्पोद्भव नहीं होता। परन्तु यदि यही क्रम उलट दिया जाय अर्थात् अग्रिम अर्थ भाक्रम हीन हो और आधारीय अर्थ भाक्रम युक्त, तो पुष्पोद्भव हो जाता है। पहली अवस्था में आधारीय अर्थ भाक्रमहीन होने से एक अवरोधक पदार्थ (Inhibi tory substance) उत्पन्न करता है, जो अग्रिम अर्ध में भाक्रम द्वारा उत्पन्न पुष्पीय अन्त रानुरस (Flowering hormone) (?) को नष्ट कर देता है, और वह अत्त तक नहीं पहुँचने पाता (हार्ड. चैलाच जन)।

ऊपर जो कुछ संक्षेप में कहा गया है, उससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि भाक्रम की क्रिया कितनी क्लिष्ट और दुरूह है। अभी इस सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अपूर्ण ही है। जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हुआ है जिससे यही प्रतीत होता है कि किसी न किसी प्रकार का एक व अनेक अन्तरानुरस उत्पन्न होते हैं जो पुष्पोद्भव के लिए आवश्यक हैं। यद्यपि इस विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त बनाना असम्भव सा दिखाई पड़ता है. फिर भी ज्ञात सत्यों के आधार पर 'ग्रेगरी' १९४७) ने एक कामचलाऊ व्यवस्था (Scheme उपस्थित की है। केवल अनुभा उद्भिदों के लिए व्यवहारिक व्यवस्था का वर्णन ही यहाँ पर्याप्त होगा।
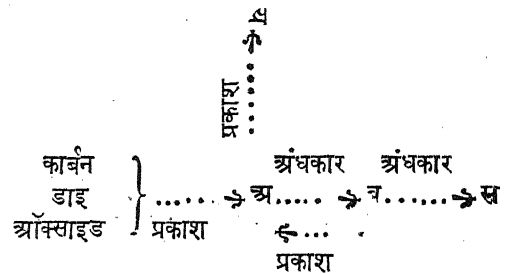
इसके अनुसार प्रकाश में कार्बन डाइ ऑक्साइड की सहायता से पत्तियाँ कई क्रियाओं के बाद एक पदार्थ 'अ' बनाती हैं। एकबार 'अ' का निर्माण हो जाने पर उसका नाश नहीं होता अर्थात् यह क्रिया 'एकदिशीय' (One way) है। अब इस पदार्थ 'अ' के प्रकाश वा अंधकार के अनुसार, दो भाग हो जाते हैं। प्रकाश में यह पदार्थ एक दूसरे पदार्थ 'य' में परिवर्तित हो जाता है जो पत्तियों की वृद्धि के काम में आता है। परन्तु अंधकार में वही पदार्थ 'अ' एक अन्य पदार्थ 'ब' में परिवर्तित हो जाता है। यही पदार्थ 'ब' अंधकार में तो पुष्पीय अन्तरानुरस 'स' का निर्माण करता है, अन्यथा प्रकाश में पुनः पूर्व पदार्थ 'अ' में बदल जाता है। यही कारण है कि अनुभा पौधों के लम्बे अंधकार काल को बीच ही में क्षणिक प्रकाश से भंग कर दिया जाता है तो पुष्पोद्भव नहीं होने पाता. क्योंकि तब पदार्थ 'ब' पुष्पीय अन्तरानुरस 'स' बनाने के बजाय पदार्थ 'अ' में पुनः निर्मित हो जाता है। उपर्युक्त व्यवस्था में तीर के चिन्ह वस्तु-निर्माण की दिशा का संकेत करते हैं तथा टूटी हुई रेखाएँ मध्यस्थ क्रियाओं की द्योतक हैं, जिनका निश्चय अभी नहीं हो पाया है।

एक पर्याय विचार यह भी है कि पुष्पोद्भव वर्धि

अन्तरानुरस (Growth hormones) के नष्ट हो जाने से होता है। वर्धि अन्तरानुरस की सत्ता उद्भिज्जगत में सर्वतोभावेन सिद्ध है ('शैन्डर' १९३४, कोलॉडनी १९३५, लेबक व 'मेयर' १९३५; 'थिमल व स्कुग' १९४०। इनका उपयोग केवल वर्धि-वार्धक्य में होता है। इस अन्तरानुरस का भी एक सन्तुलन-विन्दु (Critical point) होता है। इस सन्तुलन विन्दु से यदि इस अन्तरानुरस का घनत्व अधिक रहा तो केवल वर्धि-वार्धक्य ही होगा और यदि इसका घनत्व संतुलन-विन्दु से नीचे गिर जाता है तो पुष्पोद्भव होने लगता है। पुष्पोद्भव उद्भिज्जगत का स्वतः स्वभाव है और प्राचीनतम (primitive) उद्भिद् केवल पुष्पमात्र ही थे। धीरे-धीरे उनमें वर्धि-ऊतियों (vegetative tissues) की वृद्धि होने लगी और प्रकाण्ड, काण्ड, पत्ती आदि वर्धि भागों का निर्माण हुआ। इस सिद्धान्त को 'प्रगतिशील बन्ध्यता' (Progressive Sterilizations) कहते हैं। (बावर) इसके अनुसार वर्धि-ऊतियों के लिए ही किसी रसायनिक रस की आवश्यकता थी जो उनके विकाश एवं वृद्धि का नियंत्रण कर सके न कि पुष्पोद्भव के लिए जो कि उद्भिज्जगत का स्वतः स्वभाव है। इन वर्धि-अन्तरानुरस के उत्पादन एवं विनाश पर प्रकाश और ताप का यथेष्ट प्रभाव पड़ता है और यही कारण है कि भाक्रमों का प्रभाव पुष्पोद्भव पर देख पड़ता है। 'कैलेन्यू' और 'पेरिला' का अर्ध-पत्र-प्रयोग, जिसके अग्रिम अर्धपत्र को भाक्रम युक्त किया गया और आधारीय अर्ध-भाक्रम हीन ही रहा और परिणाम स्वरूप पुष्पोद्भव नहीं हुआ, इस बात की ओर भी इङ्गित करता है कि अन्तरानुरस का विनाश नहीं हो पाया। इस दशा में आधारीय अर्ध-वर्धि-अन्तरानुरस का निर्माण करता जाता है और इस कारण इसका घनत्व 'सन्तुलन विन्दु' से नीचे नहीं जाने पाता। इसी प्रकार 'जैन्थियम' का वह प्रयोग भी जिसमें केवल एक पत्ती ही रहने दी जाती है और उसको भाक्रम युक्त किया जाता है, इस बात को बताता है कि अन्य पत्तियों के न रहने से जो वर्धि अन्तरानुरस उत्पन्न कर सके, उस अन्तरानुरस का घनत्व गिर जाता है और पुष्पोद्भव होने लगता है। परन्तु अभी यह केवल विचार मात्र ही है और इसके पीछे कोई प्रयोगिक प्रमाण नहीं।

प्रकाश का पुष्पोद्भव पर यथेष्ट नियंत्रण होते हुए भी केवल यही एकमात्र कारण नहीं। ताप भी पुष्पोद्भव के लिए प्रमुख कारण है (क्लेब्ज १९१८) यथार्थ में प्रकाश और ताप का मिश्रित प्रभाव पुष्पोद्भव पर पड़ता है।

सन्दर्भ

१. हैमनर, के०. सी०. (१९४२), हॉर्मोन एन्ड फोटोपीरियॉडिज्म, कोल्ड स्प्रिंग हार्बर सिम्पोजिया ऑन क्वान्टिटेटिव बायोलॉजी, १०. पृष्ट ४९-४९

२. थिमन एण्ड वेन्ट, प्लान्ट हॉर्मोन।

३. चक्रवर्ती, एस० सी० (१९५२) डॉक्टरेट उपाधि के लिए स्वीकृत थीसिस। (अप्रकाशित)

४. मरमीक, ए० ई० और ह्वाइट, आर० ओ० 'एट एलिया' (१९४८), वर्नलाइजेशन एण्ड फोटोपीरियॉडिज्म, एसिम्पोजिया। वाल्थम मास, यू० एस० ए० क्रोनिका बॉटेनिका कम्पनी।

५. पर्विस, ओ० एन० (१९३७) रीसेन्ट डच रिसर्च आन दी ग्रोथ एण्ड फ्लोवरिंग ऑफ बल्बस। साइन्टिफिक हॉर्टीकल्चर ५, पृ० १२७–१४८; ६ (१९३७) पृ०. १६०–१७७।

६. सोसायटी फॉर एक्सपेरिमेन्टल बायोलॉजी, (१९४८) नं० २. सिम्पोजियम ऑन 'ग्रोथ इन रिलेशन टू डिफरेन्शियेशन एण्ड मार्फोजेनेसिस।'

७. हीथ, ओ० वी० एस० (१९४९) फ्लावरिंग आफ प्लान्ट्स इन रिलेशन टू एनविरोमेन्ट; न्यू बायोलाजी नं० ७।

हेलेन केलर

[अन्धों के उद्धार के लिए अपना सारा जीवन अर्पण करने वाली महिला श्री हेलेन केलर का नाम आज विश्व भर में प्रसिद्ध है। उनकी ही जीवन कथा यहाँ दी गई है।]

श्रीमती हेलेन केलर ने गत २७ जून को अपनी ७२वीं वर्षगांठ मनायी है। उनका व्यक्तित्व कर्मठता से ओतप्रोत है जो उनकी अद्‌भुत जीवन-गाथा के अनुरूप ही है। बाल्यकाल में ही अन्धी, बहरी तथा गूंगी हो जाने पर भी यह विलक्षण अमेरिकी महिला समस्त संसार के नेत्रहीन एवं नेत्रवान् नर-नारियों को प्रेरणा देती हैं।

उनका विश्वास है कि अन्धों को भी अन्य लोगों के समान जीवन-यापन करना तथा पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ कार्य करना चाहिये। स्वयं नेत्रहीन होने पर भी वे अपने नेत्रहीन बन्धुओं के जीवन को अधिक सुखी बनाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं।

२७ जून १८८० को टस्कम्बिया (अलाबामा) के निकट खेतिहरों की एक बस्ती में हेलेन केलर का जन्म हुआ था। बाल्यकाल से ही वह बालिका इतनी हृष्टपुष्ट थी कि ६ महीने की अवस्था में हेलेन को भीषण सन्निपात ज्वर हुआ और उसके कारण उसकी आँखों की ज्योति तथा श्रवण-शक्ति जाती रही। शिक्षा प्राप्त करने के प्राकृतिक साधनों से वंचित हो जाने पर वह बिल्कुल पशुवत् आचरण करने लगी। जब उसे किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो वह इशारों से उसे प्रकट करती थी। जब बालिका के माता-पिता उसकी किसी बात को नहीं मानते थे तो वह बड़ा क्रोध करने लगती थी।

६ वर्ष की आयु में हेलेन केलर की देख-रेख का भार ऐन सलिवन को सौंपा गया। वह युवती बोस्टन स्थित परकिन्स स्कूल की शिक्षिका थी। यह स्कूल अन्धों की शिक्षा के लिये अमेरिका में प्रसिद्ध है। हेलेन केलर ने ऐन सलिवन के साथ अपनी प्रथम मुलाकात को अपने जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना बताया है। १९३६ में इस 'शिक्षिका' का देहान्त हो गया। उस समय तक दोनों निरन्तर साथ रहती थीं।

युवती सलिवन को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि उनकी शिष्या अन्य अन्धे बच्चों के समान दुबली-पतली नाजुक एवं भीरू न होकर एक दीर्घकाय, बलिष्ठ एवं स्वस्थ बालिका है। पहले ही दिन उस शिक्षिका ने अपनी शिष्या को स्पर्श होने वाले उभरे हुए अक्षरों द्वारा शब्दों का उच्चारण बताना प्रारम्भ कर दिया था।

कुछ ही महीनों में हेलेन ने ९०० शब्द सीख लिये थे और उन्हें ब्रेललिपि में लिखने लगी थीं। उनकी ज्ञान-प्राप्ति की लालसा निरन्तर बढ़ती जाती थी और उन्होंने इस दिशा में अद्‌भुत प्रगति की। अलाबामा पहुँचने के ३ मास बाद सलिवन ने एक पत्र में अपनी एक सहेली को लिखा था, 'मैं समझती हूँ कि इस बच्चे की शिक्षा मेरे जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना सिद्ध होगी...इस बालिका में विलक्षण गुण मौजूद हैं और मेरा विश्वास है कि उनका विकास करने में मुझे अवश्य सफलता प्राप्त होगी।'

उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। कुछ ही काल में समस्त अमेरिका में हेलेन केलर का नाम फैल गया और लोग उसकी बातों में रुचि लेने लगे। लोगों ने उसकी चमत्कारपूर्ण सफलताओं को देखकर उसकी विलक्षण बुद्धि की भूरि-भूर प्रशंसा की।

ऐन सलिवन को मुख्यतः दो कारणों से सफलता मिली। एक तो वह दिन का प्रायः अपना सारा समय अपनी शिष्या के साथ व्यतीत करती थी। और दूसरे वे

दोनों एक ऐसे बड़े परिवार में रहती थीं जहाँ बहुत से स्त्री-पुरुष, बच्चे अतिथि और नौकर थे। इसके अतिरिक्त, पशु, कृषि सम्बन्धी काम-काज, फूल, बाटिका, खेत, झरनों तथा जंगल से एक विकासोन्मुख मस्तिष्क के लिये अनन्त शिक्षा-प्रद सामग्री मिलती थी।

१० वर्ष की आयु में हेलेन ने बोलना सीखने का निश्चय किया। जिस व्यक्ति ने कभी भी किसी भाषा का शब्द न सुना हो, उसके लिये यह कार्य बिल्कुल असम्भव सा था। बोलने की तीव्र आकांक्षा को लेकर वह न्यूयार्क-स्थित बहरों के 'होरेसमैन स्कूल' के प्रिंसिपल के पास पढ़ने के लिये गयीं। आरम्भ में वह १०० में से एक शब्द का भी ठीक और स्पष्ट उच्चारण नहीं कर सकी। दिन रात कठिन परिश्रम करके तथा प्रत्येक शब्द को कई कई घंटों तक दुहराने पर वह उन शब्दों का ठीक उच्चारण करने में सफल हुई। वह इस विचार से फूली नहीं समाती थी कि मैं अलाबामा लौटने पर अपनी छोटी बहन से कह सकूंगी, "अब मैं गूंगी नहीं हूँ।"

काफी समय के पश्चात् हेलेन ने लोगों के सम्मुख भाषण देने का अभ्यास किया। जनता के समक्ष बोलने की योग्यता प्राप्त करने के लिये उन्होंने तीन वर्ष तक अभ्यास किया, क्योंकि उनका अपनी वाणी पर पूरा नियन्त्रण नहीं था। कभी तो उनका शब्द इतना मन्द पड़ जाता था कि वह समझ में नहीं आता था और कभी वह इतना ऊँचा हो जाता था कि गर्जन सा प्रतीत होने लगता था।

अंग्रेजी, लैटिन, फ्रैंच तथा जर्मन भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् १९०० में वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये रैडक्लिफ कालेज में प्रविष्ट हुई। अंधी, गूँगी और बहरी होने के बावजूद उच्च शिक्षण के लिये कालेज में प्रविष्ठ होने वाली वह पहली ही स्त्री थीं। कुछ वर्षों तक हेलेन केलर तथा उनकी अध्यापिका को कठोर परिश्रम करना पड़ा। मिस सलिवन को भी उनके साथ श्रेणियों में बैठना पड़ता था। वह भाषण को उभरे हुए शब्दों में तैयार करके उनके हाथ में देती थीं तथा पाठ्य पुस्तकें पढ़कर उन्हें सुनाती थीं। कुमारी केलर १९०४ में अंग्रेजी में विशेष सम्मान के साथ स्नातिका हुई।

रैडक्लिफ कालेज के द्वितीय वर्ष के अन्त में उन्होंने अपनी प्रथम पुस्तक 'दि स्टोरी औव् माई लाइफ' (मेरी आत्म कहानी) लिखी। यह कहानी 'लेडीज होम जर्नल' पत्रिका में क्रमशः छपी और इस से उनकी समस्त संसार में ख्याति फैल गई। उनकी अन्य पुस्तकों के नाम निम्न हैं 'दि वर्ल्ड आई लिव इन' (जिस संसार में मैं रहती हूँ), 'माई रिलिजन' (मेरा धर्म), 'मिडस्ट्रीम', 'माई लेटर लाइफ', 'पीस ऐट इवन टाइन' 'हेलन केलर इन स्काटलैण्ड' तथा 'लैट अस हैव् फेथ'।

हेलेन केलर की कविता, साहित्य, संगीत तथा ललित कलाओं में गहरी रुचि है। वे थियेटर तथा सिनेमा भी जाती हैं। किसी सहेली की सहायता से वह कथानक को उभरे हुए अक्षरों के द्वारा वह संगीत का आनन्द लेती हैं और हाथ के स्पर्श से स्थापत्य कला के सौन्दर्य का भी बोध कर लेती हैं।

बड़ी होने पर हेलेन केलर ने अपना अधिकांश समय अन्धे एवं बहरों की सहायता में बिताना शुरू किया। कितने ही वर्षों तक वे अमेरिकी अन्ध प्रतिष्ठान में कार्य करती रहीं और उसके लिये धन एकत्र करने के लिये उन्होंने दूर-दूर की यात्रा की। १९४६ में उन्होंने युद्ध में अन्धे होने वाले व्यक्तियों की संख्या तथा आवश्यकताओं का पता लगाने के लिये ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, इटली तथा ग्रीस का दौरा किया। उन्होंने अपंग लोगों के सम्बन्ध में धारा-सभाओं तथा अमेरिकी कांग्रेस में पेश होने वाले कानूनों में सहायता प्रदान की। उन्हें बहुत से देशों में उपाधियां और पदक आदि प्रदान किये गये हैं।

१९३६ में हेलेर केलर को सब से अधिक शोक अपनी शिक्षिका ऐन सलिवन के देहावसान से हुआ। उसी वर्ष इस जोड़े को मिलकर अनूठा एवं अत्यधिक महत्व का कार्य करने के लिये रूजवेल्ट-पदक प्रदान किया गया।

कुमारी केलर ने मार्च १९४८ में संसार का भ्रमण किया। इस अवसर पर वे आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैन्ड, जापान, फिलिपीन, कोरिया, चीन, भारत, पाकिस्तान तथा मध्य-पूर्व गयीं। आपने अनकों सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिये, अन्ध-विद्यालयों का निरीक्षण किया तथा अपंग लोगों के

(शेष पृष्ठ २५ पर)

राष्ट्रीय राज पथों का महत्व

राष्ट्र की समृद्धि और महानता की सूचक उसकी सड़कें होती हैं। प्राचीन काल में रोमन सड़क व्यापार का एक बहुत बड़ा साधन थी और यूरोप को समृद्ध बनाने में यह बहुत सहायक सिद्ध हुई। इसी प्रकार, मौर्य साम्राज्य की समृद्धि उसके राजपथों पर निर्भर थी। प्राचीन भारत में उत्तर पथ बहुत प्रसिद्ध था। यह पथ, पटना, पेशावर होता हुआ, हिन्दूकुश से आगे निकल कर दो भागों में बट जाता था। इस मार्ग से कितना विशाल व्यापार होता था वह इसी बात से प्रकट है कि प्राचीन मथुरा के कलाकारों द्वारा निर्मित, हाथी दांत की कला वस्तुओं का सब से बड़ा भंडार, काबुल के निकट मिला था।

औद्योगीकरण और उत्पादित वस्तुओं के याता-यात के साथ-साथ सड़कों का महत्व बढ़ता जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में प्रगतिशील, पश्चिम के देशों ने सड़क गवेषणा का महत्व पूरी तरह अनुभव किया है और उन्होंने सड़क गवेषणा के लिए बहुत सी प्रयोगशालाएँ स्थापित की हैं। अन्य देशों की तुलना में भारत में अब तक इस दिशा में बहुत कम काम हुआ है। करनाल में एक भूमि गवेषणा प्रयोगशाला तथा मद्रास में एक "कंक्रीट गवेषणाशाला" और "भूमि इंजीनियरिंग प्रयोगशाला गवेषणा केंद्र" है। विस्तृत आधार पर, इस दिशा में परीक्षण का कार्य १६३५ में माजेरहाट (कलकत्ता) में आरंभ किया गया था। अन्य गवेषणाशालाएँ, पूना, पटना और लखनऊ में हैं।

दिसम्बर १६४३ में प्रान्तों और रजवाड़ों के चीफ इंजीनियरों का जो सम्मेलन हुआ था उसमें यह अनुभव किया गया कि भारत में, ४ लाख मील लम्बी सड़कें और होनी चाहिए, जिनमें २५,००० मील के राष्ट्रीय राजपथ, ६५,००० मील के प्रान्तीय राजपथ तथा शेष, जिले और गांव की सड़कें हों।

आज भारत की सड़कों की कुल लम्बाई ३.५ लाख मील है। दस फीट चौड़ी 'बिटुमेन' की सड़कों का निर्माण-व्यय लगभग ३०,००० रु० प्रति मील और सीमेंट-कंक्रीट सड़कों का निर्माण-व्यय लगभग ५०,००० रु० प्रति मील बैठता है। कच्ची सड़क पर लगभग ५,००० रु० प्रति मील आती है। यदि गवेषणा द्वारा निर्माण-व्यय में १ प्रतिशत की भी कमी हो जाती है तो एक करोड़ से भी अधिक रुपया बच जायगा।

केन्द्रीय सड़क गवेषणाशाला, लगभग ३१ एकड़ क्षेत्र में, दिल्ली में, दिल्ली-मथुरा सड़क पर बनायी गयी है। इसका शिलान्यास, सितम्बर १६५० में, तत्कालीन यातायात मंत्री श्री गोपालस्वामी आयंगर ने किया था।

इस गवेषणाशाला के कार्य ये हैं, सड़क बनाने के काम आने वाले सामान के सम्बन्ध में आधारभूत गवेषणा, भूमि के सम्बन्ध में सड़कों की परीक्षा के लिए यंत्रों के डिजाइन बनाना, सड़कों पर सुरक्षा की व्यवस्था तथा सड़कों के सम्बन्ध में आंकड़े इकट्ठा करना, प्रौद्योगिक परामर्श तथा सहायता देना, गवेषणा से प्राप्त जानकारी का प्रसार आदि।

कम लागत पर सड़कें बनाने, तथा गांवों के लिए स्थानीय सामान से बारहों महीने काम आने वाली सड़कों के निर्माण पर अधिक ध्यान दिया जायगा।

गवेषणाशाला के निर्माण और साज-समान पर लगभग २६.५४ लाख रु० खर्च होगा। अब तक १६ लाख रु० खर्च हो चुका है।

केन्द्रीय सड़क गवेषणाशाला के उद्घाटन के अवसर पर भाषण देते हुए, डा० एस० एस० भटनागर ने कहा—

दिसम्बर १६४३ में, नागपुर में भारतीय सड़क कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था उसमें सड़क गवेषणाशाला की स्थापना के लिए सिफारिश की गयी थी। किन्तु, सड़क गवेषणा का कार्य, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा

परिषद् के तत्वावधान में १६५० में एक अस्थायी भवन में, आरम्भ किया गया था।

अब तक जिन समस्याओं के सम्बन्ध में छानबीन की गयी है, वे ये हैं—सड़क बनाने के काम आने वाली ईंटों में क्या मिलाया जाय जिससे वे अधिक उपयोगी बनें; कपास के कृषि क्षेत्र की काली मिट्टियों का श्रेणी विभाजन, मिट्टियों की तुलनात्मक दृढ़ता; सड़क के डिजाइन के लिए काश्मीर राज्य में मिट्टियों का स्थिरीकरण; बैलगाड़ियों की धुरियों के परीक्षणों का अध्ययन; सड़क बनाने के काम आने वाले सामान के विषय में अनुसन्धान; बिटुमेन सामान का उद्योगों के लिए परीक्षण आदि।

केन्द्रीय सड़क गवेषणाशाला, अन्य राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से एक बात में भिन्न है। सड़क बनाने का काम सरकार के आधीन है। फलतः गवेषणा के परिणामों का शीघ्र ही उपयोग किया जा सकता है। अन्य प्रयोगशालाओं के गवेषणा परिणामों को क्रियात्मक रूप देने का सम्बन्ध निजी उद्योगों से है।

गवेषणा-परिणामों का उपयोग करने का कार्य सरल नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि के अतिरिक्त, व्यवहारिक दृष्टि से भी उस पर विचार करना पड़ता है। यह भी देखना पड़ता है कि आर्थिक दृष्टि से यह उपयोग कैसा रहेगा। पश्चिम के अत्यधिक प्रगतिशील देशों में भी, उद्योगपतियों द्वारा केवल थोड़े से ही गवेषणा परिणामों को कार्यान्वित किया जाता है।

फिर भी, हमारी राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं तथा अन्य गवेषणा संस्थाओं के परिणामों के उपयोगीकरण पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है।

हेलेन केलर

[पृष्ठ २३ का शेष]

सम्बन्ध में नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने के कार्य में सहायता प्रदान की। वह अभी हाल में "अमेरिकन फाउन्डेशन फौर ओवरसीज ब्लाइन्ड" की ओर से मध्यपूर्व का तीन महीने का दौरा करके लौटी हैं।

उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। अवस्था को देखते हुए वे बहुत छोटी प्रतीत होती हैं। उनके चेहरे पर कोई झुर्री नहीं और उनके बाल कहीं कहीं से ही सफेद हुए हैं। उनकी आँखें नीली एवं चमकीली हैं, जिनमें अन्धों की सी शून्यता और भावहीनता नहीं हैं।

आजकल हेलेन केलर वेस्टपोर्ट के निकटवर्ती कनैटिकट वन प्रान्तर की एक सुन्दर कुटिया में रहती हैं। प्रांगण के एक कोने में ८ फीट ऊँचा जापानी प्रस्तर दीप अहर्निश जलता रहता है—जो शायद उनके जीवन दीप के साथ ही बुझेगा।

हेलेन केलर बड़ी धर्मपरायण हैं। सब वह अपने कार्यव्यस्त जीवन से विश्राम पाने घर आती हैं तब वह आत्मिक चिन्तन और भक्ति-भावना में खो जाती हैं। इस महिमा—मयी नारी के मुखमंडल पर चरित्र, लक्ष्यसिद्धि और कर्मठता का तेज दृष्टिगोचर होता है। इस देवी ने चिर मौन और साधन अन्धकार के ७० दीर्घ वर्षों को काव्य, स्फूर्ति और मानव प्रेम में परिणत करके एक अनुपम आदर्श उपस्थित कर दिया है।

विज्ञान-समाचार

यातायात नियंत्रण की विद्युत संचालित नवीन व्यवस्था

अभी हाल में डेनवर (कोलोराडो) में सड़कों पर मोटरों के यातायात के परिमाण का पता लगाने और उसके अनुसार ट्रैफिक के संकेतों की व्यवस्था करने की एक विद्युत चालित व्यवस्था का सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत इलैक्ट्रोनिक द्वारा यातायात का हरा और लाल सिगनल मिलता रहता है किन्तु यदि किसी ओर अधिक गाड़ियाँ खड़ी हों और दूसरी ओर कम, तो अधिक गाड़ियों का ज्ञान इलैक्ट्रोनिक मस्तिष्क (नियन्त्रणकर्ता मशीन) को हो जाता है और हरा सिगनल अधिक देर तक कायम रहता है।

ट्रैफिक का नियंत्रण करने वाला यह विद्युत-चालित यंत्र इस प्रकार के अन्य शहरों के लिये एक आदर्श का काम करेगा जहाँ भारी यातायात एक समस्या बन गई है।

'रफोमीटर' नामक यन्त्र का आविष्कार

मिसूरी राज्य के सड़क-विभाग ने एक नये यन्त्र का आविष्कार किया है जो यह पता लगा लेता है कि सड़क कहीं ऊँची नीची तो नहीं है और यदि है तो उसका माप क्या है। साथ ही वह यन्त्र इस बात का रिकार्ड भी कर लेता है।

इस नये यन्त्र का नाम है 'रफोमीटर'। अमेरिका में इस प्रकार के छः यन्त्र हैं। आशा की जाती है कि भविष्य में सड़क-निर्माण में यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। पुरानी होने से. मौसम से और विभिन्न प्रकार की गाड़ियों के चलने आदि से सड़कों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी भी तुलनात्मक जानकारी प्राप्त की जा सकेगी।

यन्त्र इस प्रकार का है। लोहे के ढांचे के बीच में मोटर का पहिया लगा दिया जाता है और बीस मील की रफ्तार से चलती हुई ट्रक के पीछे उसे बांध दिया जाता है। पहिया ऊपर नीचे जाता है तो उसका ऊपर नीचे जाना विद्युत तरंगों द्वारा एक ग्राफ पर अंकित होता जाता है। इसी से सड़क की ऊँचाई-निचाई पता लग जाती है।

—आज का अमेरिका

मैसेच्यूसेट्स का सौर-ताप गृह

मैसेच्यूसेट्स सौर-तापगृह (सोलर हाउस), जो गत तीन वर्षों से सूर्य के संचित ताप से गर्म रखा जाता है, निरन्तर उपयोग के उपरान्त बहुत ही सफल और व्यावहारिक सिद्ध हुआ है।

सूर्य से ताप खींचने वाले रासायनिक पदार्थों में तीन साल के लगातार इस्तेमाल के बाद भी कोई क्षीणता दृष्टिगोचर नहीं हुई है। इन तीन वर्षों के दौरान में उक्त भवन को गर्म रखने में व्यय भी बहुत कम हुआ। केवल उतनी बिजली का व्यय देना पड़ा जो इस प्रकार ताप संचित करने वाले यंत्र को चलाने में खर्च हुई थी।

सूर्य के संचित ताप से भवन को गर्म रखने की क्रिया निम्न लिखित है। गर्मी के दिनों में बहुत सी खिड़कियों के निकट हवा गर्म की जाती है और फिर वही गर्म हवा धातु के बड़े ड्रमों में भर दी जाती है। इन ड्रमों में २० टन गर्मी को सुरक्षित रखने वाला रासायनिक पदार्थ भरा रहता है। इसमें अधिक अंश एनहाइड्रोस सोडियम सल्फेट

का रहता है। मिश्रित रासायनिक पदार्थ के कण गर्मी पाते ही पिघल जाते हैं और गर्मी को संचित रखते हैं। इसके बाद जब कभी ठंडी हवा इन ड्रमों में पहुँचाई जाती है तो यह रासायनिक द्रव पुनः कणों के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा द्रव में संचित ताप बाहर निकलने लगता है। इस क्रिया द्वारा ड्रमों से निकलने वाली गर्मी से मकान गर्म हो जाता है।

इस भवन की डिजाइन हंगरी की एक प्रमुख रासायनिक डा० मेरिया टेल्कस ने तैयार की थी। आप आज-कल मैसेच्यूसेट्स इन्स्टिट्यूट ओव् टैक्नोलोजी में सूर्य शक्ति के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रही हैं। उन्होंने बताया कि इस प्रकार के प्रथम यन्त्र बनाने में २००० डालर खर्च हुए थे। परन्तु अधिक अनुसन्धान करने तथा औद्योगिक पैमाने पर उत्पादन करने से इसका व्यय और अधिक घट जायगा।

पागल कुत्तों के उपचार की नयी वैक्सीन

कसौली की केन्द्रीय अनुसंधानशाला के सहायक निर्देशक डा० क्लेरेन्स-डेसिल्वा पागल कुत्तों के उपचार के लिये नयी वैक्सीन बनाने की प्रणालियां सीख कर अक्टूबर मास में अपने देश लौट रहे हैं। ये वैक्सीन भारत में बड़ी उपयोगी सिद्ध होंगी। डा० डेसिल्वा गत सात महीनों से अमेरिका में पागल कुत्तों के उपचार की नयी वैक्सीनों का अध्ययन कर रहे हैं।

डा० डेसिल्वा ने बताया कि पागल कुत्ते के उपचार की वैक्सीनों के सम्बन्ध में उनका अध्ययन भारत की बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति कर सकेगा। पागल कुत्ते के काटने से प्रतिवर्ष लगभग २ हजार व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है।

आपने बताया कि हमारी कसौली स्थित प्रयोगशाला में जो वैक्सीन तैयार की जाती है, कुत्ते को एक वर्ष तक रोग मुक्त करने के लिये उसके ७ दिन तक बराबर उस वेक्सीन का टीका लगाना आवश्यक होता है। उन्होंने बताया कि यहाँ मैंने जिस वैक्सीन को तैयार करने की विधि सीखी है, उसका एक टीका लगाना ही काफी होता है।

भारतीय वैज्ञानिक ने बताया कि उन्होंने अमेरिका की प्रयोगशालाओं से अमेरिका के सम्बन्ध में पूरी पूरी जानकारी प्राप्त की है। यहाँ निर्देशक टैक्निशियनों के पास बैठ कर बात चीत करता है, सब एक दूसरे को नाम लेकर पुकारते हैं किन्तु इससे अनुशासन में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

केन्सर की चिकित्सा की नई प्रभावशाली विधि

विस्कौन्सिन यूनिवर्सिटी के डा० फ्रेडरिक मोज़ ने त्वचा में होने वाले केन्सर को अच्छा करने के लिये 'केमोसर्जरी' नामक एक नवीन विधि खोज निकाली है। उनका कहना है कि इस नवीन विधि से त्वचा में होने वाले केन्सर में ६३.६ प्रतिशत कैन्सरों का सफलतापूर्वक इलाज किया जा सकेगा। साथ ही यह तरीका बहुत ही प्रभावशाली और निरापद रहेगा और इससे रोगी के शरीर का वह भाग भी बहुत कम भद्दा होगा।

डा० मोज ने बताया कि एक्सरे तथा शल्यक्रिया से औसतन ७५ प्रतिशत केन्सर ही ठीक हो पाते हैं।

उनका दावा है कि 'केमोसरजरी' विधि से वे १ से १५ दिन के अन्दर त्वचा में होने वाले केन्सरों को पूरी तौर से अच्छा कर सकते हैं। आपरेशन में न तो दर्द होता है और न खून ही निकलता है।

आपरेशन के समय सबसे पहले केन्सर से प्रभावित त्वचा पर निशान लगा दिया जाता है। इसके उपरान्त केन्सर पर जिंक क्लोराइड मिश्रित एक मरहम लगाया जाता है। इस रासायनिक द्रव से केन्सर की ऊति (टिशू) तो नष्ट हो जाती हैं किन्तु उसका आकार वैसा ही बना रहता है।

इसके बाद प्रभावहीन केन्सर त्वचा से निकाल लिया जाता है और अणुवीक्षण यन्त्र से उसकी परीक्षा

की जाती है। परीक्षा के बाद डाक्टर यह बता सकता है कि त्वचा में केन्सर की और जड़ें तो शेष नहीं रह गई हैं। यदि केन्सर की और जड़ें शेष रह गई हों तो फिर से केन्सर के स्थान पर जिंक क्लोराइड लगाया जाता है और केन्सर का बचा हुआ अंश निकाल कर अणुवीक्षण यन्त्र से पुनः उसकी जाँच की जाती है।

यह विधि उस समय तक बार-बार प्रयोग में लाई जाती है जब तक केन्सर की जड़ें पूरी तौर से नष्ट न कर दी जायें। इस प्रकार डाक्टर शरीर के अच्छे सूक्ष्म कोषों को छोड़ कर खराब कोष निकाल सकता है। अणुवीक्षण यन्त्र डाक्टर को यह बताता है कि रोग-ग्रस्त सूक्ष्म कोष कहाँ हैं।

वर्तमान विधि के अन्तर्गत केन्सर की जड़ों को निकालने के लिये उस स्थान के बहुत से स्वस्थ और अच्छे सूक्ष्म कोषों को भी निकाल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त एक्सरे केन्सर को नष्ट करने के साथ-साथ अच्छी त्वचा को भी हानि पहुँचा सकता है।

डा० मोज़ ने कहा कि केमोसर्जरी के ८० प्रतिशत आपरेशनों में अस्पताल में रहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि इसके बाद त्वचा को ठीक करने के लिये प्लास्टिक सर्जरी की आवश्यकता पड़े भी—यद्यपि शायद ही पड़े—तो आसानी से आपरेशन किया जा सकेगा।

पेनिसिलीन का कारखाना

पूना के निकट पिम्परी में पेनिसिलीन तैयार करने के भारत के प्रथम कारखाने का शिलान्यास करने से पहले भारत सरकार के निर्माण, उत्पादन तथा रसद मंत्री माननीय श्री एन० वी० गाडगिल ने कहा कि मानव पीड़ा के निरोध व निवारण के लिए अब प्रयुक्त होने वाली पेनिसिलीन तथा अन्य रोगाणु-नाशक द्रव्यों की खोज से चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में जो चमत्कारी अध्याय जुड़ा है, उसमें समुचित योगदान करने की कामना भारत भी रखता है।

भारत सरकार का निश्चय है कि यद्यपि इस कारखाने में पेनिसिलीन व्यापार के रूप में तैयार की और बेची जायगी, किन्तु फिर भी उसका लक्ष्य नफा उठाने का न होगा। इस कारखाने का आयोजन इस बात को ध्यान में रखकर किया जा रहा है कि इसके द्वारा दक्षिण-पूर्वी एशिया में वैज्ञानिक कौशल का विकास हो और कुछ समय के बाद भारत तथा अन्य पूर्वी देशों के कृमि-नाशक द्रव्यों के अन्य कारखानों के लिए, यह (कारखाना), कर्मचारियों के एक अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण केंद्र का रूप धारण कर सके। इस दृष्टि से कारखाने में गवेषणा का भी कार्य होगा और उसमें कुशल कर्मचारियों से युक्त तथा आधुनिक यंत्रों से सज्जित प्रयोगशाला की व्यवस्था रहेगी।

खयाल है कि पूरे तौर से चालू हो जानेपर यह कारखाना हर महीने ४,००,००० 'मेगा यूनिट' पेनिसिलीन तैयार करेगा। यह उत्पादन अबसे दो-तीन साल में होने लगेगा, और तब, इसके द्वारा देश की आवश्यकता के अधिकांश की पूर्ति हो सकेगी। यदि हमारा लागत-खर्च उतना ही पड़ा, जितना कि हमने सोच रखा है, तो हो सकता है इसी तरह के बहुतेरे और कारखाने भी खड़े किये जाएं।

विज्ञान-प्रेमियों से निवेदन

विज्ञान के प्रचार में सक्रिय सहायता आप करना चाहें तो ५ या १० हिन्दी प्रेमियों का पता दें जिनको आप जानते हों और उन्हें पत्र लिख कर ग्राहक बनने के लिए उत्साहित कर सकें। हम आपके आदेश से उन पतों पर विज्ञान के नमूने या वी० पी० भेज देंगे।

—सम्पादक

गहरे समुद्र में मछवाही

गहरे पानी में मछली पकड़ने का काम सिर्फ इतना नहीं है कि मछलियाँ पकड़-पकड़ कर भरते चले जाएँ बल्कि उससे काफी मनोरंजन भी होता है। भारत सरकार ने हाल में हालैंड से मछली पकड़ने के दो जहाज खरीदे हैं जिनके नाम 'अशोक' तथा 'प्रताप' रखे गये हैं। ये जहाज मोटर से चलते हैं और इनसे मछली पकड़ने में नित्य ही दोनों बातें देखने को मिलती हैं।

बम्बई के प्रिंसेस जहाज घाट से 'अशोक' जहाज दो दिन के अन्तर से, गहरे पानी में मछली पकड़ने के लिये निकल पड़ता है। बम्बई के तट से २० से ६० मील की दूरी तक इसको मछली पकड़ने के लिये ले जाया जाता है। एक बार की यात्रा में औसतन पांच से दस टन मछली पकड़ी जाती है। जहाज में ही प्रशीतक यंत्र लगा है जिसमें मछलियों को रखा जाता है और उसमें वे ताजी ही रहती हैं।

जहाज में डीजल तेल से चलने वाला २४० अश्व शक्ति का बिजली पैदा करने का इंजन भी लगा है जिसके कारण यह जहाज मछली पकड़ने के दूर दूर स्थानों तक आसानी से चला जाता है।

जहाज में ६२ फुट का एक जाल लगा है जो पानी में डाल दिया जाता है और फिर मशीन की सहायता से भरे जाल को खींचा जाता है। एक बार मछली पकड़ने के लिये चार पाँच घंटे तक जाल पानी में ही पड़ा रहने दिया जाता है।

'अशोक' के कप्तान मेसन को बड़ा कठिन कार्य करना पड़ता है। मछली पकड़ने की बहुत सी स्थानीय नौकाओं के बीच जहाज चलाने की कठिनाइयों के साथ-साथ उनको मछली पकड़ने के उचित स्थान का पता लगाने का भी काम करना पड़ता है। अपने इन कार्यों के लिये उनको सदा सजग तथा सावधान रहना पड़ता है।

जहाज पर ११ कर्मचारी काम करते हैं, जो सब एक ही परिवार के सदस्य की भाँति रहते हैं। यद्यपि उनके रहने का स्थान छोटा है किन्तु फिर भी वह बहुत साफ और आरामदायक है। यात्रा के लिये चलते समय जहाज में पर्याप्त परिमाण में भोजन तथा ताजा पानी रख लिया जाता है।

जाल को साधारणतः १०८ से १५० फुट गहराई में डाला जाता है। यद्यपि वह ६०० फुट की गहराई तक भी डाला जा सकता है।

मछली पकड़ कर जब जहाज वापस बन्दरगाह पर लौटता है तो मछलियों को उतार कर सीधे बाजार में भेज दिया जाता है या ताजा रखने के लिये प्रशीतक यंत्र में रख दिया जाता है।

कप्तान मेसन का कहना है कि यदि अधिक बिजली की शक्ति तथा उचित साज सामान से युक्त बड़ा जहाज हो तो आसानी से दूने परिमाण में मछलियाँ पकड़ी जा सकती है।

कलकत्ता में कृत्रिम वर्षा के परीक्षण

कलकत्ता के समीप यादवपुर स्थित अपनी प्रयोगशाला में श्वेत बालों वाला एक व्यक्ति—जिस का उत्साह आयु के कारण किसी भी प्रकार मन्द नहीं हुआ है—वरुण देव की आराधना कर रहा है।

इस मार्गदर्शक व्यक्ति का नाम डा० एस० के० बनर्जी है। वह यादवपुर के इंजीनियरिंग एण्ड टैक्नोलोजी कालेज में गणित के प्राध्यापक हैं। यदि उनके परीक्षण सफल रहे तो कम लागत पर अनावृष्टि और दुर्भिक्ष की रोकथाम करने का उपाय निकल आयेगा।

डा० बनर्जी की कृत्रिम वर्षा सम्बन्धी उपाय जानने की लालसा बहुत पुरानी है। भारतीय वेधशालाओं के महानिदेशक के नाते, उन्होंने अवकाश ग्रहण करने से पूर्व भारतीय वायु सेना के एयर-कोमोडोर मेहर सिंह के सहयोग से इस प्रकार के परीक्षण किये थे। तब उन्होंने दो बार भारतीय वायु सेना के वायुयान को बहुत ऊँचाई पर ले जाकर बादलों पर कार्बन-द्विओषित् (डायोक्साइड) की गोलियाँ गिरायी थीं, जिस से वर्षा होने लगी थी।

किन्तु वायुयानों की सहायता से वर्षा कराना इतना

महँगा पड़ता है कि बड़े परिमाण पर इस प्रक्रिया को अपनाना प्रायः असम्भव है। वर्तमान परीक्षणों का उद्देश्य—जिन्हें नई दिल्ली की औद्योगिक और वैज्ञानिक अनुसन्धान परिषद् का आशीर्वाद प्राप्त है—कृत्रिम वर्षा के लिए कोई सस्ता और प्रभावकारी उपाय खोजना है। इस कार्य के लिए एक वायुयान को प्रयुक्त करने पर जो लागत (२००० रुपये से अधिक) बैठती है, उदजन से भरे गुब्बारों पर उससे बहुत कम लागत (प्रति गुब्बारा लगभग २५ रुपया) आती है। अतएव डा० बनर्जी अपने परीक्षणात्मक कार्यों में गुब्बारों का प्रयोग कर रहे हैं।

अनुभवी वैज्ञानिक का कथन है कि प्राकृतिक परिस्थितियों के प्रतिकूल हो जाने पर यदि कुछ तत्वों को बादलों में समाविष्ट कर दिया जाये तो कृत्रिम रूप में वर्षा करायी जा सकती है।

बादलों को बरसाने की विधि

डा० बनर्जी कृत्रिम वर्षा के लिए जिन गुब्बारों को आकाश में उड़ाते हैं, उनमें २५ फीट डोरी के जरिये विशेष रूप से तैयार किया गया एक ढांचा लटका रहता है, जो उपयुक्त ऊंचाई पर पहुँचने पर कृत्रिम वर्षा के लिए आवश्यक तत्वों को बादलों में समाविष्ट कर देता है।

यह ढांचा गोल होता है और उसे बांस की पतली तीलियों से तैयार किया जाता है। जब किसी गुब्बारे को उड़ाया जाता है, तो तीलियों से बने इस ढांचे के साथ दो बक्स बाँध दिये जाते हैं। इनमें से एक बक्स में तो कार्बन द्विओषित् की २ पौंड गोलियां होती हैं और दूसरे में सिल्वर आयोडाइड मिश्रित बारूद। जब गुब्बारा लगभग २२००० फीट की ऊँचाई पर जमाव बिन्दु से ऊपर बादलों में पहुँचता है तो कार्बन द्विओषित् की गोलियों से भरा बक्स नियत समय पर फट जाता है और कार्बन द्विओषित की गोलियां बादलों में मिल जाती हैं। उसी समय बारूद के फट जाने से सिल्वर आयोडाइड का धुआँ भी आकाश में फैल जाता है।

यदि बादल जमाव बिन्दु से नीचे हों, तो तीलियों के ढांचे में बर्फ के ठंडे पानी की तीन बोतलें उलटी बांध दी जाती हैं। प्रत्येक बोतल में बादलों पर पानी का छिड़काव करने के लिए चार-चार फव्वारे लगे रहते हैं।

अच्छी वर्षा के लिए अनुमानतः ५-६ गुब्बारे उड़ाना आवश्यक है। डा० बनर्जी अभी यह मालूम नहीं कर सके हैं कि तुरन्त और अच्छी वर्षा के लिये न्यूनतम कितने गुब्बारे उड़ाने चाहिये, किन्तु उनका कथन है कि और अधिक अन्वेषण के उपरान्त इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा। इन गुब्बारों को ऐसे बादलों में नहीं भेजा जाता, जो सामान्यतः वर्षा करने वाले हों।

उत्साहजनक परिणाम

इन गुब्बारों को तभी उड़ाया जाता है जब तीन-चौथाई आकाश नीचे चलने वाले छितरे हुए बादलों से घिरा हो अथवा ऐसी घनघोर घटाएँ छाई हुई हों, जिन के बरसने की सम्भावना न हो। विगत ३ मास से अधिक समय में किये गये परीक्षणों के परिणाम उत्साहजनक और मनोरंजक रहे हैं।

गत २ जून को कलकता की ओर से कुछ बादल बिना बरसे यादवपुर पहुँचे। जब बादल के एक टुकड़े से तीन चौथाई आकाश घिर गया तो बादलों पर ठण्डा पानी छिड़कने के लिए २ गुब्बारे उड़ाये गये। १००० फीट प्रति मिनट के हिसाब से उड़ते हुए ये गुब्बारे लगभग ढाई मिनट में बादलों में पहुँच गये।

इस बीच में बादलों ने उत्तर-पश्चिम की दिशा में बढ़ना शुरू कर दिया और उनका आकार भी बढ़ने लगा। डा० बनर्जी ने कार में बैठ कर उनका पीछा किया। लगभग १५ मिनट के पश्चात् यादवपुर से २ मील दूर बलीगंज में इन बादलों ने थोड़ी सी वर्षा की और लगभग ४० मिनट बाद करीब ८ मील दूर हावड़ा में बड़े जोरों से बरसे। उस दिन कलकत्ता में अन्य किसी बादल से कोई वर्षा नहीं हुई।

उल्लेखनीय परीक्षण

डा० बनर्जी का कथन है कि ५ अगस्त को वर्षा रुकने पर जो परीक्षण किया गया था वह उल्लेखनीय है। उस दिन यादवपुर में इंजीनियरिंग कालेज के दक्षिण की ओर घनघोर घटाएँ छायी हुई थीं। इन बादलों का ऊपरी हिस्सा बर्फ के कणों से निहाई जैसा बन गया। वे बादल सन्ध्या को लगभग ४॥ बजे कालेज की इमारत के ऊपर पहुँचे। दो पौंड कार्बन द्विओषित् और सिल्वर आयोडाइड

मिश्रित बारूद से भरे बक्सों के साथ दो गुब्बारों को तुरन्त ही आकाश में उड़ाया गया और जब गुब्बारे बादलों में पहुँचे, उसके २० मिनट के अन्दर ही बादल छितर गये।

डा० बनर्जी का कथन है कि इस से अमेरिकी वैज्ञानिकों के इस विचार की पुष्टि हो गयी है कि जिस बादल की ऊपरी सतह बर्फ के कणों वाली हो, उस पर यदि कार्बन द्विओषित् छिड़की जाये तो बादल फट जाते हैं। उपर्युक्त परीक्षण में कार्बन द्विओषित् और सिल्वर आयोडाइड दोनों को बड़ी मात्रा में आकाशमण्डल में छोड़ा गया था। दूसरे दिन सुबह तो सूर्य खूब चमका, पर ज्यों ज्यों दिन चढ़ता गया, आकाश में बादल छाने लगे। लगभग १०॥ बजे बादलों के कारण आकाश में अन्धेरा छा गया और इतने जोरों की वर्षा हुई कि केवल २ घण्टे में ही २.५ इंच पानी बरस गया।

डा० बनर्जी अपने परीक्षणों के अन्तिम परिणामों के विषय में अभी कोई विचार प्रकट करना नहीं चाहते। किन्तु जब वे अपने परीक्षणों के विषय में चर्चा कर रहे थे उस समय उनके चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएँ स्पष्ट झलक रही थीं। डा० बनर्जी को इस बात का विश्वास हो गया है कि यादवपुर में कृत्रिम वर्षा के सम्बन्ध में किया गया परीक्षण अन्ततः न केवल भारत के लिए बल्कि उन सभी देशों के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा, जिन्हें प्रति वर्ष अनावृष्टि के कारण भयंकर कष्ट भोगने पड़ते हैं।

बेकार धुएँ के संचित ताप से चलनेवाला कारखाना

ऐलन टाउन (पेन्सिल्वेनिया) की इनेमलस्ट्रिप कार्पोरेशन फैक्टरी आजकल अपने कारखाने के बेकार धुएं के संचित ताप से चल रही है। इनेमल पकाने की क्रिया के दौरान में पकने के लिये इस्तेमाल किये जाने वाले मिश्रणों से बहुत अधिक धुआँ निकलता है जो चिमनी में चला जाता है। यहाँ पर भट्टी की गैसें जलती हैं और इस से पैदा होने वाले ताप का उपयोग चूल्हों को प्रज्वलित रखने के लिये किया जाता है तथा दुर्गन्ध चिमनी के रास्ते बाहर निकल जाती है।

बेकार धुएँ से ताप प्राप्त करने की क्रिया में चीनी मिट्टी की ६७,००० पतली छड़ों का प्रयोग किया जाता है, जिनको 'कैमिकल वैन्ड' कहते हैं। इनकी परतें चिमनी के चार मोड़ों पर लगा दी जाती हैं। ये छड़ें लगभग ५ इंच लम्बी होती हैं और इन पर एलूमीनम ऑक्साइड या प्लाटिनम मिश्रित धातु की अत्यन्त सूक्ष्म परत चढ़ी रहती है। यह रासायनिक परत धुएँ से निकलने वाले ताप को संचित कर लेती है।

इस नवीन क्रिया का आविष्कार डा० यूजीन जे० हौडरी ने किया है। इनेमलस्ट्रिप कार्पोरेशन फैक्टरी अपने किस्म की पहली है। डा० यूजीन का विश्वास है कि केमिकल वैन्ड्स के इस्तेमाल से कारखानों तथा घरों के ईंधन पर होने वाले व्यय में काफी बचत की जा सकेगी। उक्त कम्पनी इस समय ईंधन पर होने वाले व्यय का ६० प्रतिशत भाग बचा रही है। इसके अतिरिक्त इस क्रिया द्वारा ताप प्राप्त करने से औद्योगिक केन्द्रों का वायुमंडल भी साफ रखा जा सकेगा।

पानी को शुद्ध करने में आणविक उच्छेष का प्रयोग

अटलान्टिक सिटी (न्यूजर्सी), १६ सितम्बर; मैसेच्यूसेट्स इन्स्टिट्यूट ऑव् टैक्नोलौजी के जीव विज्ञान के प्रोफेसर सेसिल जी० डन ने यह आशा प्रकट की है कि आणविक बमों के निर्माण की विशाल भट्ठियों से प्राप्त होने वाले रेडियो-सक्रिय उच्छेष का उपयोग सार्वजनिक स्वास्थ्य-कार्यों में लिया जा सकेगा।

प्रोफेसर डन ने बुधवार को अमेरिकन कैमिकल सोसायटी के राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण देते हुए बताया कि इन्स्टिट्यूट ने पानी और गन्दी नालियों को कीटाणु रहित करने में रेडियो सक्रिय कोबौल्ट धातु का प्रयोग किया है।

उन्होंने बताया कि रेडियो-सक्रिय कौबाल्ट से गन्दी

नालियों के मल के कीटाणुओं को नष्ट करने में एक ही घंटा लगा। उन्होंने भविष्यवाणी की कि शीघ्र ही ऐसा समय आयेगा जब कि किसी वस्तु को पूर्ण कीटाणु-विहीन करने में कुछ सैकिंड ही लगेंगे।

श्री डन ने बताया कि उन्होंने कौबाल्ट के धात्वीय अंशों को लेकर जो परीक्षण किये हैं उनसे कम या अधिक कीटाणुओं वाला पानी और गन्दी नालियों का लाखों कीटाणुओं वाला मल पूरी तरह शुद्ध और कीटाणु रहित हो गया।

उन्होंने कहा कि गन्दी नालियों की बड़े पैमाने पर सफाई के लिये लम्बी चक्करदार प्रणालियों वाले ऐसे यन्त्रों की आवश्यकता होगी जो रेडियो सक्रिय पदार्थ को मल तक पहुँचा सकें।

इस सभा में इलिनौय राज्य के जल-विभाग की मिस लिलियन ए० रसेल ने भी भाषण दिया। उन्होंने बताया कि पानी को शुद्ध करने और दूध को कीटाणु-रहित करने के लिए शब्द का उपयोग लेने पर अनुसन्धान-कार्य किया जा रहा है।

उन्होंने बताया कि बहुत ऊँची ध्वनि से कई प्रकार के जीवाणु शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। तथापि, अब तक यह निश्चित नहीं किया जा सका है कि इस कार्य के लिये ध्वनि की कितनी मात्रा प्रयुक्त करनी आवश्यक है और नई विधि के प्रयोग के लिये कौन सी अन्य परिस्थितियाँ बनाना उपयुक्त होगा। मिस रसेल ने कहा कि एक स्फटिक "कण" द्वारा जीवाणुओं पर घातक प्रभाव डालने वाले शब्दों के रिकार्ड तैयार किये जा रहे हैं।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१ – **विज्ञान प्रवेशिका, भाग** १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातों की उत्तम पुस्तक – ले० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम०.एस.सी०; ।=)

२—**चुम्बक**—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक – ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; मू० ।।।=)

३—**मनोरञ्जन रसायन**—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी०; २)

४—**सूर्य सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सब से सुलभ उपाय—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; छः भाग मूल्य ८) । इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहाल-करण सेठी डी० एस-सी० ; १)

६—**समीकरण मीमांसा**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)** गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।)

८—**बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटर-मीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले०—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन – ले० श्री शंकरराव जोशी ; ।=)

१०—**सुवर्णकारी**—ले० श्री० गंगाशंकर पचौली; ।=)

११—**विज्ञान का रजत जयन्ती अंक**– विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह १)

१२—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या) – ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम ए०; १७५ पृष्ठ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द २)

१३—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द २) (अप्राप्य)

१४—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले०-डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द, २)

१५—**लकड़ी पर पालिश**—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का ब्योरेवार वर्णन । ले०-डा० गोरख प्रसाद और श्री रामरतन-भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; ५) (अप्राप्य)

१६—**कमल पेवंद**—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी, सजिल्द; २)

१७—**जिल्दसाजी**—इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० सजिल्द, २)

१८—**तैरना**—तैरना सीखने की रीति अच्छी तरह समझाई गई है । ले०—डा० गोरखप्रसाद, मूल्य १)

१९—**सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग**—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद । बड़ी सरल और रोचक भाषा में जन्तुओं के विचित्र संसार, पेड़ों पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र, और तारों की जीवन-कथा तथा भरतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है । सजिल्द मूल्य ६) (अप्राप्य)

२०—**वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं**—ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२१—**खाद्य और स्वास्थ्य**—ले०—डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२२—**फोटोग्राफी**—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), फोटोग्राफी सिद्धान्त और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, सजिल्द मूल्य ४)

२३—**फल संरक्षण**—फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा जैम जेली, शरबत अचार, चटनी सिरका, आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक – ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी० कृषि विशारद, सजिल्द मूल्य २।।)

२४—**शिशु पालन**—लेखक-श्री मुरलीधर बौड़ाई । गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार-विहार आदि का वैज्ञानिक विवेचन । मूल्य ४)

साँपों की दुनियाँ

लेखक—श्री० रमेश वेदी आयुर्वेदालंकार

"साँपों की दुनियाँ" श्री रामेश वेदी द्वारा रचित सर्पविज्ञान सम्बन्धी एक मौलिक रचना है। सापों का रहन-सहन, भोजन आदतें, आकस्मिक आक्रमण से बचाव सर्प-विष के प्रकार, उसका मनुष्य एवं अन्य प्राणियों पर प्रभाव, सर्पविष चिकित्सा आदि विषयों पर लेखक ने अभी तक किये गये प्रयोगों एवं अनुसंधानों का सरल भाषा में सारांश दिया है।

भारतवर्ष में बहुतायत से पाये जाने वाले विषहीन एवं विषैले सापों का विस्तृत एवं सचित्र वर्णन भी दिया है तथा प्रत्येक जाति के सांप की शरीर-रचना, उसकी आदतें, रहन-सहन, भोजन, मनोविज्ञान इत्यादि का सुन्दर चित्र खींचा है। लेखक की भाषा रोचक है, और शैली सुन्दर। हमारे पूर्वजों का सर्प सम्बन्धी ज्ञान, प्राचीन संस्कृत साहित्य में विभिन्न जाति के सर्पों का उल्लेख, सर्पों का वर्गीकरण विषैले एवं निर्विष साँपों की पहिचान, साँपों के विष-दन्त एवं विष ग्रन्थियों की रचना, सर्प-विष का मनुष्य और दूसरे प्राणियों पर प्रभाव, सर्प-विष चिकित्सा और सापों की आर्थिक उपयोगिता इत्यादि पर लेखक ने विस्तृत प्रकाश डाला है।

"सापों की दुनियाँ" साँपों से सम्बन्धित वैज्ञानिक अनुसन्धान, अवैज्ञानिक किम्वदन्तियाँ एवं अन्ध विश्वास, प्राचीन साहित्य में सापों का उल्लेख एवं तत्सम्बन्धो ज्ञान का निचोड़ है। मूल्य ४)

फसल के शत्रु

लेखक—श्री० शंकरराव जोशी

बहुत से कीट मानव-समाज का अहित करते हैं, कुछ कीट इन कीटों का ही संहार कर डालते हैं तथा कुछ कीट अन्य रूप से मनुष्य का हित करते हैं। सिद्धहस्त और अनुभवी लेखक ने इस पुस्तक में उन कीटों का वर्णन किया है जो फसलों को विशेष हानि पहुँचाते हैं। वैज्ञानिक कृषि तथा व्यापारिक प्रतियोगिता के इस युग में इन जंतुओं के करतब का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य ही है। फसलें बो लेना और प्रति एकड़ पैदावार बढ़ा लेना मात्र ही कृषि व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर लेना नहीं माना जा सकता। खेत में खड़ी फसलों और बगीचे के पौधों की शत्रु से रक्षा करना तथा गोदाम में रक्खी गई पैदावार को कीड़ों और रोगों से बचा लेना भी आवश्यक है।

इस पुस्तक में फसलों, लकड़ी, कोठरों में भरे नाज, साग, तरकारी आदि सभी वस्तुओं की इन शत्रुओं से सुलभ साधनों द्वारा प्रभावोत्पादक रूप से रक्षा पा लेने की विधियाँ तथा उन शत्रु रूपी कीटों तथा रोगों की पूरी पहचान भी दी गई है। डबल फुलसकेप सोलहपेजी आकार के लगभग ३५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ३॥)

पता—विज्ञान परिषद्, बैंक रोड, इलाहाबाद

Reg. No. 372

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादि बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायँगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम

सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद् बैंक रोड, इलाहाबाद

विज्ञान

विज्ञान परिषद प्रयाग का मुख-पत्र

नवम्बर, १९५२
वृश्चिक २००९

भाग ७६
संख्या २

वार्षिक मूल्य
तीन रुपए

प्रति अंक
पाँच आने

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh for use in Schools, Colleges and Libraries

विज्ञान के नियम

१—वार्षिक मूल्य ३) तथा प्रति अंक का ।=) है

२—प्रतिमास प्रथम सप्ताह में विज्ञान प्रकाशित होता है।

३—ग्राहक किसी भी मास से बनते हैं।

४—वार्षिक मूल्य सदा दो एक मास पूर्व अग्रिम भेजने से ।=) वी॰ पी. व्यय की बचत हो सकती है।

५—नमूने की प्रति माँगने पर या बिना मांगे भी ज्ञात पतों पर मुफ़्त भेजी जाती है।

लेखकों से निवेदन

१—लेख किसी भी विषय के वैज्ञानिक पक्ष पर होना चाहिए।

२—लेख मनोरंजक और सुबोध होना चाहिए।

३—कागज पर एक ओर ही सुपाठ्य लिखना चाहिए।

४—चित्र सदा काली स्याही से बने होने चाहिए। हल्के या अन्यरंग में बने चित्रों का ब्लाक नहीं बन सकता।

५—लेख भेजने के दो मास पश्चात् भी न छपने पर स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य—तीन रुपये, एक संख्या का मूल्य—पाँच आने।

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५

भाग ७६ | वृश्चिक २००९; नवम्बर १९५२ | संख्या २

विज्ञान और मानव-समाज

मनुष्यों में हम विचित्र प्रवृत्ति देखते हैं । जो व्यक्ति एक स्थल पर अत्यंत ही संकीर्ण धारणा का कठोर उदाहरण उपस्थित करता है, स्वार्थ की पूर्ति के लिए कोई भी मार्ग अवलंबन करने का साहस कर सकता है, दो पैसे किसी भी प्रकार अपने निकटवर्ती व्यक्ति, पड़ोसी, या किसी भी ग्राहक से ऐंठ लेने में ही दिन रात लिप्त रहता है, वही कहीं कुछ मनोकल्पित धारणाओं, अन्ध-विश्वासों एवं कतिपय व्यसनों के कारण किसी विशेष स्थल पर अतिशय उदारता का उदाहरण उपस्थित करता दिखाई पड़ सकता है । पैसे-पैसे का लोभी वणिक या परिश्रम पूर्वक अर्जित धन संग्रह करने वाला साधारण ग्रामवासी, नागरिक या श्रमिक कितने मनोयोग से अपनी धन-मंजूषा भरी रखने का उद्योग करता है । अपने व्यापारिक पदार्थ या श्रम के लिए वह पैसों की थोड़ी रियायत भी करने का घोर विरोध करता दिखाई पड़ सकता है । परन्तु इन्हीं धन-लोलुपों को आप कभी व्यसन-ग्रस्त देख सकते हों तो उनकी प्रवृत्ति सर्वथा बदली हुई देखकर आश्चर्य ही हो सकता है । हम कुछ अन्धविश्वासों के कारण किए जाते हुए अनुपकारी ढकोसलों में पचुर धन राशि दान स्वरूप देने की चर्चा कर सामाजिक रूढ़ियों की खिल्ली उड़ाना नहीं चाहते हैं, ऐसे व्यक्तियों का उपहास करने में लिप्त नहीं होना चाहते हैं । हम तो केवल प्रवृत्तियों की ही चर्चा करने के उत्सुक हैं अतएव उदाहरण रूप में हम कुछ अन्य व्यसनों की ही चर्चा करने जा रहे हैं ।

कोई मद्यपी है । स्वयं अज्ञान तथा पूर्व अभ्यास वश धन अपव्यय कर स्वास्थ्य का भी क्षय करता है, किन्तु किसी पड़ोसी या सहवासी या मित्रता का बाना पहने किसी व्यक्ति को मद्य का अनभ्यासी देखकर अपने साथ प्रेरणा पूर्वक ले कर अपने पैसों से ही प्रारंभ में मद्य पिलाना प्रारंभ करता है । उसे इसमें सुख मिलता है । वह अपने परिश्रम से अर्जित या संचित धन का यहाँ पर परित्याग करने में तनिक भी कष्ट का अनुभव नहीं करता । मद्यपी ही नहीं सभी व्यसनों का अभ्यस्त व्यक्ति यही दृश्य उपस्थित करते दिखाई पड़ सकते हैं । धूम्रपान का अभ्यासी सिगरेट बीड़ी का एक प्रचार उद्देश्य सा लेकर आप को इस लत से अनभ्यस्त देख कर अपने पैसों से आप में इनका अभ्यास कराना एक परम सुख का साधन समझता है । अन्य जघन्य व्यसनों में लिप्त व्यक्ति भी उसका आप के ऊपर भी

प्रभाव डालने की चिन्ता में अपने गाँठ का पैसा खोल कर व्यय करने में कुछ लोभ का अनुभव नहीं करता।

हम व्यसन की ही बात नहीं कहते, अन्य मार्गों के अवलंबी व्यक्ति भी अपने स्वभाव, धारणा आदि के मार्ग में अन्य व्यक्ति को चलाने के लिए परोपकार वृत्ति-सा व्यक्त करते उन स्वभावों, धारणाओं की धुन में आप पर भी उसी का जादू चलाने के लिए अपार त्याग करते पाये जा सकते हैं। उनको मानों बंधुत्व की भावना ही इन त्यागों के लिए प्रेरित किया करती है। उनमें कभी व्यसन, कभी भली बुरी लत, कभी सच्ची या झूठी धारणा और कभी औचित्य या अनौचित्य पूर्ण विश्वासों के प्रसार के लिए अपनी कृपणता, धनलिप्सा, समयाभाव आदि सभी कठिनाइयों को दूर होते पा सकते हैं जिन्हें हम उन्हीं व्यक्तियों को जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रबल रूप से जकड़े पाते हैं।

मानव-स्वभाव ही कदाचित ऐसा है जो एक मार्ग के अवलंबी होने के लिए कुछ कष्ट, त्याग आदि के करने की प्रेरणा अपने में सहज ही पाकर उसकी पूर्ति में सुख का अनुभव किया करता है। हम वैज्ञानिक हैं। क्या इन मानव-सुलभ प्रवृत्तियों में लिप्त होकर अपने व्यवसाय की वृद्धि की कल्पना में संलग्न होने में कुछ व्याधाएँ अनुभव कर सकते हैं? विज्ञान की खोज का प्रमुख साधन प्रयोगशाला होती है। उन्नति की कल्पना में खोज के साधन रूप में एक दो नहीं, दस बीस नहीं, सौ पचास भी नहीं बल्कि विश्व भर में घर-घर को इस प्रकार की लहर में बहा कर प्रयोगशाला बन जाने देने में सुख का अनुभव नहीं कर सकते? किन्तु विचार करते-करते एक विश्राम-स्थल दिखाई पड़ता है। कुछ गंभीरता पूर्वक मनन करने पर दूसरी दिशा में भी ध्यान जाता है। उन्नतिशील अवस्था वांछनीय ही है। प्रयोगशाला रूप में विज्ञान की खोज के साधनों की असीम वृद्धि एक मनोहर कल्पना हो सकती है। परन्तु एक क्षण के लिए मान भी लिया जाय कि संसार भर के पुरुष शोधक घोषित हो गए। प्रत्येक आवास ही नहीं, आवासों के कक्ष-कक्ष भी प्रयोगशाला बन गए, परन्तु क्या यह रूप ही हमारा अंतिम लक्ष्य हो सकता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति वैज्ञानिक तुला के सम्मुख बैठा हो, प्रत्येक प्राणी सूक्ष्म दर्शक यंत्र लगाए अन्वेषण में लिप्त हो, प्रत्येक नर नारी सड़क, मैदान, गली, बाजार, आदि में साग-भाजी नमक, तेल, चावल दाल क्रय करने जाते भी हाथ में 'परख नली' लिए ही घूमता दृष्टिगोचर हो सकता हो। यहां यह प्रश्न नहीं है कि यह व्यावहारिक पहलू हो सकता है वा नहीं, प्रश्न तो यह है कि क्या यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए? क्या इसी समव्यवसायी पथ का अनुयायी ढूंढ़ने या बढ़ाने के लिए हमें उन्हीं वृत्तियों से प्रेरित होना चाहिए जिसमें धूम्रपान, मद्यपान या अन्य व्यसनों वा धारणाओं के अनुरक्त व्यक्तियों को लिप्त देखा जा सकता है?

प्रत्येक विचारवान व्यक्ति कह उठेगा कि नहीं, हम अपना लक्ष्य मानव समाज को अधिक सुखी रखने में ही पूर्ण होता देख सकते हैं। सम व्यवसायियों की वृद्धि ही हमारा परम लक्ष्य नहीं हो सकता। सर्वदेशीय, सर्वकालीन मानव की सुख वृद्धि का साधन हमारी उन्नत, बहु संख्यक, सर्वदेशप्रचलित प्रयोगशालाएं अवश्य बनेगी, परन्तु विज्ञान अपने शोध-साधनों को ही लोगों पर लादने में प्रवृत्त नहीं हो सकता। बल्कि शोधों से व्यक्त ध्रुव सत्यों तथा सबके सुख-सामग्री की संयोजना के सुगम मार्ग को ही प्रचारित तथा विज्ञापित कर सकता है। शोधक (साधक) सदा अल्प ही रहेंगे किन्तु उनकी शोधों का प्रभाव चहुँधा व्यापित अवश्य रहेगा। अतएव हमें यह आवश्यक होगा कि अपनी अपनी शोध शक्ति में सहायता प्राप्त करने के लिए जन-साधारण पर अपनी कार्यपद्धति, शोधप्रणाली, हस्तगत वैज्ञानिक सफलताएँ अथवा मानवों के कल्याण वर्द्धक साधनों को सहज ही प्रस्तुत कर सकने वाली ज्ञात विधियों को विज्ञापित ही करते रहें जिससे उनको हमारी शोधों का पूर्ण लाभ उठाने, ज्ञान समुन्नत करने का जहां एक ओर अवसर मिले; वहाँ हम उनसे यथायोग्य उन सहायताओं को भी प्राप्त करते रहें जिनसे हमारी शोधों के संचालित रहने की आधार भित्ति दृढ़ होती रहे।

अतएव हम जो कुछ कर रहे हैं, कर सकते हैं, या कर चुके हैं उनकी वैज्ञानिक तथा सार्वजनिक महत्ता सब पर विदित करते रहना परमावश्यक ही हो सकता है। इसी कारण हम यह कह सकते हैं कि वैज्ञानिक

प्रचार की विशेष आवश्यकता वैज्ञानिकों या विज्ञान-प्रेमी व्यक्तियों में ही नहीं हो सकती। बल्कि उन व्यक्तियों में हो सकती है जिनको आप विज्ञान की आवाज सुन सकने से दूर, प्रयोगशालाओं की परिधि से बाहर ही देखते हैं। आज का युद्ध सचमुच ही रणक्षेत्र में ही नहीं लड़ा जाता, बल्कि रणभूमि से सुदूर, शान्त दिखाई पड़ने वाले भूखंडों में ही लड़ा जाता है जहां रणमत्त योद्धाओं की आवश्यकताओं, युद्ध के आयुधों, की पूर्ति के लिए आवश्यक उपकरणों के लिए कृषक कहीं खेतों में खाद्यान्न उगाता है, श्रमिक खेतों या निर्माण शालाओं में अपने पसीने से कुछ पदार्थों के उत्पन्न करने, निर्माण करने में योगदान करता है। शिक्षक भावी सैनिक की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करता रहता है, वस्त्र निर्माता सैनिक तथा असैनिक सभी व्यक्तियों के लिए वस्त्र निर्माण में लिप्त रहता है जिससे युद्ध के भी परिधान बने, युद्ध चलाने वालों के परिवार या अन्य सभी के लिए भी वस्त्र प्राप्त हो जो किसी भी प्रकार का योगदान दे रहे हैं। देशभर की पूर्ण असैनिक रूप की दिखाई पड़ने वाली शक्ति भी देश की युद्ध सामर्थ्य को निश्चित करती है।

इसी प्रकार हमारी प्रयोगशालाओं का कार्य तथा प्रभाव-क्षेत्र भी महान है, लक्ष्य भी विशाल है। हमें वैज्ञानिक शोधक उत्पन्न करने से ही संतुष्ट नहीं होना है। बल्कि उनकी कर्तृत्व शक्ति तथा सफलताओं का जनसाधारण में व्यापक प्रचार करना है। सर्व-साधारण को भी स्वावलंबन की भाँति अपनी सुविधाओं के साधन तथा ज्ञान-वृद्धि के रूप में वैज्ञानिकों तथा शोधकों की कार्य-पद्धति, सफलता आदि का अधिकाधिक ज्ञान अर्जन करने की आवश्यकता नितान्त वांछनीय है। रण का संचालक अपनी आंतरिक सभी तैयारी तथा शक्ति का ज्ञान प्राप्त किए बिना कुशलता पूर्वक रण-संचालन कर ही नहीं सकता। आप भी अपने या संसार के जीवन युद्ध में उसे विजयी बना सकने के वैज्ञानिक साधनों का पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने के लिए सजग रहे बिना जीवन-कार्य आगे चला ही नहीं सकते अतएव विज्ञान का प्रचार उनमें ही अत्यावश्यक है जो अपने को संकीर्ण क्षेत्र में बाँधकर विज्ञान शालाओं से दूर रहनेवाला, काव्य, साहित्य, आदि मार्ग का अनुगामी या दुनियादार व्यक्ति समझते हैं। उन्हें अविज्ञानी, या विज्ञान-विरोधी या किसी प्रकार के संबोधनों से संबोधित कर हम अपनी अज्ञान राशि की वृद्धि करना, स्वीकार नहीं कर सकते। वे तो उस लक्ष्य के ही आधार स्तंभ हैं जिसकी पूर्ति या सुख-वृद्धि का आयोजन हमारी विज्ञान-शालाओं या शोध साधनों द्वारा होता है। अतएव विज्ञान का संदेश सतत इन पात्रों तक ही हमें पहुँचाना है जो हमारे साध्य या विज्ञान के आराध्य मानव हैं।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्व

विपिन कुमार अग्रवाल, एम० एस-सी०

लेखक ने इस लेख में दृष्टिकोणों में नवीनता लाने के लिए तर्क दिए हैं जिज्ञासा वृत्ति रखने तथा अज्ञात क्षेत्रों में भी प्रवेश पाने की कामना रखने की प्रेरणा दी है जिसे हम जीवन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण कह सकते हैं। लेख उत्प्रेरणा पूर्ण तथा पठनीय है।

संसार में मुख्यतः मनुष्य दो प्रकार के हैं। एक वे जो सहज-बुद्धि (Common sense) द्वारा इंगित पथ के राही हैं, दूसरे वे जो अधिक बौद्धिक हैं और इसलिए अपनी मान्यताओं के विषय में अधिक सजग हैं। प्रथम श्रेणी के लोग प्रायः दूसरी कोटि के सदस्यों पर अपनी आवश्यक-मान्यताओं (Postulates) के लिए निर्भर रहते हैं इस बारे में उनका कभी-कभी उदासीन या संदेहमय हो जाना स्वाभाविक है; परन्तु यह स्थिति हमारी मीमांसा के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। हम बिना किसी संकोच के यह मान कर चल सकते हैं कि 'एक युग के मानसिक झुकाव (Intellectual tendency) का स्रोत उस समय के शिक्षित वर्ग में प्रचलित दुनिया के प्रति दृष्टिकोण ही है।' उस विशेष युग के चरम-बिन्दु को छूने तक यह दृष्टिकोण धारणा में परिणत हो जाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के महत्व को समझना आज बहुत आवश्यक इसलिए हो गया है क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक-सिद्धान्त सहज-बुद्धि की सीमा को लांघ कर दूसरे काल्पनिक स्तर की ओर अग्रसर हो गया है। अठारहवीं शताब्दी में सहज-बुद्धि से प्राप्त ज्ञान का संचय कर उसे व्यवस्थित रूप दिया गया। जो कुछ नापा और देखा जा सकता था उसे नापा और देखा गया। बिना अर्थ की बातें कम या दूर कर दी गईं। पर आज यह कार्य इतना सहज नहीं है। एक दृष्टिकोण से जो विचार या व्यापार हमें हास्यप्रद लग सकता है, दूसरे से वही अत्यधिक गंभीर एवं विचारोत्पादक। उदाहरण के लिए हम दिक्-काल (Space-time) संबंधी धारणाओं को ले सकते हैं। भौतिक-शास्त्र[1] (Phrysics) में काल वह है जो दिक् की तुला में नापा जा सकता है। इसलिए काल, अनुभव-निरपेक्ष, दिग् में अन्तर्हित है। जो इस काल के लिए सही है वह निश्चय तौर पर उस काल के लिए सही नहीं है जिसे हम सहज-बुद्धि से अनुभव करते हैं। अतः भौतिक-शास्त्र के नए-प्रयोगों के साथ हमें अपने पुराने विचारों को नए सिरे से ढालना है। हमें अधिक काल्पनिक होकर त्रिधा-विस्तृत (Three-dimensional) विश्व को छोड़ कर चतुर्धा-विस्तृत (Four-dimensional) विश्व की व्याख्या करनी है। इस चतुर्धा-विस्तृत विश्व में होने वाले व्यापारों को समझना है। उन व्यापारों के पीछे जो भौतिक-नियम-प्रवाह है, उसके प्रति सचेत होना है। फिर भौतिक-नियम-प्रवाह एवं नैतिक-नियम-प्रवाह के सम्बन्ध के प्रति सजग होना है।

हमें एक उच्च काल्पनिक स्तर तक पहुँचा देने का बहुत कुछ श्रेय हमारे अच्छे आधुनिक यन्त्रों को है। जैसे जैसे अधिक यथार्थ (accurate) यन्त्रों का आविष्कार हुआ हम अपने अन्वेषणों से ज्यादा विस्तृत और तत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सके। हमारे ज्ञात-विश्व का दायरा बढ़ गया। पुरानी व्याख्याएं असंतोषजनक प्रतीत होने लगीं। पुनर्जागृति के पश्चात् पश्चिम में जो वैज्ञानिक अन्वेषण का उदय हुआ उसका पूर्ण विवरण देना यहाँ निरर्थक होगा। इतना कहना पर्याप्त है कि स्पिनोजा का यन्त्रवाद, मार्क्स का जड़वाद (जिसको रूस के कुछ मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों

से पुष्टि मिली हैं), डार्विन का विकासवाद और फ्रायड की मनोवैज्ञानिक खोज, सब विज्ञान से प्रेरणा पा चुके हैं। मनुष्य की विश्व-व्याख्याओं में उथल-पुथल मचा चुके हैं। दार्शनिक-प्रगति में बहुत से मोड़ डाल चुके हैं। अतः कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आज के वैज्ञानिक ज्ञान की स्थिति हमारी पूर्व-मान्यताओं को उखाड़ फेंके। एक बिल्कुल नवीन और अकाल्पनिक स्थिति को हमारे सामने प्रकट कर दे। हमें एक नई विश्व व्याख्या को अपनाने के लिए मजबूर कर दे। पर इससे पहिले कि विकास के इतिहास में इतनी महत्वपूर्ण घटना घट सके हमें उसके लिये तैय्यारी करनी पड़ेगी और उस ओर पहला कदम होगा आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता से परिचित होना और उसे अपनाना।

जिस प्रकार सापेक्ष्यवाद (Theory of Relativity) ने हमारे विचारों को बदल दिया है उसी तरह का बहुत कुछ प्रभाव मात्रा-सिद्धान्त (Quantum theory ने भी हमारे ऊपर डाला है। इस सिद्धान्त के विषय में यहाँ पर उसके दो रोचक एवं ध्यान देने योग्य गुणों को जान लेना उचित होगाः—

१. कुछ प्रभाव जो हमें तारतम्यात्मक (Gradual) तौर पर घटने या बढ़ने के लायक मालूम होते हैं, वे वास्तव में केवल निश्चित उछाल (jumps) द्वारा ही घटाए या बढ़ाए जा सकते हैं। यह कुछ इसी प्रकार से है कि एक पल में आप आगे या पीछे एक कदम या दो कदम चल सकते हैं, पर कभी भी डेढ़ कदम नहीं। २. अनियतवाद का नियम (Principle of Indeterminacy) इस नियम के अनुसार एक विद्युदणु (electron) की स्थिति (position) तथा गमता (momentum) कभी भी बिल्कुल सही (exactly) नहीं जानी जा सकती। इस नियम को दो प्रकार से समझा जा सकता है। प्रथम इस तरह से कि कुछ हेतुक-नियम (causal-law) ऐसे हैं जिनके कारणवश मन्त्रों की सहायता से, अभी ही नहीं वरन् नियमानुसार भविष्य में भी, कभी विद्युदणु की स्थिति और गमता दोनों यथार्थ रूप में नहीं जाने जा सकते हैं। ऐसी समीक्षा से हमारे यंत्र बनाने के गर्व को धक्का लगता है। अच्छे से अच्छे अणवीक्ष (microscope) बना कर भी हम इस कमी को दूर नहीं कर सकते हैं। दूसरे हम यह भी कह सकते हैं कि विद्युदणु की स्थिति एवं गमता यथार्थ रूप में नहीं जाने जा सकती हैं, इसलिए नहीं कि हेतुक-नियम (causal,law) हमारे अवलोकन में बाधा डालता है, वरन् इसलिए कि विद्युदणु ऐसी वस्तु ही नहीं है जिसकी यथार्थ स्थिति या गमता हो। वस्तु-सत्ता-संरचना (structure of matter) की कल्पना नहीं की जा सकती है। वह केवल गणित की भाषा में अभिव्यक्त की जा सकती है।

उपरोक्त सिद्धान्तों के अनुसार हमारी इन्द्रियों से जाने हुए विश्व-तत्व में और उनके वैज्ञानिक ज्ञान में (विशेषकर पदार्थ-विज्ञान के क्षेत्र में) बहुत अन्तर है। जहाँ वैज्ञानिकगण ऐन्द्रिक अनुभूतियों से जाने गए विश्व तत्व को 'केवल आत्मपाती' (merely subjective) कह कर टाल देते हैं वहाँ वे उससे निष्कर्ष किए गए ज्ञान या सत्य को मान लेते हैं। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि भौतिक शास्त्र-विश्व और इन्द्रिय-गम्य-विश्व (World of sense) के बीच की दूरी का निवारण कर दिया जाए। कार्य अत्यन्त दुरूह है फिर भी एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का बोध होने पर कुछ हद तक इस कार्य को आरम्भ करने में सहायता मिल सकती है।

ईश्वर की धारणा को निर्धारित करने में विज्ञान का क्या हाथ है, मेरे लिए अपने सीमित अध्ययन के कारण-वश कहना कठिन है। फिर भी धैर्य और विज्ञान के बारे में एक आध शब्द कहना मैं ठीक समझूँगा। पिछले ७० या ८० वर्षों में विज्ञान के निष्कर्षों तथा धर्म विश्वासों में इतना साफ अन्तर रहा है कि उसकी अवज्ञा नहीं की जा सकती। परन्तु यह स्थिति शायद बहुत अधिक असंतोष-जनक नहीं है और न इतनी विरोधात्मक है जितनी कुछ उत्साही विचारकों द्वारा बना दी गयी है। वैसे तो विज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक परस्पर विरोधी विचार प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए न्यूटन का कणिका-सिद्धान्त (corpuscular theory) और हाइंगस का तरंग-वाद (wave-theory), प्रकाश के प्रभावों को समझने के लिए, किये जा सकते हैं। आज बहुत से ऐसे प्रभाव ज्ञात हैं जो कि केवल तरंगवाद की सहायता

से समझे जा सकते हैं और बहुत से ऐसे भी जो केवल कणिका-सिद्धान्त की सहायता से। वैज्ञानिकों को ऐसी स्थिति पर आकर रुक जाना पड़ा है, भविष्य में किसी अधिक व्यापक नियम की खोज की आशा में जो दोनों सिद्धान्तों का मिलाप कर सके। यही बात धर्म और विज्ञान के मध्य विरोध पर भी लागू हो सकती है। क्यों न हम आशावादी होकर (पर अकर्मण्य होकर नहीं) किसी ऐसे दृष्टिकोण की प्रतीक्षा करें जो इस अलगाव को नष्ट कर सके। 'A clash of doctrines is not a disaster—it is an opportunity"–Whitehead. मेरा अपना मत है कि शिक्षित वर्ग का हर सदस्य कुछ हद तक (चाहे वह संस्कार वश हो या अध्ययन वश) मोक्ष-धार्मिक दृष्टिकोण से परिचित है, यही बात वैज्ञानिक दृष्टिकोण की चेतना के बारे में नहीं कही जा सकती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि वैज्ञानिक विचारों से हम अपने को भिज्ञ करें। उनके ढंग से सोचें, समझें और व्यवहार करें, प्रथम इसके कि धर्म एवं विज्ञान में किसी प्रकार की सहचरता का समावेश हो सके।

वैज्ञानिक क्षेत्र में रुचि रखने वाले राष्ट्र की भाषा भी अधिक सुदृढ़ और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की क्षमता रखने वाली हो जाती है। वहाँ की भाषा के शब्द-भंडार में प्रगति हो जाती है। विज्ञान के गंभीर भाव-प्रकाशन से भाषा को नए और व्यापक संकेत मिलते हैं जो साथ ही साथ सतर्क भी होते हैं। और बिना किसी मतभेद के हम सब सहमत हैं कि किसी भी प्रकार की उन्नति के लिए, चाहे वह दार्शनिक हो, धार्मिक हो, व्यापारिक हो या राजनीतिक हो, एक समृद्ध एवं प्रभावपूर्ण भाषा अत्यन्त आवश्यक है। साहित्यिक प्रगति के लिए तो भाषा का शक्तिशाली होना अनिवार्य है ही। यह भी व्यक्त है कि भाषा में यह सब गुण शब्दों की सहायता से ही समावेश कराए जा सकते हैं। ये शब्द अपनी उपयोगिता के अनुसार दो प्रकार के होते हैं :—१. 'नाम'—वस्तु का परिचयात्मक संकेत।

२. 'आख्यात'—वस्तु के व्यापार का वाची।

विज्ञान में यह दोनों ही प्रक्रियाएँ मौजूद हैं। नए तथ्यों की खोज से 'नाम' शब्दों की वृद्धि होती है। इन तथ्यों के व्यापारों को अभिव्यक्त करने के लिए 'आख्यात' शब्दों का प्रचुर मात्रा में समावेश होता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि भाषा में भावाभिव्यंजनात्मक उन्नति के लिए भाषियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सजगता अनिवार्य है।

अब तक का सारा विवेचन शिथिल सा रहा है, कुछ भाषा की कठिनाइयों के कारण और कुछ एक छोटे से लेख में बहुत कुछ कह देने के प्रयत्न के फलस्वरूप। ऐसे लेख का अन्त लिखना बहुत समस्यापूर्ण हो जाता है। इस स्थान पर एक मुख्य बात की ओर ध्यान आकृष्ट करके मैं समाप्त कर दूँगा। वह है विज्ञान में जिज्ञासा वृत्ति की प्रधानता। नए विचारों और नए शास्त्रों की सहायता से अनजाने क्षेत्रों में विचरने की प्रबल प्रेरणा। ऐसी यात्राओं में मिलने वाली दुर्घटनाओं को अपनी प्रवीणता द्वारा पार करना। १९वीं सदी की सहजता और सुरक्षता को बलिदान कर सुधार की ओर बढ़ना। और यदि हम इस नारे से सहमत हैं तो हमारे लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाना नितान्त आवश्यक है।

भारतीय-भूशास्त्र के कुछ विवादात्मक प्रश्न

कृष्णचन्द्र दुबे, एम० एस-सी०

भारतीय भूगर्भ विज्ञान के कौतूहलवर्द्धक प्रश्नों पर लेखक ने प्रकाश डाला है। हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य का अभाव ही है। लेखक के प्रयत्न को पाठक विशेष ज्ञान वर्द्धक तथा मनोरञ्जक पाएँगे।

भू विज्ञान गणितशास्त्र अथवा भौतिकविज्ञान की तरह एक निश्चित विज्ञान नहीं है। जहाँ भौतिक-विज्ञान में कोई भी प्रयोग या कोई भी सिद्धांत एक निश्चित आधार पर स्थित रहता है, वहाँ भूशास्त्र में अभी भी बहुत से सिद्धान्त और विचार कल्पना पर ही आधारित हैं। यद्यपि वैज्ञानिकों के निरंतर परिश्रम से शिलाशास्त्र (Petrology) ने बहुत कुछ एक निश्चित विज्ञान का रूप धारण कर लिया है—पर वह भी पूर्णरूपेण निश्चित नहीं कहा जा सकता। भूशास्त्र का अध्ययन प्रकृति की गोद में होता है, उसकी प्रयोगशाला स्वयं प्रकृति है। प्रकृति में प्राप्त अवलोकनों और तथ्यों का वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में पूर्ण परीक्षण करने के पश्चात् कुछ सिद्धांतोंकी सृष्टि करता है। यह स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के अवलोकनों में भिन्नता बहुत संभव है और इसलिए उनपर आधारित सिद्धांत भी एक से नहीं हो सकते। भूशास्त्र में इस प्रकार अनेक विवादात्मक प्रश्न हैं। भारतीय भूशास्त्र के अंतर्गत भी विवादात्मक प्रश्नों की कमी नहीं और इन प्रश्नों का एक सर्वमान्य हल उस समय तक संभव नहीं है जबतक भूविज्ञान के अध्ययन और तरीकों में हम और अधिक उन्नति न कर लें।

दक्षिण की पठार-शिलाओं (भूबंध) की अवस्था :—

भू काल के अनुसार दक्षिण के भूबंध या पठार-शिलाओं की क्या अवस्था है यह एक विवाद का विषय है। इन शिलाओं को तीन वर्गों या स्तरों में विभाजित किया जा सकता है।

उच्चतम स्तर—जो बंबई और काठियावाड़ में है।

मध्य स्तर—जो मध्य भारत और मालवा में है।

निम्नतर स्तर—जो मध्यप्रदेश व पूर्वी भाग में है।

प्रश्न यह है कि उस ज्वालामुखी-क्रिया का आरंभ, जिसने इन शिलाओं की रचना की, आदि स्तनपायी या पक्षीकाल (Cretaceous period) माना जावे या तृतीय खंड के ईओसीन काल में। क्रूकशैंक, स्वर्गीय प्रोफेसर साहनी और डाक्टर दुबे के अनुसार इस क्रिया का आरंभ ईओसीन काल है पर ओलधम, ब्लैंडफोर्ड और डाक्टर चिपलोनकर के विचारानुसार इस क्रिया का आरंभ पक्षीकाल का अंतिम भाग में माना जावे। इस प्रश्न की उत्पत्ति एच. वॉयसे के द्वारा प्राप्त जीवन-शेषों से हुई जो अंतर-ज्वालामुखी-शिलाओं के स्तरों से पायी गई थीं। इसके बाद ही कार्टर, हिसलोप और हँटर इस प्रश्न पर अध्ययन के फलस्वरूप एक निश्चित परिणाम पर पहुँचे। ब्लैंडफोर्ड ने अपने कार्य के पश्चात् यह कहा था कि कम के कम इस क्रिया का आरम्भ पक्षीकाल के अन्तिम भाग में माना जाना चाहिये। सन् १९२६ में हालेन ने भी लिखा था कि इस बारे में संदेह नहीं कि ज्वालामुखी-शिलाओं के बीच में स्थिति सारी शिलाओं (अन्तर-ज्वालामुखी शिलास्थित-स्तर) की अवस्था पक्षीकाल है। इस विचार की पुष्टि बलूचिस्तान में प्राप्त फायसा-प्रिंसेपाई अवशेष से होती है। डुडुकुरू नामक स्थान में ज्वालामुखी शिलाओं के नीचे सारी शिलाओं से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं वे त्रिचिना-पल्ली की पक्षीकाल-शिलाओं से प्राप्त अवशेषों से समा-

नता रखते हैं। हाल में इन शिलाओं में श्री श्रीपाद राव और श्री नारायन राव ने कुछ सूक्ष्मावशेष प्राप्त किये हैं जिनमें नोडो सरिया, ट्राइलॉकुलिना और एसीकुलेरिया-अवशेष ईओसीन से पूर्व-शिलाओं में अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। नरवदा-घाटी में ये ज्वालामुखी शिलाएँ बाध-सारी-शिलाओं पर स्थित हैं जिनकी अवस्था मध्य-पक्षीकाल है। बाध-शिलाओं और ज्वालामुखी शिलाओं में थोड़ी पर स्पष्ट असंगति (Unconformity) है—भड़ोंच और सूरत में ईओसीन काल की शिलाओं और इन शिलाओं में स्पष्ट असंगति और कालांतर है। ज्वालामुखी शिलाओं का नष्ट-भाग इनमें मिलता है। कच्छ में ये शिलाएँ जुरासिक या आदि पुष्पकाल और आदि-पक्षीकाल की सारी शिलाओं पर असंगत रूप से स्थित हैं और इनके ऊपर ईओसीन काल की शिलाएँ हैं जिनकी इन शिलाओं से असंगति स्पष्ट नहीं है। प्रोफेसर बीरबल साहनी और उनके सहायक वैज्ञानिकों के अनुसार ज्वालाशिलाओं की अवस्था ईओसीन काल है, पक्षीकाल नहीं और निपाडाइटिस और अजोला अवशेष इसकी पुष्टि करते हैं। डाक्टर सुन्दरलाल होरा ने मध्यप्रदेश के तकली और पहारसिंह नामक स्थानों में प्राप्त मत्स्य अवशेषों का अध्ययन किया है और उसके फलस्वरूप स्तरी-शिलाओं की अवस्था आदि-ईओसीन लगाई है। डाक्टर विद्यासागर दुबे ने इस शिलाओं का अध्ययन अणु विस्फोटक-क्रिया अथवा रेडियन-धनिता की दृष्टि से किया है व डाक्टर सुकेशवाला ने भी इस ओर कार्य किया है। इनके प्रयोग फलों से यह तो स्पष्ट है कि ज्वालामुखी-शिलाओं की अवस्था उच्च-पक्षीकाल से ओलीगोसीन तक हो सकती है पर संदेह उन फलों की शुद्धता में हो सकता है। डाक्टर दुबे एक उच्च भू-वैज्ञानिक हैं अवश्य, पर यह विषय प्रकांड भौतिक-वैज्ञानिकों का विषय है। डाक्टर दुबे का प्रयोग-ज्ञान इस ओर अभीष्ट स्तर तक पहुँचने की आशा नहीं की जा सकती। और उनके इन फलों पर संदेह होना स्वाभाविक है। एक बहुत थोड़ी गलती ही इस प्रश्नको कई लाखों वर्ष इधर-उधर कर देगी। लेखक का तात्पर्य यह नहीं है कि डाक्टर दुबे या डाक्टर सुकेशवाला के फल गलत हैं, पर जब तक इस दिशा में और अधिक और सूक्ष्म-कार्य नहीं होता हम इन फलों पर पूर्ण-विश्वास नहीं कर सकते।

सिंध में रानीकोट के निकट बोर पहाड़ी में ज्वालामुखी शिलास्तर की स्थिति उन सारी-शिलाओं के ऊपर है जो कार्डिटा-ब्यूमान्टी अवशेषों से भरपूर है। यह अवशेष पक्षीकाल का द्योतक है। इन ज्वालामुखी शिलाओं के ऊपर ईओसीन काल की रानीकोट-श्रेणी की सारी शिलाएँ हैं। कार्डिटा-ब्यूमांटी-स्तर के नीचे भी ज्वालामुखी शिलाओं का एक स्तर है। इन दो ज्वालामुखी शिलाओं के बीच की सारी शिलाओं में नोटिलस-बूकार्डिनस अवशेष भी मिलता है। यह भी पक्षीकाल का द्योतक है। इनसे यह प्रकट है कि सिंध की इन शिलाओं की आरंभावस्था पक्षी-काल के अंतिम भाग से ईओसीन तक है।

ज्वालामुखी शिलाओं की अवस्था पक्षीकाल से आरंभ है, इसका सबसे अकाट्य प्रमाण मध्यप्रांत के जबलपुर में प्राप्त आधारों से मिलता है। जबलपुर में ज्वालामुखी शिलाएँ संगति-रूप से लमेटा-श्रेणी की सारी-शिलाओं पर स्थित हैं। उनके बीच असंगति या कालांतर का कोई भी चिन्ह नहीं है। लमेटा श्रेणी की अवस्था दानवसरट-अवशेषों के आधार पर प्रोफेसर ह्यून ने मध्य पक्षीकाल निश्चित की है और इससे जबलपुर ज्वालामुखी शिलाओं की अवस्था उच्चपक्षीकाल होगी—यह प्रायः निश्चित है। और क्योंकि जबलपुर की शिलाएँ भारतीय ज्वालामुखी शिलाओं का निम्नतर स्तर हैं, इससे इस क्रिया का आरंभ उच्च-पक्षीकाल में मानने में आपत्ति न होना चाहिये। डाक्टर चिपलोनकर का भी इस प्रश्न पर व्यक्तिगत विचार यही है।

यद्यपि इस दिशा में अधिक कार्य की आवश्यकता है पर तब तक ज्वालामुखी क्रिया का आरंभ उच्च पक्षी काल मानना उचित है। भारतीय-भू-निरीक्षण-विभाग का भी यही मत है।

नीचे भारत के भिन्न स्थानों में ज्वालामुखी शिलाओं और अन्य शिलाओं की स्थिति समझाई गई है :—

भूकाल का सर्वमान्य वर्गीकरण

(केवल पद्मीकाल और ईओसीन काल लिये गये हैं)

तृतीयक युग अथवा
अर्वाचीन भूकाल-खंड—ईओसीन(Eocene)
(Tertiary)

मध्य युग या मध्य खंड (mesoxoic)
- पद्मीकाल (Gretaceous)
  - डेनियन
  - मेसट्रिकियन
  - कैंपेनियन
  - सीनोनियन
  - टूरोनियन
  - सीनोमैनियन
  - अलबियन
  - अपटियन
  - बैरेनियन
  - होटेरिवियन
  - बैलैंजिनियलन
- आदि पुष्पकाल (Jurassic)
- आदि महागोधिका काल (Triassic)

ज्वालामुखी शिलाओं की स्थितिः—

(१) ज्वालामुखी शिलाएँ

— — — — —

बाध स्तरी शिलाएँ (सीनोमैनियन से सीनोनियन)

(२, ज्वालामुखी शिलाएँ

— — — — —

लमेटा-श्रेणी की सारी शिलाएँ (टूरोनियन)

(३) ज्वालामुखी शिलाएँ

— — — — —

कार्डिटा-ब्यूमांटी सार (डैनियन)

पंजाब-नमक पर्वत श्रेणी की उत्पत्ति और नमक-स्तर की अवस्था

नमक-स्तर शिलाओं की अवस्था भारतीय भूशास्त्र के अंतर्गत एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विवाद पूर्ण विषय रहा है और अभी भी उसके विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि नमक-पर्वत पाकिस्तान में चला गया है पर यह विषय तो अंतरदेशीय अध्ययन का विषय है। इसी से इस जगह इसका विवरण दिया जा रहा है। इस नमक स्तर (Salt marl) की स्थिति नमक-पर्वत की स्तरी-शिला-श्रेणी के नीचे है। कई जगहों पर ये स्तर अवशेषहीन बैंगनी रंग लिये हुई रेतदार शिला (Sandstone) के नीचे हैं और इस रेतशिला की अवस्था केम्ब्रियन अनुमानित है। स्तरक्रम-सिद्धांत के अनुसार नमक-स्तर की अवस्था केम्ब्रियन या पूर्व केम्ब्रियन है।

सिंधु नदी के पश्चिम में कोहाट में इसी प्रकार के शिला स्तर मिलते हैं जिनमें नमक पाया जाता है। इन स्तरों की अवस्था ईओसीन निश्चित की गई है। और इन स्तरों की शिलाभूमि की पंजाब नमक श्रेणी की शिलाभूमि से केवल १७ मील का अंतर है! नमक श्रेणी की शिलाओं में तैलीय शेल शिला की तथा तेल की उपस्थिति यह अनुमान लगाने में सहायता करती हैं कि कोकाट तथा पंजाब की ये शिलाएँ एक अवस्था की हैं तथा पंजाब में नमक स्तर की यह प्रतिकूल स्थिति किसी भू-उत्पादन के कारण है। पर वायनी और पूर्व निरीक्षकों के अनूसार पंजाब की नमक शिला केम्ब्रियन और कोहाट नमक शिला ईओसीन अवस्था की हैं।

स्तर क्रम के सिद्धांत के अनुसार पंजाब नमक श्रेणी केम्ब्रियन अवस्था की ही होनी चाहिये! बहुत खोज-बीन, अध्ययन और जाँच के पश्चात भी भू-वैज्ञानिक इस विभाग में अभीतक किसी ऐसे चिन्ह की खोज नहीं कर सके हैं जिससे यहपता चले कि किसी उत्पात के कारण ही नमक-स्तर इस प्रतिकूल अवस्था में है। और कई जगहों पर स्तरक्रम बिलकुल प्राकृतिक और यथाक्रम है। डाक्टर सिरिल एस. फाक्स ने सन् १९२८ में इस विषय में मत दिया था कि सिस-सिंधु के

कुछ भागों में नमक-स्तर केम्ब्रियन शिलाओं के नीचे है और इनके बीच उत्पात का कोई चिन्ह नहीं है ! पर ई. आर. गी ने नमक पर्वत का सूक्ष्म भू-निरीक्षण करने और नक्शा बनाने के पश्चात् यह कहा कि नमक-स्तर की यह प्रतिकूल अवस्था भयंकर भू-उपद्रव के कारण है और वास्तव में नमक-स्तर की अवस्था ईओसीन है। आश्चर्य की बात है कि श्री गी ने १६२७ से लेकर ७ वर्ष इस भाग के कार्य करके और नमक श्रेणी की अवस्था ईओसीन काल बताकर अपना मत एकदम बदल दिया और पंजाब के नमक स्तर को केम्ब्रियन में रखने लगे।

स्वर्गीय प्रोफेसर बीरबल साहनी ने नमक-स्तर की अवस्था ईओसीन निश्चित की है ! यह मत सूक्ष्म वनस्पति अवशेषों के आधार पर दिया गया है जो नमक-स्तर में मिलते हैं। पूना में अखिलभारतीय विज्ञान कांग्रेस (All India Science Congress) के अवसर पर एक जर्मन भू वैज्ञानिक ने आचार्य साहनी से जब यह पूछा कि उन्हें ये सूक्ष्मावशेष (Microfossils) कहाँ मिले, श्री साहनी ने उत्तर दिया था कि इस शिला का छोटे से छोटा १ टुकड़ा भी उन्हें दिया जावे तो उसमें वे सूक्ष्मावशेषों की उपस्थिति बता देंगे। डाक्टर साहनी ने इस प्रकार इस क्षेत्र में ऐसा महत्वपूर्ण कार्य किया है जो गौरव की बात है और यह मत अकाट्य है ! कुछ विरोधियों का कहना है कि ये अवशेष इस नमक स्तर में बाद में आये पर सब सत्यों और शेल शिला इत्यादि के अध्ययन के बाद यह तर्क निराधार सिद्ध हो जाता हैं। श्री गी एक दूसरा निराधार, बेकार-सा तर्क पेश करते हैं कि ये अवशेष किसी केम्ब्रियन काल के विकसित वनस्पति जगत के होंगे—(!) उनका यह तर्क बिलकुल ही मानने योग्य नहीं है। प्रोफेसर साहनी एक ठोस तर्क और खोजें प्रस्तुत करते हैं जिसमें गलती की आशा उतनी नहीं जितनी श्री गी के भू अध्ययन और सार क्रम-अध्ययन में होना संभव है। विश्व के अन्य भागों में नमक स्तरों की अवस्था भिन्न-भिन्न है—जैसे—अमेरिका के गल्फ कोस्ट भाग में तृतीयक युग; इंग्लैंड में आदि-महागोधिका काल या ट्रायसिक, जरमनी में परमियन और ईरान में केम्ब्रियन। डाक्टर कृष्णन अपनी पुस्तक में कहते हैं कि केम्ब्रियन अवस्था प्रगट करने वाला पक्ष मजबूत है ! पर प्रोफेसर साहनी का पक्ष हमारी दृष्टि से अधिक मजबूत नींव पर है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यह प्रश्न कितना विवादपूर्ण है और इसका एक हल अभी तक संभव नहीं। अब तो यह भाग पाकिस्तान के अधिकार में है और हमें वहाँ के भूनिरीक्षण विभाग की खोजों पर ही अपने मत बनाने होंगे। डाक्टर जी डबल्यू चिपलोनकर कभी-कभी हँसी में कहते हैं कि विभाजन के अन्य दुष्परिणामों और नुकसान के अलावा, यह नमक पर्वत का पाकिस्तान में जाना भारत के लिए एक बड़ी हानि है जिसकी पूर्ति संभव नहीं।

पंजाब नमक पर्वत में स्तर-क्रम यह है—

साल्ट स्यूडोमार्फ शेल—४५० फीट (Salt pseudomarph shale)

मैगनेशियन सैंडस्टोन—२५० फीट (Magnesian Sand stone)

नियोबोलस स्तर—१०० फीट (Neobolus Beds)

बैंगनी सैंडस्टोन—४५० फीट (Purple Sandstone)

नमक स्तर—१५०० फीट (Salt marl)

नमक स्तर की अवस्था के समान ही उसकी उत्पत्ति भी एक विवादजनक विषय है ! श्री ओल्डहम के अनुसार इसकी उत्पति किसी पूर्व-शिला पर अम्लीय गैसों के प्रभाव से हुई है और इस प्रकार यह एक परिवर्त्तित शिला है। डोलोमाइट, चूने के पत्थर और शेल पर सल्फूरिक और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की गैसों के प्रभाव से नमक, जिप्सम और कैलसियमयुक्त शिलाओं की उत्पत्ति हुई। श्री मिडलेमिस ने डाक्टर फ्लेनिंग के मार्ग पर कार्य कर यह कहा कि पृथ्वी के अंदर से ऊपर उठी हुई इन स्तरी शिलाओं में घुसी हुई शिला है ! (Intrusive) श्री पैस्को के अनुसार यह शिला स्तरी-शिला है और इसकी अवस्था तृतीयक युग है और पंजाब में इसकी प्रतिकूल स्थिति भू-उत्पात के कारण है। यही कोकेन नोएललिंग, ज्यूबर और हालैंड का भी मत था। डी० एन० वाडिया और डेवीस के अनुसार कोहाट-भाग की

जिप्सम शिला चूने की शिला के परिवर्तन से उत्पन्न हुई है और इसी आधार पर यह स्तर भी स्तरी शिला है जो तृतीयक अवस्था की है व भू-उत्पत्ति के कारण इस प्रतिकूल अवस्था में है।

(चित्रों के अध्ययन से इस प्रश्न को समझने में बहुत सहायता मिलेगी। चित्र भू-भारतीय भू निरीक्षण विभाग के संचालक, की कृपा से प्राप्त हो सके हैं)
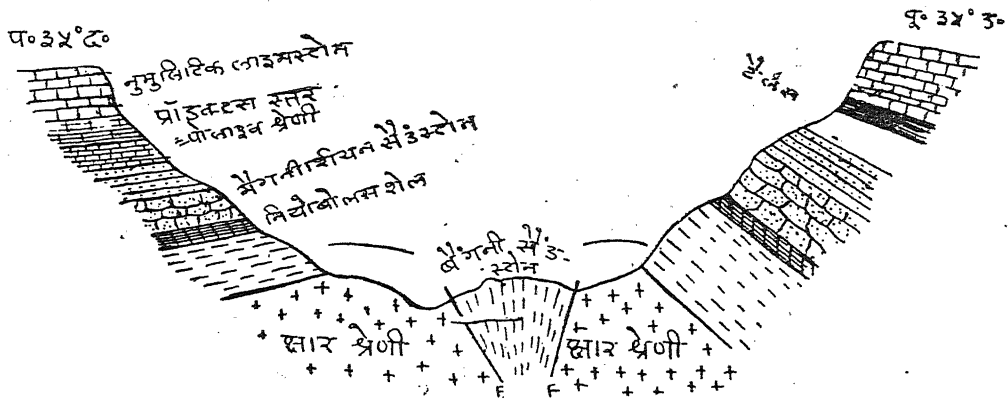
निलवन घाटी में क्षार पर्वत स्तरों की दशा
(ए० बी० वायनी० मोमायर १४)
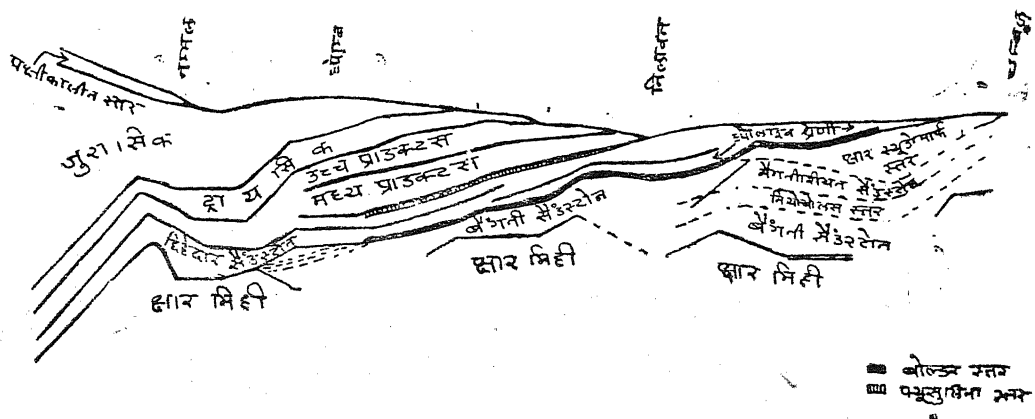
क्षार-पर्वत में शिला स्तरों की स्थिति

भारतीय चारनोकाइट शिलाएँ

सन् १९०० में भारतीय भू-निरीक्षण विभाग के श्री टी० एच० हॉलैंड ने दक्षिण भारत की आर्कियन-शिला-समूह से एक विशेष प्रकार की शिलाओं को अलग किया। ये शिलाएँ वास्तव में ग्रेनाइट-शिला हैं जिनमें हायपरस्थीन खनिज विशेष रूप से मिलता है। श्री हॉलैंड ने यह भी देखा कि कलकत्ता शहर के जन्मदाता जॉब चारनॉक की समाधि में इसी शिला प्रस्तरों का उपयोग किया गया है। श्री चारनाक की स्मृति अमर बनाने के हेतु हॉलैंड ने इन शिलाओं को चॉरनोकाइट

के नाम से विख्यात किया। चॉरनोकाइट शिलाएँ श्रेणी रूप से मिलती हैं और अम्लीय चारनोकाइट से लेकर अति भस्मीय चॉरनोकाइट तक का ज्ञान हो चुका है। हॉलैंड का अध्ययन थॉमस पहाड़ी की शिलाओं में था। चॉरनोकाइट की उत्पत्ति का प्रश्न भारतीय भौमिक-विज्ञान के अंदर एक विवादात्मक प्रश्न लेकर आया।

श्री हॉलैंड ने अपने अध्ययन और खोजों के पश्चात् कहा कि ये शिलाएँ पातालिक अग्नि-शिलाएँ (प्लूटॉनिक इग्नियस) हैं। स्टिलवेल के अनुसार चॉरनोकाइट परिवर्तित शिलाएँ हैं और यह परिवर्तन-क्रिया (मेटामॉरफिस्म) पातालिक गहराई में भयंकर ताप और दबाव के कारण हुई। फ्रेडेनबर्ग ने १६१८ में सुझाव दिया कि ये शिलाएँ धारवार-श्रेणी-परिवर्तित शिलाएँ हैं। धारवार श्रेणी की शिलाएं प्रथम सारी शिलाएं है जो विश्व की प्रथम शिला के नष्टीकरण से उत्पन्न हुई थी। श्री० पी० के० घोष ने बस्तर में इन शिलाओं का अध्ययन किया है और उनके अनुसार ग्रेनाइट और कैल्क-ग्रैनुलाइट शिलाओं के मिश्रण से इन शिलाओं की उत्पत्ति है और यह मिश्रण ग्रेनाइट में पृथ्वी तल से कैल्क-ग्रैनुलाइट के आक्रमण से हुआ।

मैसूर भू-निरीक्षण विभाग के श्री बी० रामाराव हॉलैंड से भिन्न विचार रखते हैं। अपने लंबे कार्य और अध्ययन के पश्चात् उन्होंने "मैसूर की चारनोकाइट-शिलाएं" नामक पुस्तक में अपने विचार दिये हैं। उनके अनुसार मैसूर की शिलाओं की उत्पति हॉलैंड के विचार के आधार पर नहीं समझाई जा सकतीं। मैसूर की शिलाएँ (१) अति प्राचीन स्तरी श्रेणी के परिवर्तन से और (२) नोराइट और हायरस्थीन गैब्रो शिलाओं के ग्रैनाइटी-करण अथवा ग्रैनिटाइजेशन से उत्पन्न हुई होंगी। रामाराव का कहना है कि मैसूर की शिलाएँ थोमस पहाड़ी की शिलाओं से मिलती हैं और यह सम्भव है कि इस पहाड़ी की शिलाओं की उत्पत्ति भी वैसी ही हो जैसी मैसूर-शिलाओं की है क्योंकि श्री हालैंड के विचार, रामाराव के अनुसार, सारे तथ्यों को नहीं समझा सकते।

स्टिलवेल, फ्रेडेनबर्ग और रामाराव का पक्ष चारनो काइट को परिवर्तित शिलाएँ मानता है और हालैंड-पक्षीय इन्हें पातालीय अग्नि शिलाएँ कहते हैं। डाक्टर कृष्णन अपनी पुस्तक "भारत और बर्मा का भूशास्त्र" में प्रथम पक्ष को अधिक मजबूत मानते हैं।

गोंडवाना शिलाक्रम का वर्गीकरण

गोंडवाना शिलाक्रम के बारे में भी भारतीय भौमिक-वैज्ञानिकों में दो पक्ष हैं। गोंडवाना-शिलाक्रम उन शिलाओं का सामूहिक नाम है जो पैलियोजायक युग के उच्च खंड और मध्य युग के आदिमहागोधिका आदिपुष्प और आरंभिक पक्षीकाल में बनों। ये शिलाएँ भारत में कच्छ, पूर्वी समुद्री तट, गोदावारी घाटी, सतपुड़ा पहाड़ी विभाग, सोन और महानदी घाटी, राजमहल और दामोदर घाटी में मिलती हैं। ये शिलाएँ वनस्पति और प्राणि अवशेषों से भरपूर हैं। इस शिला क्रम को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है :—

उमिया
जबलपुर
कोटा
....
मलेरी-परसोरा
महादेव
~~~~~~~~~~~~~~
पाँचेत
....
दामूदा
तालचिर

प्रश्न है कि इन श्रेणियों का वर्गीकरण पाँचेत-स्तर के ऊपर सीमा मानकर दो खंडों में किया जावे (~~~~~~~~ रेखा) अथवा तीन खंडों में जो (......) रेखा से दर्शाया है।

प्रथम पक्ष जो गोंडवाना-शिलाक्रम को दो खंडों में विभाजित करने के लिए जोर देता है, अपने विचार प्राणि-अवशेषों पर आधारित करता है। इस पक्ष में डाक्टर फाक्स, डाक्टर कृष्णन आदि हैं। हाल में श्री वेंकटराम और श्री आयांगार ने इस पक्ष के आधार पर प्रकाश डाला है (Rec. G. S. I. Vol. Lxxv. Prof. paper 7)
~~~~~~~~~~~~~~

गोंडवाना शिलाक्रम के निम्नांकित स्तरों में प्राणि अवशेष मिलते हैं—

७. मध्यप्रांत के सतपुड़ा पर्वत के उत्तरी उतार के देवा स्तर

६. मध्य भारत में दक्षिणी रीवाँ के टिकी स्तर

५. हैदराबाद के मलेरी स्तर

४. बंगाल के पाँचेत स्तर

३. नागपुर का मांगली स्तर

२. पचमढ़ी के दक्षिण के बिजोरी स्तर

१. काश्मीर के गंगामोप्टेरिस स्तर

एम्ब्लीप्टेरस और आर्किगोसारस अवशेषों के आधार पर कश्मीर के गंगामोप्टेरिस स्तर की अवस्था उच्च-कारबोनिफेरस काल से लेकर आरंभिक परमियन तक मानी जाती है। इस विचार की पुष्टि वनस्पति-अवशेषों के आधार पर प्रोफेसर सीवार्ड ने भी की है। गोंडवानो सारस अवशेष की उपस्थिति बिजोरी स्तर को आरंभिक से लेकर मध्य परमियन काल है। जिडेकर और कॉटर भी इसी मत के हैं। ब्रैकी ऑप्स अवशेष जो मांग्ली स्तर में मिलता है, आदि पुष्पकाल का द्योतक है व उसी स्तर का राइनोसारस अवशेष कॉटर के अनुसार आरंभिक आदि-महागोधिका काल अवस्था बताता है। डाक्टर कोटर का विचार अधिक उचित प्रतीत होता है।

पाँचेत-स्तर के अवशेषों पर उतने निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, पर श्री लिडेकर सोचते हैं कि पाँचेत आदि-महागोधिका काल के लगभग अवस्था का है। पर डाक्टर ह्वाइट पाँचेत-स्तर के एँब्लीप्टेरस अवशेष को कारबोनिफेरस-परमियन काल का मानते हैं। अन्य अवशेषाचार्य पाँचेत स्तर को आदि-महागोधिका काल का ही मानते हैं और इसकी पुष्टि दक्षिण-आफ्रिका, यूरोप इत्यादि में प्राप्त अवशेषों की तुलना से होती है। मलेरी टिकी-देवरा निश्चित ही उच्च आदिमहागोधिका-काल के हैं। टिकी की शिलाओं में मैसोस्पांडिलस-अवशेष लमेटा काल के दानवसरट का पूर्वज प्रतीत होता है।

यह उचित दिखता है कि तालचिरकाल की बर्फीली जलवायु से लेकर ग्लाँसोप्टेरिस बनस्पति के अंत तक के गोंडवाना काल को एक खंड माना जावे और इस कारण इस पंच वाले उन सभी स्तरों को जिनमें पैलियोजायक युग के तथा मध्य-युग के प्राणी और वनस्पति-अवशेष मिलते हैं निम्न-खंड में रखते हैं जिसकी ऊपरी सीमा पाँचेत के ऊपर के स्तर हैं जिनमें टाइचोफायलम वनस्पति अवशेषों की अधिकता है।

गोंडवाना शिलाक्रम का त्रैवर्गीकरण फीस्टमेंटल, फ्रेडेनबर्ग और वाडिया के द्वारा भारतीय भौमिक-शास्त्र में परिचित हुआ। इस योजना में उच्च, मध्य और निम्न गोंडवाना खंड यूरोप के परमियन, ट्रायसिक और जुरासिक के समकालीन हैं। दामूदा के बाद सूखी, अर्ध-मरुस्थली जलवायु का होना स्तरों में लाल रंग की अधिकता से ज्ञात होता है। फिर स्टीगोसिफैलियन अवशेष और रेंगने-वाले जीवों के अवशेष आदिमहागोधिका-काल का होना और पाँचेत के आरंभ में पैलियोजायक और मध्ययुग की सीमा तथा रानीगंज स्तर के ऊपर असंगति के चिन्ह-ये सभी बातें मध्यगोंडवाना खंड को अलग रखने के सुझाव की पुष्टि करते हैं। गंगामोप्टेरिस और स्फीनो-फायलम वनस्पति का दामूदा के बाद पूर्णतया नष्ट हो जाना भी यह सूचित करते हैं कि यहाँ निम्न-मध्यखंड सीमा होना संभव है। इसके उपरांत भी मध्यगोंडवाना खंड और यूरोप के आदिमहागोधिका काल के स्तरों और अवशेषों में समानता यह निश्चित ही करते हैं कि यह त्रैवर्गीकरण भी भारतीय- भौमिक शास्त्र में एक महत्वपूर्ण

स्थान रखता है। और वर्गीकरण, चाहे किसी भी वस्तु अथवा घटनाओं का हो, सुविधा का साधन है।

नीचे गोंडवाना-शिलाक्रम की दोनों वर्गीकरण-योजनाएँ दी गई हैं—

अंतरदेशीय भूकाल विभाजन	गोंडवाना का द्विवर्गीकरण	गोंडवाना का त्रैवर्गीकरण
पत्नीकाल — आरंभिक आदि पुष्प काल { उच्च, मध्य, आरंभिक	जबलपुर { उमिया, जबलपुर राजमहल { कोटा, राजमहल	उच्चखंड { उमिया, जबलपुर, राजमहल, कोटा
आदि महा गोधिका काल { रेटिक, क्यूपर, मुसेलकाल्क, बुंटेर	महादेव { मलेरी, पचमढ़ी ~~~~~~ पाँचेत — पाँचेत	मध्यखंड { मलेरी, पचमढ़ी, पाँचेत
परमियन { उच्च, मध्य, आरंभिक कारबोनिफेरस उच्च	दामूदा { रानीगंज, बैरनमेजर, बाराकर, करारबारी तालचिर { रिकबा, तालचीर, बोल्डर स्तर	निम्नखंड { दामूदा, तालचिर

शब्द सूची

भू-विज्ञान, भौमिक विज्ञान	Geology
शिलाशास्त्र	Petrology
निश्चित विज्ञान	Exact Science
भूबँध	Deccan Trap
पत्नीकाल	Cretaceous
अंतरज्वालामुखी शिलास्तर	Inter trappeans
असंगति	Unconformity
आदिमहागोधिका काल	Triassic
आदि पुष्पकाल	Jurassic
स्तर क्रम	Stratigraphy
भू-उपद्रव	Tectonic Disturbance
सूक्ष्मावशेष	Microfossils
पातालिक अग्नि शिला	Plutonic Igneous Rocks
ग्रैनाइटीकरण	Granitisation

अवलोकित-ग्रंथ सूची

(1) Mem. G. S. I. Vol LVIII.—1931. C. S. Fox.

(2) Proceedings of 24 th.Ind. Sci. Cong. General Discussion···1937

(3) Rec. G. S. I; Vol. Lxxv. 1940. Prof. Paper NO. 7 Aiyanger & Venkatrom.

(4) Geology of India.D. N. Wadia. 1949 Print.

(5) Geology of India & Burna–1949 M. S. Krishnan

(6) Sec. Symposium on Age of Salina Series. Ind. Ac. Sc, 1945

दूध का महत्व

श्रीरामरक्षा शुक्ल

दूध के अवयवों तथा उपयोग का वैज्ञानिक विवेचन लेख में किया गया है। उसकी शुद्धता की आवश्यकता भी बताई गई है। लेख ज्ञानवर्द्धक है।

दूध एक ऐसा पौष्टिक पदार्थ है जो कि सम्पूर्ण जगत के मानवप्राणी ही को नहीं वरन् पशुओं तक को भी समान रूप से लाभकारी सिद्ध हुआ है। प्रकृति के अन्दर यह एक ऐसा पदार्थ है जिसके स्वाद का अनुभव राजा से लेकर रंक तक ने चाहे वह किसी भी जाति, स्थिति एवं परिस्थिति का क्यों न हो, अवश्य किया है। क्योंकि प्रकृति जन्म के पूर्व ही, माता के स्तनों में इस अमूल्य वस्तु का निर्माण कर देती है जिसको बालक उत्पन्न होने पर पीता है और कुछ कालतक इसी के भरोसे अपना पालन-पोषण करता है।

वैसे तो संसार में जीवन निर्वाह के लिये अनेकों खाद्य पदार्थ हैं किन्तु दूध के अतिरिक्त सभी अपूर्ण भोजन हैं। केवल दूध ही पूर्ण पदार्थ है। यह इतना हलका एवं सुपाच्य होता है कि थोड़े काल का उत्पन्न बालक भी सुगमता से पचा लेता है। इसीलिये दूध आदर्श भोजन मान लिया गया है

प्रकृति में जितने स्तनधारी जीव विचरण कर रहे हैं उनकी मातायें बच्चा उत्पन्न करने के साथ २ दूध भी उत्पन्न करती हैं किन्तु सब का दूध एक सा नहीं होता। सबके गुणों में अपार अंतर है। कोई तो दूध अधिक मात्रा में देती है और कोई थोड़ी मात्रा में। थोड़ी मात्रा में दूध देने वाले पशुओं का दूध बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है और औषधि रूप में, उपयोग में लाया जाता है। उदाहरणार्थ गधी, घोड़ी, ऊँटिन एवं शेरिन आदि। किन्तु हमें उन पशुओं के दूध की चर्चा करना है जो कि सर्व-साधारण के द्वारा साधारणतया प्रति दिन आहार के रूप में, उपयोग में लाये जा रहे हैं जैसे माँ का दूध, गाय, भैंस, भेड़ी एवं बकरी का दूध।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न प्रकार के दूधों का विश्लेषण करके, उनके अन्दर उपस्थित तत्वों एवं विटामिनों की समान्य मात्रा इस प्रकार से निश्चित किया है :—

नाम दूध	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	विटामिन ए	बी	सी
गौ	३.३	३.६	४.९	०.७५	+++	++	+
भैंस	४.८	७.६७	४.३६	०.८७	+++	+	+
बकरी	४.३	६.००	४.२६	०.७५	+++	+	+
भेड़ी	५.२८	७.०४	४.६	०.७५	+++	+	+
स्त्री	१.४४	५.२४	२.६४	०.२४	+++	+	+

साधारणतया दूध में पाये जाने वाले तत्वों का सामान्य अनुपात इस प्रकार से है :—

जल	८७.२	शर्करा	४.९
ठोस पदार्थ	१२.८	प्रोटीन	३.३
वसा-पदार्थ	३.९;	लवण	०.७

उपर्युक्त तत्वों की, सामान्य मात्रा, दूध देने वाले पशुओं के आहार, स्थान एवं जलवायु पर निर्भर होती है। दूध के वसा-पदार्थ विशेष मातृत्वकारी होते हैं क्योंकि इन्हीं की उपस्थिति से मक्खन, घी एवं पनीर आदि प्राप्त होते हैं। रासायनिक दृष्टि से वसा दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पहला अनुद्वापी- न उड़ने वाला; दूसरा उद्वापी- उड़ने वाला। ये दोनों, वसा पदार्थ में, ८९ प्रतिशत एवं ११% के अनुपात में पाये जाते हैं।

प्रोटीन का मुख्य भाग कैसीनीजन कहलाता है जो सूक्ष्म कण के रूप में 'खतिकमस्फुरेत" के साथ उपस्थित रहता है। यह गरम करने पर अधःक्षेपित नहीं होता। कुछ विद्वानों की राय है कि जब कोई अम्लीय विलयन इसमें मिलाया जाता है तो वह दूध के खतिकम से संयुक्त हो जाता है जिसके कारण कैसीनोजन का अधःक्षेपित प्रारम्भ हो जाता है, तत्पश्चात् दही के निर्माण की क्रिया भी आरम्भ हो जाती है विदेशों में पनीर इसी कैसीनोजन से बनता है। हमारे यहाँ छेने की बनी बँगला मिठाइयों में भी यह उपस्थित रहता है। कैसीनोजन की मात्रा प्रोटीन की ५/६ या ३/४ के लगभग होती है।

वर्तमान युग में दूध का प्रयोग, भाँति-भाँति, रूपों में किया जा रहा है। कोई एक रस दूध (Homogenised milk) पसन्द करता है तो कोई सुखाया हुआ दूध (Condensed milk) चाय के लिये अति उत्तम समझता है अगर कहीं पर बच्चों को परिवर्तित दूध पोषण के लिये दिया जा रहा है तो दूसरी ओर चूर्ण दूध के द्वारा द्वितीय महायुद्ध जैसे रणस्थलों में सेनानियों का रक्षण हो रहा है। इसके अतिरिक्त दूध दही एवं मक्खन के रूप में बहुतायत से प्रयोग में लाया जा रहा है। खोये से भाँति २ की मिठाइयाँ भी बनती हैं।

यद्यपि दूध हमारे लिए अति ही उपयोगी पदार्थ है किन्तु हमारी अशिक्षता इसको सुरक्षित रखने में भी बाधक रही है। हमारे भारत देश में दूध के विक्रेता प्रायः अशिक्षित हैं जो कि दूध की पवित्रता पर कम ध्यान देते हैं और कई पशुओं का दूध एक में मिला कर बेचते हैं जो कि हानिकारक होता है। हमारे यहाँ गोशालायें इतनी गंदी, मैली कुचैली एवं कच्ची रहती हैं जो कि बरसात में सड़ जाती हैं। अतएव भाँति २ के डंस, मच्छर एवं कीड़े मकौड़े एकत्रित हो जाते हैं। ये कीटाणु दूध में प्रविष्ट हो जाते हैं जो अन्तोगत्वा भाँति २ की बीमारियाँ जैसे यक्ष्मा, टाइफाइड, ज्वर एवं डिसेन्ट्री आदि फैलाने में सहायक होते हैं अतएव दूध को शुद्ध एवं कीटाणु रहित रखने के लिये नीचे की बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

१—पशु को प्रकाश में बाँधना चाहिए जिससे बहुत से कीटाणु मर जाते हैं।

२—पशुओं को शुद्ध एवं पक्की जगह बाँधना चाहिये और फिनाइल तथा तूतिया से धोते रहना चाहिए।

३—गाय अगर रोग ग्रसित हो तो उसकी चिकित्सा करना चाहिये।

४—दूध देने वाले पशुओं को नित्य प्रति धोना चाहिए। नहलाते समय थन, गुदा एवं पूँछ का भाग अवश्य धुलना चाहिए और इन स्थानों में चिपकी किलनी एवं डंस को निकाल देना चाहिये।

५—दूध दुहनेवाला साफ स्वच्छ होना चाहिए। बीमार आदमी को कभी दूध न दुहने देना चाहिए।

६—दूध दुहने के पहले पशु के थन एवं बरतन को साफ करके दुहना चाहिये।

७—पश्चिमी देशों की भाँति, हमारे यहाँ भी दूध में ८७-८८% पानी एवं १२-१३% ठोस पदार्थ का होना अनिवार्य कर देना चाहिये और यह तभी सम्भव है जब सरकार इसके जाँच के लिए इन्सपेक्टर आदि की नियुक्ति करे। कीटाणुओं से दूध को सुरक्षित रखने की आधुनिक विधियाँ :—प्रधानतः दो विधियाँ काम में लाई जाती हैं।

प्रथम विधि—निश्चेष्टीकरण (Sterlisation)–इस विधि के अंतर्गत दूध को ५-३० मिनट तक १२०° तक गरम करना चाहिए जिससे सभी कीटाणु मर जाते हैं। तब दूध को जिस बर्तन में रखना हो उसमें से हवा निकाल कर बन्द कर देना चाहिए। ऐसा करने पर दूध वर्षों तक सुरक्षित रक्खा जा सकता है किन्तु यह दूध आसानी से नहीं पचता। अतएव यह विधि न्यूनतम रूप से कार्य में लाई जाती है।

द्वितीय विधि–पास्च्यूरीकरण Pasteurisation) इस विधि का प्रचार सर्वप्रथम पास्च्यूर नामक वैज्ञानिक ने सन् १८४६ ई० में शराब को सुरक्षित रखने के हेतु प्रचार कया था। तत्पश्चात् सन् १८६६ ई० में दूध सुरक्षित रखने के लिए भी उद्योग किया गया।

इस क्रिया में ताजे दूध को ७०-९०°C तक केवल ३० मिनट तक गरम करना चाहिए और तत्पश्चात् बर्तन में रख देना चाहिए। इस क्रिया के अन्तर्गत ९५% कीटाणु चेष्टहीन हो जाते हैं और यह दूध २४ घंटे तक काम में लाया जाता है। इस विधि का प्रचार साधारणतः अधिकतम रूप में किया जा रहा है।

(पृष्ठ ५४ का शेष)

हैं। ऐसे तीन पदार्थों में एक प्योक्यनिस नाम से ज्ञात पदार्थ है जो बालकों के डिपथेरिया रोग के कीटाणु का शत्रु है। इस पदार्थ का साधारण घोल डिपथेरिया के व्रण पर लगाने से वह रोग को दबाकर स्वास्थ्य लाभ कराता है। एक दूसरा पदार्थ बड़ा ही विचित्र सिद्ध हुआ। उस पदार्थ का कोई नाम और रंग नहीं, किन्तु वह हैजे सरीखे विकट रोग के कीटाणु की रामबाण औषधि की भाँति फल दिखाता है। मेचनिकाफ ने जिस समय इस कीटाणु द्वारा हैजा विनाशी प्रभाव उत्पन्न करने की बात सुनी, उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन दिनों उसके स्वदेश, रूप में हैजे का बड़ा जोर था। अतएव इस कीटाणुजन्य रस का दूसरे कीटाणु के विनाश की औषधि रूप में प्रयुक्त करने की कल्पना उसके हृदय में उठी। उसने तुरन्त ही अपनी प्रयोगशाला में इस सम्बन्ध की खोज आगे बढ़ाने का आयोजन किया। परखनली में इसके प्रभाव की बार-बार परीक्षा की जाने लगी। यह अपना प्रभाव स्पष्ट दिखाने लगा। परखनली तथा परीक्षार्थ पोषित जंतुओं के शरीर में इसके प्रत्यक्ष फल को देखा जाने लगा। किन्तु इन सफलताओं के बाद भी चिकित्सा जगत में इस औषधि द्वारा मनुष्य का हैजा दबाने की चलन न हो सकी। उन दिनों लोगों को एक कीटाणु द्वारा दूसरे कीटाणु के संहार करने की बात पूरी तरह जँचती नहीं थी। फिर भी कीटाणु द्वारा कीटाणु के विनाश की घटना शोधकों के सम्मुख प्रकट तो होती ही जा रही थी।

हरे मवाद के कीटाणु जनित पदार्थों में नीले तथा हल्के हरे तथा गहरे-नीले रंग के, तत्व भी हैं। हरा रंग अन्य कीटाणुओं द्वारा भी उत्पन्न होता है। किन्तु नीला रंग प्योक्यनियस दंडांगी कीटाणु की विशेषता थी। बड़ी मनोरंजक बात यह थी कि यह रंग, जो सुई की भाँति आकार के रवे रूप में उत्पन्न होता था, यदि हल्के घोल रूप में बनाया जाय तो वह घोल जंतुओं के शरीर को तो हानिकर नहीं होता किन्तु अन्य कीटाणुओं का नाशक होता। यह जन्तुओं की श्वास क्रिया को उत्तेजित करता। इससे ओषजनक का पाचन अधिक हो सकता, इसकी थोड़ी भी मात्रा से २० गुनी अधिक ओषजन पचाई जा सकती। ये खोजें निश्चय ही महत्व की थी। मेचिनकाफ के सम्मुख अपनी कल्पनाओं का समर्थन करनेवाली इतनी घटनाएँ आती दिखाई पड़ीं, परंतु उसके सिद्धान्त का प्रत्येक लाभ कुछ समयों के पश्चात् ही हो सकता था।

कीटाणुओं का संघर्ष

जगपति चतुर्वेदी

पेरिस नगरी में एक परमशान्त पथ है जहाँ जनाकीर्ण अन्य पथों की भाँति मोटरों, गाड़ियों आदि का कोलाहल नहीं सुनाई पड़ता मानों रावण की लंकापुरी में सर्वत्र उद्धत वातावरण रहने पर यह विभीषण की शान्ति कुटिया हो। यह भाग विज्ञान नगरी कहा जा सकता है जहाँ पास्च्युर के नाम से प्रसिद्ध प्रयोगशाला है। यहाँ पर ही किसी दिन पास्च्युर ने विज्ञान-जगत की अभूत पूर्व खोजो के लिए अपनी आरम्भ रूप की साधारण प्रयोगशाला में जीवन के कितने ही बहुमूल्य वर्ष बिताए थे। पास्च्युर की महान् खोजों से प्रभावित होकर ही फ्रान्स की जनता तथा सरकार ने इस विज्ञानशाला का स्थापन कर पास्च्युर का नाम अमर करने का उद्योग किया। पास्च्युर की मृत्यु के पश्चात् भी उसके जीवन में प्रवाहित शोध-धारा का वेग अक्षुण्ण रखने के लिए उसके योग्य शिष्यों ने प्रयत्नशील रहने का वातावरण रक्खा था। इनमें मेच-निकाफ नाम का एक रूसी वैज्ञानिक उसका शिष्य था। पास्च्युर ने अपने जीवनकाल में प्राचीन या पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों की अर्जित विद्या तथा खोजों का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता जहाँ समझी थी, वहाँ नूतन विचार-धाराओं या शोधों के युगान्तरकारी रूपों के लिए रूढ़ियों द्वारा बाधा न आने देने की भी सीख दी थी। अपने नए आविष्कृत सिद्धान्त या खोज के लिए अटूट साहस रख कर पुरातन पंथियों का विरोध करने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। यदि वह इतनी स्पष्ट विवेक-शक्ति तथा नवीनता ग्रहण कर सकने का साहस न रखता तो नई खोजों का श्रेय उसे मिल ही नहीं सकता था।

पास्च्युर के पदार्थों के सड़ान द्वारा विघटन में कीटाणु के माध्यम होने के सिद्धान्त को योरप के सर्वोच्च वैज्ञानिक लीबिग के अत्यन्त ही प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था। किन्तु पास्च्युर ने अटूट साहस तथा अपने शोध-कार्य में विश्वास रखने के कारण इस विरोध का सामना कर भी अपने प्रतिपादित नूतन विचारों की स्थापना की। वह समय केवल मौखिक विवादों, कोरे वाक्युद्धों का होता तो जर्मन रसायनवेत्ता लीबिग के सम्मुख पास्च्युर का टिकना कभी भी संभव न होता। परन्तु कीटाणुओं के प्रभाव को खमीर तथा सड़ान में समझने के लिए तर्क की जगह ठोस प्रयोगों ने पास्च्युर की धारणा आधारपूर्ण सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की। इन नूतन खोजों के प्रायोगिक आधारों को लगनपूर्वक प्रस्तुत कर सकने में समर्थ होकर पास्च्युर ने विज्ञान की शोधों का मार्ग प्रशस्त किया। पास्च्युर के मत का विरोध करते हुए लीबिग ने उग्र रूप में लिखा था, "जो लोग जीवज पदार्थों के सड़ान को सूक्ष्म जीवों द्वारा होने की बात समझाने का प्रयत्न करते हैं, उनका तर्क तो ठीक इसी प्रकार है मानों कोई बालक राइन नदी के प्रवाह को समझाने के लिए उसका कारण मेंज ग्राम में प्रचलित बहुसंख्यक पनचक्कियों द्वारा उत्पन्न हलचल को बताने का उद्योग करे। क्या हम लोग उचित रूप से पौधों तथा जीवों को वह साधन मान सकते हैं जिनके द्वारा अन्य जीव विनष्ट किए जा सकते हैं जब कि उनके ही निर्मायक अवयव उन्हीं सड़ान की प्रक्रियाओं में होकर जाने वाले हैं, जिस प्रकार उनके पूर्व के जीवों में हैं? यदि ओकवृक्ष के विनाश में फफूँद कारण है, यदि हाथी के शव के विखंडन में सूक्ष्मदर्शकीय जन्तु कारण हैं तो मैं पूछता हूँ कि वह कौन सा आधार है जो उन फफूँदों तथा सूक्ष्मदर्शकीय जीवों के सड़ान की क्रिया पूरी करता है जब कि इन दोनों संगठित दलों से प्राण विसर्जन कर चुका होता है?"

लीबिग ऐसे विख्यात रैसायनवेत्ता के ये तर्क हमें चिकित्सा तथा जीव-विज्ञान की खोजें ज्ञात होने पर उपहास की बात ज्ञात हो सकते हैं, परन्तु ऐसे तर्क का विरोध करने वाले प्रथम व्यक्ति के साहस का ही यह परिणाम हुआ कि उचित दिशा में खोज-कार्य चालित रह सका। अपने

इन्हीं अनुभवों तथा सूक्ष्म विवेक के आधार पर ही पास्च्युर ने अपने शिष्यों को सफलता का निश्चित मार्ग पा सकने के लिए निम्न गुरु-मंत्र दिया था जो आज भी सर्वथा सत्य है :—

"नए विचारों, यहाँ तक कि अत्यंततम क्रान्तिकारी विचारों का समर्थन करने में भी भय का अनुभव न करो। तुम्हारा अपना विश्वास ही मूल्य रखता है। किन्तु तुम में तुरन्त ही अपनी भूल भी स्वीकार करने का साहस होना चाहिए जब कि तुमने स्वयं अपने हृदय में यह सिद्ध होते समझा हो कि तुम्हारी धारणा मिथ्या है।......विज्ञान तो धारणाओं का समाधि-स्थल है।......किन्तु कुछ धारणाएँ जो मृत और समाधिस्थ प्रतीत होती हैं, किसी समय उठकर खड़ी हो इतनी प्रबलता से जीवन धारण कर लेती हैं, जैसा पहले कभी न किया हो।"

पास्च्युर ने जिन अनुभवों को थाती रूप में अपने शिष्यों को प्रदान किया या सीख दी उनसे उसके शिष्य मेचनिकाफ को पूर्ण लाभ उठाते पाया गया। पास्च्युर तथा रौक्स आदि वैज्ञानिकों ने अपनी शक्तियाँ यह सिद्ध करने में लगाई थीं कि कीटाणु जीवों का संहार करने में कितनी विकट शक्ति दिखाते हैं। इन जीवद्रोही कीटाणुओं की भिन्न-भिन्न रूप की कथाओं को संसार ने ज्ञात किया था। इनके संहार-कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए पास्च्युर इंस्टिट्यूट में परख-नलियाँ सजाई मिल सकती हैं जिनमें सैकड़ों प्रकार के कीटाणु पृथक-पृथक रखे अपनी उपस्थिति से संसार में नाना रोगों की भयंकरता को नलियों में दबा सकने की मनुष्य की शक्ति प्रकट करते दिखाई पड़ते हैं। ये कीटाणु अपनी तीव्रगति की वृद्धि तथा विनाश शक्ति में कुछ बाधाओं को पड़ते न देखते तो उनका कहाँ तक प्रसार हो पाता, इसकी कल्पना एक पास्च्युर के सहकर्मी डा० डेनिश ने बनाने का प्रयत्न किया था। उनका कहना था कि यदि यथेष्ट भोजन हो, और वृद्धि-क्रम में कोई बाधा न हो तो हैजे का कीटाणु इतनी तीव्रता से वृद्धि करता पाया जा सकता है कि दो सप्ताह में समस्त भूतल पर वह आच्छादित हो जाय। यह कितनी भयंकर बात हो सकती है, किन्तु यह अटकलपच्चू ही बात नहीं है, बल्कि इसके कीटाणु की उत्पादन-गति देखकर, गणना कर डा० डेनिश ने यह बात प्रकट की थी। यदि हैजे का एक कीटाणु ही अपनी संतान-वृद्धि का पूर्ण अवसर पा सके तो उसकी संतान इतनी अधिक संख्या की हो जायगी कि गिनती बताना कठिन हो जायगा। तोल के विचार से तो उसे एक दिन-रात में एक हजार टन होने की कल्पना की जा सकती है।

इतनी भयंकर वृद्धि की शक्ति रखने वाला कीटाणु अपनी शक्ति से क्या परिणाम उपस्थित कर सकता है किन्तु इन मारक या भक्षक कीटाणुओं की तरह हमारे रक्षक या सहायक कीटाणु भी होते हैं जिनका संग्रह पास्च्युर इंस्टिट्यूट में करने का प्रयत्न किया गया है। नाशकारी कीटाणुओं के स्थान पर कल्याणकारी कीटाणुओं पर रूसी वैज्ञानिक मेचनिकाफ की तीव्र दृष्टि पड़ी। यह समस्या ही उसके मस्तिष्क में रात-दिन चक्कर मारने लगी कि हमारे शरीर में भी ऐसे रक्षक या लाभप्रद कीटाणु होते हैं। उनसे हमें विशेष लाभ पहुँचता है। मेचनिकाफ ने यह धारणा बनाई कि मनुष्य के शरीर में ये रक्षक कीटाणु रामदल की भाँति विद्यमान रहकर भक्षक कीटाणु रूपी राक्षसों की असीम सेना का विनाश करने में समर्थ होते हैं। यह रक्षक और भक्षक कीटाणुओं का युद्ध निरंतर चलता ही रहकर हमारे शरीर के अन्तर्गत ही राम-रावण के युद्ध का दृश्य उपस्थित करता रहता है। यह कैसी मनोहर कल्पना थी!

मेचनिकाफ कहता, "हमारा शरीर सदा ही अनेक रोगों का कीटाणु-वाहक रहता है किन्तु इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि वे ऐसी स्थिति में होते हैं, जिन्हें दुर्बल या दबी अवस्था में होना कह सकते हैं। फिर भी वे विद्यमान तो रहते ही हैं, प्रबल रूप में भले ही न हों, किन्तु इनमें मारक-शक्ति निहित ही रहती है। आप स्वस्थ हैं। फिर भी मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आप के मुँह, थूक तथा आँतों में दर्जनों से अधिक भयानक रोगों के कीटाणु दिखा सकने में समर्थ हो सकता हूँ।"...... अब प्रश्न यह है कि किसी व्यक्ति के शरीर में हम जो सुप्त स्थिति या गुप्त मारक शक्ति-युक्त रोग के कीटाणु पाते हैं, ऐसी स्थिति में क्यों हैं? ये भक्षक कीटाणु हमारे शरीर

की आँत, फेफड़े, मुँह आदि में क्यों छिपे दबे पड़े रहकर संतुष्ट हैं? क्या इसलिए कि हममें स्वाभाविक रोग-अवरोधक शक्ति है? या क्या इसलिए कि हममें कृत्रिम रूप से अर्जित रोग-अवरोधक शक्ति है? यह निश्चय ही हमारे प्रश्नों का केवल आंशिक उत्तर ही है। कोई दूसरी बात भी अवश्य होनी चाहिए जो भयानक रूप में वृद्धि पा सकने वाले इन कीटाणुओं की बाढ़ रोक रखती है और वह कारण किसी न किसी रूप में अन्य रक्षक निर्दोष या मित्र रूप के ही कीटाणुओं की विद्यमानता से संबंधित होंगे जो उन शत्रुओं पर संहारकारी तथा वृद्धि-अवरोधक प्रभाव डालते हैं। के भिन्न कीटाणु हमारे शरीर में सदा मौजूद रहते हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि वे मूलवासी ही हैं और वे कुछ रासायनिक अस्त्रों का प्रयोग इन आक्रमणकारियों पर करते हैं परन्तु उन अस्त्रों के प्रकार का हमें ज्ञान नहीं हो पाया है।

मेचनिकाफ के सर्वथा नवीन विचार थे जिनकी उधेड़-बुन में वह रहने लगा। इस मर्म को समझने की उसे सनक सी हो गई थी। वह रात-दिन इन्हीं विचारों को व्यक्त करता तथा इन पर विवाद छेड़ता। मेचनिकाफ के हृदय में यह बात बैठ गई कि कीटाणुओं के मित्र वर्ग में हम कोई ऐसा रासायनिक द्रव्य तैयार होते पा सकते हैं जो रोग के कीटाणुओं का सर्वथा संहार कर सकता हो। इस कल्पना को सत्य सिद्ध होने के उद्योग मेचनिकाफ के कितने ही सहकारियों ने किए किन्तु कुछ भी सफलता न मिल सकी। अपनी धारणा का कोई ठोस आधार न पाकर भी मेचनिकाफ ने अपने विश्वास का परित्याग न किया। वह इस उधेड़बुन में पड़ा ही रहा।

निदान, एक बात मेचनिकाफ के मस्तिष्क में आई। क्षय रोग का कीटाणु बड़ा ही प्रबल होता है। उस पर शीत का तो कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, ऊँचे तापमान के सहने की भी शक्ति होती है। पानी खौल उठने के तापमान पर भी उसे तपाने पर अधिक समय तक जीवित रहते पाया जा सकता है। गंधक के तेजाब को भी ६ प्रतिशत की मात्रा में प्रयोग करने पर यह विकट कीटाणु जीवित ही रह पाता है। यह प्रबल कीटाणु अन्य सभी कीटाणुओं से अधिक सहन शक्ति रखने के कारण पानी, कूड़े आदि में सप्ताहों तक जीवित रह सकता है। थूक में भी सप्ताहों तक इसकी जीवन शक्ति बनी रहती है। कभी-कभी तो महीनों तक इसे उसमें जीवित पाया जाता है, बल्कि अधिक प्रबल शक्ति के क्षय के कीटाणु सूखे थूक में दस मास तक जीवित रहते पाए जा सके हैं।

क्षय रोग के कीटाणु की इतनी विकट सहन शक्ति का कारण यह है कि उसके शरीर के ऊपर कठोर ओढ़नी या मोम के समान पदार्थ का बना प्रकवच मढ़ा होता है। उस प्रकवच पर शीत, ताप, रासायनिक द्रव का प्रभाव न पड़ने से ही यह कीटाणु भीतर जीवित पड़ा रहता है। मेचनिकाफ ने यह सोचना प्रारंभ किया किया कि इस कड़ी खोल या प्रकवच का संहार करने का साधन ज्ञात हुए बिना इस कीटाणु का संहार करना संभव नहीं हो सकता। अतएव उसने कोई ऐसा कीटाणु ज्ञात करना चाहा तो मोम की तरह के पदार्थ को विनष्ट कर सकता हो। इसके लिए मधुमक्खी के छत्ते की ओर उसका ध्यान गया। यदि कोई ऐसा कीटाणु हो जो इसे काटकर भीतर प्रवेश पाता हो और और मधुपान कर सकता हो तो वह इस खोज में सहायक हो सकता है। इन उधेड़बुनों में बहुत व्यस्त रहकर उसने अपनी इस धारणा के सिद्ध करने के लिए अपने रूसी सहायक मेट्लनिकाफ को आदेश दिया कि मधुमक्की का छत्ता नष्ट कर सकने वाले किसी जीव का पता लगावे। किन्तु ऐसा कोई भी जीव या कीटाणु ज्ञात नहीं था। फिर भी मेट्लनिकाफ ने अपने अध्यक्ष के आदेश का पालन करने में अपनी शक्ति लगा दी।

मेट्लनिकाफ को ऐसे गुरु को दक्षिणा देनी थी जो अपने दृढ़ विश्वास से च्युत होने वाला नहीं था, इसलिए बड़ी ही उद्विग्नता में उसे समय बिताना पड़ा। अनेक दिशाओं में प्रयत्न करने के पश्चात् उसको एक बात का पता लगा। एक मधुभक्षी तितली रात को उड़ा करती है किन्तु उसका नाम ही भर मधुभक्षी है, वह स्वयं कभी भी मधु नहीं खाती, बल्कि उसकी इल्ली, उत्पन्न होने के बाद मधुमक्खी के छत्ते को छेदकर भीतर पहुँचती है और मधु पीती है। यह केवल मधु पीकर ही जीवित रहती है। मेट्लनिकाफ ने इस आधार को पाकर अपना प्रयोग सफल होने की कल्पना की। इस इल्ली के स्वभाव तथा जीवन को

उसने तीन वर्षों तक अध्ययन किया। उसकी पाचन प्रणाली की भी उसने परीक्षा की। उसे अंत में यह ज्ञात हुई कि उसके प्ररस (सिरम) अर्थात् रक्त के द्रव पदार्थ तथा पाचन प्रणाली में ऐसी शक्ति है कि वह मोम को पचा ले। उसने अपने प्रयोग में सफल होने के लिए पहला प्रयोग किया। क्षय रोग के कीटाणु को इस इल्ली के पेट में पहुँचाया। उसका परिणाम संतोषजनक निकला। क्षय रोग के कीटाणु ने इसके रस में अपना दृढ़ प्रकवच घुल जाने से अपना संहार होते देखा। यही क्रिया परखनली में ठीक उतरती दिखाई पड़ी। मधुमक्षी तितली की इल्ली का प्ररस क्षय रोग के कीटाणु को परखनली में भी विनष्ट करने का प्रमाण उपस्थित कर सका। एक भारी खोज सम्मुख आती दिखाई पड़ी। इसकी सूचना मेचनिकाफ ने भी पाकर हर्ष का समुद्र उमड़ने की भूमिका बँधती अनुभव किया। किन्तु एक भारी हिचक आ खड़ी हुई। यह प्रयोग क्या किसी जन्तु पर भी सफल होते देखा जा सकता है? क्या मनुष्य के क्षय-रोग-विनाश का भी इसे साधन बनाने में सफलता मिलनी संभव है? इन बातों का कौन उत्तर देता? उनका उत्तर तो केवल प्रत्यक्ष प्रयोग ही हो सकता है

मधुभक्षक तितली की इल्ली के रस से किसी पशु के शरीर में क्षय का कीटाणु नष्ट कराने के लिए इतने अधिक संख्या की इल्लियाँ आवश्यक थीं कि उनका प्रबंध कर सकना एक टेढ़ी खीर थी। किन्तु किसी प्रकार बड़े प्रयत्नों से ऐसे रस एकत्र कर प्रयोगशाला के कुछ गिनीपिगों पर इस प्रयोग को किया गया और उनके शरीर में भी क्षय रोग के कीटाणु प्रविष्ट कराने पर इन इल्लियों का रस कीटाणुओं का नाश कर सका। परन्तु ऐसा ही प्रयोग मनुष्य पर सफल देखने के लए पर्याप्त संख्या की इल्लियाँ जुटा सकना एक असंभव बात थी। निदान इस प्रयोग को आगे न बढ़ा कर वहीं समाप्त कर दिया गया। ऐसी सर्वथा दुर्लभ सी वस्तु से मनुष्य के चिकित्सा लाभ करने का प्रश्न ही कहाँ उठ सकता था, परन्तु यह सिद्धान्त अवश्य ज्ञात हो सका कि एक कीटाणु दूसरे कीटाणु का रासायनिक पदार्थों के निर्माण द्वारा संहार कर सकता है। कहीं मनुष्य जहाँ प्राचीनकाल में लाठी, तलवार आदि में युद्ध करते दिखाई पड़ता या आज जहाँ उसके गोले-बारूद आदि हथियार हैं, वहाँ पशु जगत् में पंजे, नाखून, दाँत, सींग आदि के हथियार रूप में प्रयोग करने की बात देखी जाती है। परन्तु कीटाणु-जगत् में संघर्षों में प्रयुक्त होने वाला आयुध रासायनिक रस होता है जिसे एक प्रकार का कीटाणु अपने शरीर से उत्पन्न कर किसी दूसरे प्रकार के कीटाणु पर उसका विनाश करने के लिए प्रयोग करता है। उस आयुध रूप में रासायनिक रस के प्रकार भिन्न-भिन्न होते हैं जिनसे भिन्न-भिन्न शक्ति या प्रकार के कीटाणुओं पर प्रहार हो सकता हैं, परन्तु उन रासायनिक पदार्थों के बनने के क्या सूत्र हैं, इस साधन से युक्त कीटाणु किन विधियों से इसका निर्माण कर सकता है, इसका ज्ञान यदि मनुष्य कर पाता तो उसके हाथ में रोग रूपी शत्रु से युद्ध करने का कितना प्रबल तथा उपयुक्त आयुध प्राप्त हो जाता! किन्तु यह नहीं ज्ञात हो सकता तो उन कीटाणुओं का ही ज्ञान सही, जो किन्हीं विशेष प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले हमारे शत्रु कीटाणुओं का संहार करने वाला रस उत्पन्न कर लेते हैं। उनके साधनों से ही लाभ उठा कर ऐसे रस उत्पन्न करवा कर मनुष्य रोगों के युद्ध में सफल बन सकता है।

मेचनिकाफ ने जिस धारणा को अपने हृदय में स्थान दिया था उसकी पुष्टि के लिए इतना प्रमाण उसे अपने मार्ग में अग्रसर करने के लिए पर्याप्त था। क्षय रोग ने तो अपने कीटाणुओं के विनाश का साधन सहज ही मनुष्य के हाथ न आने दिया। परन्तु कीटाणु द्वारा दूसरे कीटाणु के नष्ट होने की युक्ति का प्रचार करने का उसे अवश्य भारी अवसर मिला। क्षय रोग को छोड़ कर वह मानव शरीर की बड़ी आँतों की ओर बढ़ा। बड़ी आँतों में एक प्रकार के कीटाणु उत्पन्न होते हैं जो हमारे जन्म के साथी होते हैं। नवजात शिशु की बड़ी आँतों में जहाँ कोई भी अन्य कीटाणु नहीं होता, वहाँ यह कीटाणु विद्यमान रहता है। इसके उत्पन्न किए रस का अन्य कीटाणुओं पर नाशक प्रभाव पड़ता है। टाइफस ज्वर, अतिसार आदि के रोग-उत्पादक कीटाणु इसके प्रभाव से शीघ्र ही मृत हो जाते हैं। रोग के कीटाणु नष्ट करने की शक्ति के अतिरिक्त यह जो रस उत्पन्न करता है वह पाचन में सहायक भी होता है।

बड़ी आँतों के कीटाणुओं में यह दुर्बलता है कि कम

संख्या में हों तो थोड़ी मात्रा में रस उत्पन्न होने से उसका अन्य कीटाणु द्वारा उत्पन्न रोगों पर प्रभाव नहीं पड़ता। परिस्थितियाँ अनुकूल रहने पर स्वस्थ शरीर में बड़ी आँतों के कीटाणु यथेष्ट मात्रा में रहते हैं। परन्तु थोड़ी भी प्रतिकूल स्थिति होने पर ये दीर्घआंत्रीय कीटाणु मृत होने लगते हैं। अर्थात् ये बहुत वीर योद्धा नहीं हैं। शत्रु कीटाणुओं द्वारा इन्हें पराजय मिलते विशेष देर नहीं लगती। इन अवस्थाओं में मेचनिकाफ तर्क करता कि दीर्घआंत्रीय कीटाणु को अधिक मात्रा में पहुँचाया जाय तो आँतों में होने वाले रोगों से बचत होना संभव है। ये दीर्घआंत्रीय कीटाणु अम्लप्रिय जाति के कहे जा सकते हैं। ये हल्के अम्ल की विद्यमानता पसंद करते हैं और स्वयं भी कुछ अम्ल उत्पन्न करते हैं। इन कीटाणुओं की जाति में लैक्टो बैसिलस ऐसिडोफिलस नाम का कीटाणु मुख्य सदस्य होता है। दूध की खटास में ऐसे कीटाणु ही प्रभाव दिखाते हैं। अतएव खाद्य द्रव्य रूप में इनको उदर में पहुँचा कर दीर्घ अंत तक पहुँचा कर लाभ उठाना संभव होना चाहिए। यह सिद्धान्त तो बड़ा ही अच्छा है किन्तु इन कीटाणुओं के स्वभाव की कोमलता को क्या कहा जाय। वे तो इतनी दीर्घ यात्रा कर जीवित पहुँच ही नहीं पाते। मार्ग की अन्य बाधक शक्तियाँ उन्हें नष्ट कर देती हैं अतएव बड़ी आँत में इन मित्र कीटाणुओं को पहुँचा कर सस्ते रूप में लाभ उठा लेना संभव नहीं है। किन्तु मेचनिकाफ ने जो मत प्रतिपादन किया उसका समर्थन कालान्तर में अमेरिका के येल विश्वविद्यालय के एक वैज्ञानिक ने इस रूप में किया कि औषधि की भाँति लाभ उठाने के लिए अम्लप्रिय जाति के कीटाणुओं को प्रतिदिन दस खरब की संख्या में बड़ी आँत में पहुँचना लाभकर हो सकता है। किन्तु इन प्रयोगों को हम अपने दैनिक जीवन में कर लाभ उठाने का अवसर कैसे प्राप्त कर सकते हैं! जो कीटाणु हमारे पाचन मार्ग में इन अम्लों में जीवित नहीं रह सकते, उनको ही ऐसे भारी उपक्रम से नष्ट किया जा सकता है। टाइफस तथा अतिसार आदि रोगों के कीटाणु ऐसे ही स्वभावों के होते हैं जिन पर वे अम्लप्रिय कीटाणु घातक सिद्ध होते हैं किन्तु अन्य रोगों पर इनका प्रभाव नहीं पाया जा सकता।

मेचनिकाफ ने अपने जीवन में जहाँ इन कई नवीनताओं के लिए तर्कयुद्ध को वेगपूर्वक चलाया, अपने प्रयोगों से उन्हें व्यावहारिक रूप भी देने का प्रयत्न किया किन्तु सिद्धान्तों के सत्य दिखाई पड़ने पर भी ठोस सफलता नहीं मिलती दिखाई पड़ी। अपनी इसी तरह की उधेड़-बुनों के मध्य मेचनिकाफ ने एक वैज्ञानिक द्वारा दूसरे विचित्र अविष्कार की बात सुनी। डा० एमेरिच तथा लो ने हरे रंग के मवाद के उत्पादक दंडांगी कीटाणु को शत्रु रूप का कीटाणु होते हुए भी कुछ अन्य रोगों के कीटाणुओं का संहारक होना ज्ञात किया। हैजा तथा ऐंथेक्स भयंकर रोग हैं। हैजा जहाँ बहुसंख्यक मनुष्यों का विनाश करता है वहाँ ऐंथेक्स पशुओं के संहार का उत्तरदायी था किन्तु हमारे लिए हरी मवाद के कीटाणु द्वारा ऐसे पदार्थ उत्पन्न हुए प्राप्त हो सकते हैं जो इन दोनों रोगों के कीटाणुओं का संहार करें। यह कितनी ही विचित्र खोज थी। एक शत्रु के हथियार को ही चलवा कर दूसरे शत्रु के विनाश की कहानी कैसी मनोरंजक ज्ञात होती, किन्तु यह मनोरंजक कल्पना की ही बात नहीं थी, बल्कि ठोस वैज्ञानिक खोज थी। पास्च्युर विज्ञानशाला में ऐंथेक्स रोग के कीटाणुओं का अध्ययन प्रारम्भ में ही होने लगा था और उसको दुर्बल कर वैक्सीन रूप में शरीर में प्रविष्ट कर उसी रोग के साधन द्वारा उसके प्रबल आक्रमण से सुरक्षा दिलाने की विधि ज्ञात हुई थी। किन्तु हरे मवाद के कीटाणु के विचित्र प्रभाव की खोज तो बिल्कुल ही विलक्षण थी। एक कीटाणु से दूसरे कीटाणुओं के संहार का यह अनुपम उदाहरण पाकर मेचनिकाफ की धारणा कितनी सत्य उतरती सिद्ध हुई।

हरे मवाद के कीटाणु को एमेरिच ने प्योक्यानियस बैसिलस नाम दिया था किन्तु उसे इस कीटाणु से एक ही रायायनिक रस उत्पन्न होने का ज्ञान हो सका था। अन्य वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में शोधकर इस प्योक्यानियस नामक कीटाणु को एक विचित्र रसायनशाला रूप में बना पाया जो कितने ही प्रकार के रासायनिक पदार्थ उत्पन्न करने में समर्थ होता है। उन सब पदार्थों के नाम विचित्र हैं। हम यही कह सकते हैं कि ये सभी पदार्थ चाहे जिस नाम या रूप के हों, अन्य कीटाणुओं के संहार में समर्थ होते

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

विज्ञान-परिषद् के नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—विज्ञान परिषद् की स्थापना इस उद्देश्य से हुई है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारण वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री, एक संपादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद् की कार्य्यवाही होगी।

सभापति का कर्त्तव्य

३—सभापति का कर्त्तव्य होगा कि परिषद् के तथा अन्तरंग सभा के अधिवेशनों में अध्यक्षता और कार्यक्रम का नियमन करे।

४—कोई सभ्य तीन बरस से अधिक बराबर परिषद् का सभापति चुना नहीं जा सकेगा, किन्तु एक वर्ष सभापति न रहने पर फिर अगले वर्ष सभापति चुना जा सकेगा।

५—सभापति का पद अकस्मात् खाली हो जाने पर परिषद् की अन्तरंग सभा किसी उपसभापति को चुन लेगी जो सभापति के पूरे अधिकार रक्खेगा और उसके कर्तव्यों का पालन करेगा।

उपसभापति का कर्त्तव्य

६—उपसभापतियों का कर्त्तव्य होगा कि सभापति की अनुपस्थिति में बारी-बारी से अथवा परस्पर निर्वाचन द्वारा परिषद् और अंतरंग सभा के अधिवेशनों में अध्यक्षता करें।

७—उपसभापति प्रति वर्ष सभ्यों में से चुने जायँगे।

कोषाध्यक्ष का कर्त्तव्य

८—परिषद् को जो पाना है वह रुपया कोषाध्यक्ष लेगा और अंतरंग सभा की स्वीकृति के अनुसार प्रधान मन्त्री को जितने रुपये की आवश्यकता होगी कोषाध्यक्ष देगा। रुपयों के लेन-देन और जमा खर्च का लेखा रक्खेगा। और अलग बही में परिषद् को विशेष कार्य के लिये प्रदान किये हुए द्रव्य का और स्थायी सभ्य होने वालों के चन्दे का हिसाब, परिषद् की साधारण आय से भिन्न रक्खेगा। अपना सारा लेखा कोषाध्यक्ष अन्तरंग सभा के प्रत्येक अधिवेशन में उपस्थित करेगा। साधारण खर्च के लिये पचास रुपये तक अपने पास रख कर परिषद् का शेष रुपया कोषाध्यक्ष परिषद् की बंक में रक्खेगा। किसी विशेष उद्देश्य के लिये दान मिले हुए रुपये का मूलधन तथा स्थायी सदस्यों के एकमुष्टि चन्दे का रुपया व्याज पर जमा होगा।

मन्त्रियों का कर्त्तव्य

९—मन्त्रिगण परिषद् के एवं अन्तरंग सभा के अत्र अधिवेशनों में उपस्थित रहेंगे, कार्य्यवाही का संक्षिप्त विवरण रक्खेंगे, और उसे आगामी अधिवेशनों में उपस्थित करेंगे और पढ़ेंगे लेखक की प्रार्थना पर अन्तरंग सभा में आये हुये वैज्ञानिक लेखों में पढ़कर सुनायेंगे और परिषद् सम्बन्धी पत्र व्यवहार का प्रबन्ध करेंगे।

लेखा-परीक्षक और प्रकाशक

१०—प्रति वर्ष परिषद् के प्रथम अधिवेशन में एक लेखा-परीक्षक नियुक्त किया जायगा। वह कोषाध्यक्ष के लेखों को जांच कर परिषद् के आगामी वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित करेगा। उसे सभी आवश्यक बहियों और कागजों के मांगने और देखने का अधिकार होगा। अन्तरंग सभा का कोई भी सभासद् लेखा-परीक्षक नहीं हो सकता।

सम्पादक का कर्त्तव्य

११—परिषद् के मुखपत्र के संपादन का भार सम्पादक पर रहेगा, परन्तु अन्तरंग सभा पत्र की नीति निर्धारित करेगी।

अन्तरंग सभा

१२—परिषद् का कुछ कार्य अन्तरंग सभा द्वारा

होगा जिसके सदस्य सभापति, कोषाध्यक्ष, ९ सभ्य (जिनमें बाहर के हों) और मन्त्रिगण होंगे। अन्तरंग सभा के किसी भी अधिवेशन के लिये कम से कम ३ सभासदों की उपस्थिति आवश्यक होगी। अन्तरंग सभा के सभासद वर्ष के अंत में अन्तरंग सभा से पृथक् हो जायँगे तथा उनके स्थान में नये नये सभ्य चुने जायँगे, किन्तु उस वर्ष के सभासद् भी फिर से निर्वाचित हो सकेंगे। परिषद् के पुराने सभापति अंतरंग सभा के सदस्य तथा उपसभापति होंगे।

१३—परिषद् के साधारण अधिवेशन के ठीक पहिले, उसी दिन, अन्तरंग सभा का सामान्य अधिवेशन हुआ करेगा। दो सभ्यों के हस्ताक्षरयुक्त प्रार्थनापत्र पाने पर अथवा अपनी ही समझ के अनुसार सभापति को अंतरंग सभा के असाधारण अधिवेशन को बुलाने का अधिकार होगा। ऐसे अधिवेशन की सूचना देने के लिए सभापति मन्त्रियों को आदेश करेगा। अधिवेशन के लिये एक सप्ताह की सूचना आवश्यक होगी। सामान्यतः अन्तरंग सभा के सम्मुख समुपस्थित विषयों का निर्धारण हाथ उठाने की रीति से किया जायगा यदि कोई विशेषतः गोली द्वारा विषय निर्धारण का आग्रह न करे। अंतरंग सभा में उपस्थित विषय में जिस किसी सभासद का व्यक्तिगत स्वार्थ होगा, उसके विचारकाल में उसे अन्तरंग सभा से उठ जाना होगा।

१४—परिषद् विषयक साधारणतः सभी कार्यों का पूर्व वर्ष का विवरण तैयार कराकर अन्तरंग सभा परिषद् के वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित करावेगी और पढ़वावेगी, तथा यह विवरण या उसका सारांश अन्तरंग सभा के आदेश से सभ्यों में वितरणार्थ छपेगा।

१५—नियमों में परिवर्त्तन का प्रस्ताव अन्तरंग सभा करेगी, परन्तु जब तक परिषद् के अगले साधारण अधिवेशन में उसका समर्थन न हो लेगा, यह परिवर्त्तन व्यवहार में न आयेंगे और इसका समर्थन भी अगले साधारण वार्षिक अधिवेशन के अधीन होगा।

१६—परिषद् का वार्षिक साधारण अधिवेशन नवम्बर-दिसम्बर मास के युनिवर्सिटी सभाओं वाले सप्ताह के लगभग हुआ करेगा और उसमें अग्रिम वर्ष के कार्य-कर्ताओं का निर्वाचन होगा तथा परिषद् की स्थिति पर अन्तरंग सभा का विवरण उपस्थित होगा।

१७—वार्षिक अधिवेशन की सूचना समाचार पत्रों में छपने को भेजी जायगी और सभ्यों को विशेष रूप से पत्र द्वारा दी जायगी।

पदाधिकारियों का निर्वाचन

१८—परिषद् के सभी पदाधिकारी प्रति वर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्ट में दिये हुए तीसरे नक्शे के अनुसार सभ्यों की राय से होगा।

१९—अन्तरंग सभा अपने अंतिम से पहले अधिवेशन में आगामी वर्ष के लिये अन्तरंगियों और पदाधिकारियों के निर्वाचन के लिये परिषद् से प्रस्ताव करेगी। यदि अन्तरंग सभा द्वारा प्रस्तावित नामों से भिन्न नामों का प्रस्ताव कोई सभ्य करना चाहे तो उसे अपने प्रस्तावित नामों की सूची आगामी साधारण अधिवेशन के दिन या उससे पूर्व लिखकर मंत्री के पास भेज देनी होगी और अन्तरंग-सभा द्वारा निर्वाचित नामों के साथ ही वह सूची भी सभापति को स्वयं पढ़कर सर्वसाधारण को सुनानी होगी।

परिषद् के अधिवेशन

२०—जुलाई से मार्च तक सुविधानुसार ऐसे दिन जिस दिन छुट्टी न हो संध्याकाल में साधारणतः परिषद् के अधिवेशन हुआ करेंगे। ऐसे अधिवेशनों का कार्य्यक्रम प्रायः यह होगा—

(१) सभापति द्वारा कोई सूचना या विज्ञप्ति।
(२) गत अधिवेशन के संक्षिप्त कार्य्यविवरण का पढ़ा जाना और स्वीकृत होना।
(३) किसी वैज्ञानिक लेख का पढ़ा जाना और उस पर विचार।
(४) कोई और कार्य।
(५) कोई सुबोध व्याख्यान।
(६) आगामी अधिवेशन के व्याख्यान की सूचना।

२१—अन्तरंग सभा की प्रार्थना पर या आधे सभ्यों की प्रार्थना पर सभापति परिषद् के असाधारण अधिवेशन का आवाहन कर सकेगा। किन्तु ऐसे अधिवेशन की कम-से-

कम १५ दिन की सूचना या तो पूर्व अधिवेशन में अथवा सब स्थानीय सदस्यों को पत्र द्वारा दी जायगी। यदि अंतरंग सभा ने चाहा तो बाहरी सदस्यों को भी इन अधिवेशनों की सूचना देनी होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा जो वर्ष के आरम्भ में लिया जायगा और उनके चुनाव से पहलेवाली पहली नवम्बर से जोड़ा जायगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७०) रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२४—सभ्यों के चुनाव में किसी सज्जन के लिये परिशिष्ट के पहले नकशे के अनुसार प्रस्ताव करना होगा, उस पर परिषद् के ऐसे सभ्यों के हस्ताक्षर रहेंगे जिनमें से कम-से-कम एक निर्वाच्य सज्जन को जानता हो और प्रतिज्ञा पत्र पर उक्त सज्जन का हस्ताक्षर रहेगा। इस प्रस्ताव पर अंतरंग सभा से राय ली जायगी (आवश्यकता हुई तो कागज के टुकड़ों पर राय ली जायगी)।

२५—चुनाव के दूसरे दिन प्रत्येक निर्वाचित व्यक्ति के पास मन्त्री परिशिष्ट संख्या २ की चिट्ठी तथा परिषद् की नियमावली भेजेगा।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का निर्वाच्य सज्जनों के लिये प्रस्ताव करने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धनातिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व-प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी। परिषद् की पुस्तकों के व्यवहार का भी अधिकार उनको होगा, और परिषद् के साधारण अधिवेशनों में दो सज्जनों को वे ला भी सकेंगे। ऐसे सज्जनों का नाम उनके लाने वाले सभ्यों के नाम के साथ एक पुस्तक में लिखा जायेगा।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

२८—प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने का अर्थ यह समझा जायगा कि परिषद् का प्रत्येक सभ्य परिषद् के सब ही नियमों और उपनियमों से सहमत है।

२९—ऐसे वैज्ञानिक विद्वान जो विज्ञान-साहित्य की सेवा में अपनी असाधारण योग्यता का प्रमाण देंगे, अन्तरंग सभा की विवेचना पर मान्य सभ्य निर्वाचित हो सकेंगे और उस सेवा के बदले साधारण सभ्यों के सभी अधिकार उनको प्राप्त होंगे, किंतु ऐसे सभ्यों की संख्या २५ से अधिक न होगी।

सभ्यों का परिषद् से अलग होना

३०—जब कभी किसी सभ्य को परिषद् से अलग करना होगा तो अन्तरंग सभा को उक्त विषयक मन्तव्य निश्चित करना होगा जो परिषद् के दो साधारण अधिवेशनों में बराबर पढ़ा जायगा और तीसरे अधिवेशन में सम्मति ली जायगी, यदि उपस्थित सभ्यों में से तीन चौथाई अलग करने के पक्ष में होंगे तो सभ्य परिषद् से अलग कर दिया जायगा।

३१—जो कोई सभ्य वर्ष के अन्त तक, माँगेजाने पर भी वार्षिक चन्दा नहीं दे चुके होंगे, उनके पास अन्तरंग सभा एक सूचना भेजेगी कि यदि पूरा चन्दा एक महीने के भीतर नहीं आ जायगा तो उनका नाम सभ्यों की नामावली से काट दिया जायगा।

३२—जब तक अपना चन्दा पूरा नहीं दे चुके होंगे और मंत्री के पास अपने अलग होने की लिखी हुई सूचना नहीं दे देंगे, या जब तक उनका नाम सभ्यों की नामावली से काट न दिया जायगा, तब तक कोई सभ्य परिषद् से अलग नहीं समझे जावेंगे।

परिषद् का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगा जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयों पर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखों को परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व योग्यता के समझे जायँगे उनके लेखकों को अपने अपने लेख की बीस प्रतियां बिना मूल्य पाने का अधिकार होगा।

पुस्तकालय और भंडार

३५—अंतरंग सभा द्वारा निश्चित आवश्यक नियमों के अनुसार ही परिषद् की पुस्तकें सभ्यों को पढ़ने के लिये दी जा सकेंगी।

३६—अंतरंग सभा की आज्ञा बिना, परिषद् का कोई यंत्र व अन्य वस्तु नियत स्थान से हटायी नहीं जा सकेगी। किन्तु परिषद के अपने व्याख्यानों में उनके प्रयोग के लिये अन्तरंग सभा की आज्ञा की आवश्यकता न होगी।

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग

प्रवेश-पत्र

प्रस्ताव

श्रीयुत————————————————विज्ञान परिषद् में प्रवेश करने की इच्छा रखते हैं और हम निम्नलिखित सभ्य उनको इस परिषद् का सभ्य होने के योग्य समझते हैं :—

(१) ....

(२) ....

प्रतिज्ञा-पत्र

मैं, निम्नलिखित व्यक्ति, इस पत्र द्वारा प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मैं विज्ञान-परिषद् का सभ्य रहूँगा तब तक यथासाध्य परिषद् की उन्नति का प्रयत्न करूँगा और नियमों का पालन करूँगा।

(हस्ताक्षर) ....

ता०   उपाधि, पद और पूरा पता..

....

नकशा २

निर्वाचित होने की सूचना

विज्ञान-परिषद्

८।३ बेली रोड, इलाबाद

ता०

महाशय,

आपको मैं सहर्ष सूचना देता हूँ कि तारीख   को आप विज्ञान-परिषद् के सभ्य निर्वाचित हुये। उस परिषद् की नियमावली इत्यादि आपको भेज रहा हूँ।

नियमों के अनुसार आप प्रवेश-शुल्क और इस वर्ष का वार्षिक चन्दा (पहली अक्टूबर १९५ ३० सितम्बर १९   तक का चंदा) अर्थात् कुल ८) कृपया कोषाध्यक्ष, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद के पास शीघ्र भेज दीजिये।

आपका

मन्त्री

नकशा ३

पदाधिकारियों और अन्तरंगियों का निर्वाचन पत्र

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग

...............१६

वर्तमान पदाधिकारियों और अन्तरंगियों के नाम	पद	अन्तरंग सभा-द्वारा प्रस्तावित नये नाम	नये नाम यदि सभ्य प्रस्तावित करें
	सभापति		
	उपसभापति		
	उपसभापति		
	प्रधान मंत्री		
	मन्त्री		
	मन्त्री		
	सम्पादक		
	कोषाध्यक्ष		
	स्था० अन्तरंगी		
	,,		
	,,		
	,,		
	वा० अन्तरंगी		
	,,		
	,,		
	,,		
	,,		

यदि आप अन्तरंग-सभा-प्रस्तावित नामों के स्थान में और नाम रखना चाहें तो तीसरे कोष्ठ से उन नामों को काट-कर उसी के ठीक सामने चौथे कोष्ठ में अपने चुने नाम साफ साफ लिख दें।

विज्ञान-समाचार

अमेरिका का पैट्रोलियम-उद्योग

अमेरिका के अन्य विशाल उद्योगों की भाँति ही पैट्रोलियम-उद्योग के विकास का श्रेय भी अमेरिकी नागरिकों के एक छोटे से दल के व्यक्तिगत साहसिक प्रयत्नों और सूझ-बूझ को है। उन्होंने प्रारम्भिक असफलता और निराशा के बावजूद पैट्रोलियम उद्योग के विकास के लिए स्वेच्छा से अपनी पूंजी और श्रम को संकट में डाला। उनको यह विश्वास था कि अन्त में वे व्यावसायिक दृष्टिकोण से पैट्रौलियम-उद्योग का विकास करने में अवश्य सफल होंगे।

अमेरिका में पैट्रौलियम-उद्योग को प्रारम्भ हुए आज ६३ वर्ष हो गये। इस समय अमेरिका के इस विशाल उद्योग में लगभग ९० अरब डालर की पूंजी लगी हुई है। इसमें लगभग २ अरब बैरल तेल का उत्पादन होता है तथा २० लाख व्यक्ति काम करते हैं।

अमेरिका में सब से पहला तेल का कुंआं रेलरोड के एक कन्डक्टर एडविन एल० ड्रेक ने खोदा। अमेरिकी तेल उद्योग की एक सब से बड़ी कम्पनी 'पैन्सिलवैनिया रौक औइल कम्पनी औव कनैटिकट' ने उसको इस कार्य के लिये नियुक्त किया था। यह कम्पनी प्रारम्भ में केवल ३ लाख डालर की पूंजी से खड़ी की गई थी।

कई बार असफल और निराश होने के बाद २७ अगस्त १८५६ को ड्रेक को पेन्सिलवेनिया में ६६ फुट की गहराई पर एक तेल का भंडार मिल गया। इस तेल के कुंए से प्रतिदिन ४०० गेलन तेल प्राप्त होने लगा।

पेन्सिलवेनिया में तेल-स्रोत का समाचार सुनकर देश के सभी भागों से लोग उस तेल-क्षेत्र में आकर बसने लगे। तेल-क्षेत्र के विभिन्न स्थानों में तथा 'ऐलिगनी' नदी के किनारे किनारे खोदे गये कुंओं से काफी अधिक परिमाण में तेल प्राप्त होने के कारण तेल-उद्योग का क्षेत्र और बढ़ गया। पहले लोग इन कुंओं को साधारण गहराई तक ही खोदते थे परन्तु १८६१ में एक कुंआ ४०० फीट की गहराई तक खोदा गया। इससे प्रतिदिन कई सौ बैरल तेल निकाला जाने लगा।

१८५६ तक कोयले से तेल निकालने का उद्योग स्थायित्व प्राप्त कर चुका था लेकिन ड्रेक की महत्वपूर्ण खोज के शीघ्र बाद ही कोयले से तेल बनाने वाले कारखानों ने अपना काम बन्द कर के तेलकूपों से निकले तेल को साफ करके जलाने वाला तेल (मिट्टी का तेल) बनाना प्रारम्भ कर दिया! १८६३ तक मिट्टी का तेल ही जलाने के कार्यों में व्यापक रूप से प्रयुक्त किया जाने लगा।

तेल-क्षेत्र में रेलें बन जाने के कारण दूरस्थ स्थानों तक तेल ले जाने की बहुत उत्तम व्यवस्था हो गई। तेल-क्षेत्र सभी व्यावसायिक केन्द्रों से रेल-मार्ग द्वारा सम्बद्ध कर दिया गया। लेकिन यह तरीका आर्थिक दृष्टिकोण से सस्ता नहीं था। अतएव पेन्सिलवेनिया की विधानसभा ने फरवरी १८६७ में एक कानून बना कर 'दि,औइल क्रीक ट्रांसपोर्टेशन कम्पनी' की स्थापना की। इसका मुख्य कार्य तेल-क्षेत्रों से नलों द्वारा अभीष्ट स्थानों तक तेल पहुँचाना था।

पश्चिमी वर्जिनिया और पूर्वी कैन्टकी में तेल-क्षेत्रों का विकास होने तथा ओहायो, इंडियाना और इलिनौय राज्यों में तेल के नये क्षेत्रों का पता लगने पर तेल की पाइपलाइनों में कुछ ही वर्षों में आश्चर्यजनक वृद्धि हो गई। लुइजियाना और टैक्सास के तेल-क्षेत्रों से 'गल्फ कोस्ट' पर स्थित तेल साफ करने के कारखानों तक तेल पहुँचाने के लिए विशाल पाइपलाइन का निर्माण किया गया। १६४६ तक तेल जमा करने तथा दूरस्थ स्थानों को

तेल ले जाने वाली १ लाख ५० हजार मील लम्बी तेल की पाइपलाइनें प्रयोग में आ रही थीं।

अमेरिका की तेल की सब से बड़ी पाइपलाइन 'बिग इन्च' टैक्सास राज्य से प्रारम्भ होकर पहाड़ियों, पर्वतों, विशाल नदियों और घने जंगलों में से होती हुई १४०० मील की दूरी पार कर अतलान्तक महासागर के तट पर स्थित न्यूयार्क शहर के फिलाडेल्फिया तेल-क्षेत्र तक पहुँचती है। यह पाइपलाइन २४ इंच मोटी है और प्रतिदिन ३ लाख बैरल तेल अभीष्ट स्थानों तक पहुँचाती है। इसके निर्माण पर ६ करोड़ ५० लाख डालर व्यय हुए हैं।

अमेरिका में तेल-क्षेत्र की जाँच-पड़ताल के बिना तथा तेल की विद्यमानता का पता लगाये बिना (अन्दाजिया) कुंए खोदने का तरीका बहुत दिनों से त्यागा जा चुका है। आज कल पहले तेल क्षेत्र का अत्यन्त सावधानी के साथ निरीक्षण किया जाता है और अधिकांश कुंए खोदने के पहले प्रारम्भिक परीक्षण कर लिए जाते हैं। प्रसिद्ध तेल कम्पनियों के भूगर्भ-विशेषज्ञ भूमि की सतह का निरीक्षण कर तेल-क्षेत्रों का ठीक ठीक पता लगा लेते हैं।

वैज्ञानिक खोज और अधिक उन्नत विधियों के प्रयोग के कारण तेल का उत्पादन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। कुंए अधिकाधिक गहरे खोदे जाने लगे हैं यहाँ तक कि आजकल सैकड़ों ऐसे तेल के कुंए हैं जो १०,००० फीट गहरे हैं। अमेरिका में सब के गहरा तेल का कुंआ लुइजियाना राज्य में है जो १३,२६६ फीट गहरा है।

अमेरिका का विशाल पैट्रोलियम-उद्योग अकेले अनुसन्धान और विकास कार्य पर १ करोड़ २० लाख डालर व्यय करता है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इस उद्योग में ६००० से अधिक व्यक्ति अनुसन्धान कार्य करते थे।

पैट्रोलियम-उद्योग के प्रायः सभी कार्यों पर कर लगता है। तेल-उद्योग संघीय, राज्यीय तथा स्थानीय सरकारों को कुल मिलाकर इस समय २०० किस्म के टैक्स (प्रतिवर्ष कुल ३ अरब डालर) अदा कर रहा है। इसके अलावा पनामा नहर पर वसूल होने वाली चुंगी का ६ प्रतिशत भाग इस उद्योग से प्राप्त होता है।

मोटरों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने, ट्रैक्टरों, पैट्रोल और डीजल ऑइल इंजनों तथा ऑइल बर्नरों के विकास होने तथा उनके उपयोग में वृद्धि होने के कारण पेट्रोल, मिट्टी के तेल, ईंधन के रूप में प्रयुक्त किये जाने वाले अन्य तेलों, और पुर्जों में लगाने के चिकने तेलों की माँग में आशातीत वृद्धि हुई है। इन वस्तुओं की निरन्तर बढ़ती हुई माँग के कारण यातायात साधनों तथा उद्योगों की पैट्रोलियम तथा पैट्रोलियम-जन्य वस्तुओं की माँग पूरी करने के लिए देश भर में गाँव गाँव तथा बड़ी बड़ी सड़कों पर थोक तथा फुटकर बिक्री केन्द्रों की शीघ्रता पूर्वक स्थापना करनी पड़ी।

आजकल पेट्रोलियम उद्योग अमेरिका का एक सब से विशाल उद्योग है। राष्ट्र के पैट्रोलियम तथा पैट्रोलियम-जन्य वस्तुओं की माँग पूरी करने के लिए देश के विभिन्न भागों में ४ लाख से भी अधिक फुटकर बिक्री-केन्द्र हैं। रेल रोड कम्पनियाँ प्रतिवर्ष ६ करोड़ ७० लाख टन पैट्रोलियम एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती हैं। इसमें वे वस्तुयें सम्मिलित नहीं हैं जो तेल कम्पनियाँ तेल-क्षेत्रों और कारखानों के निर्माण और उपयोग के लिए भेजती हैं।

अमेरिका के आज के पैट्रोलियम उद्योग में प्राइवेट अमेरिकी नागरिकों, बड़ी कम्पनियों तथा छोटी कम्पनियों का भी प्रतिनिधित्व है। इसमें फुटकर विक्रेता से लेकर तेल उत्पादन और वितरण प्रक्रिया के सभी पहलुओं से सम्बन्ध रखने वाली बड़ी बड़ी कम्पनियाँ भी शामिल हैं।

अत्यधिक होड़ के परिणाम स्वरूप ही तेल उद्योग की संचालन विधियों तथा वस्तुओं की कोटि में सुधार तथा उत्पादन व्यय में कमी सम्भव हुई है।

—युनाइटेड स्टेट्स इन्फार्मेशन सर्विस के सौजन्य से

स्वतन्त्र विश्व के पैट्रोलियम-उत्पादन में आशातीत वृद्धि

अमेरिका में प्रतिरक्षा कार्यों के लिये पैट्रोलियम की व्यवस्था करने वाले पैट्रोलियम प्रशासन के मतानुसार, यदि विश्व के लोकतन्त्री देशों में प्रारम्भ किये गये पैट्रोलियम-उद्योग के विकास कार्यक्रमों के लक्ष्यों की पूर्ति हो गई तो १९५२ और १९५३ में उन देशों के असैनिक और प्रतिरक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिये पैट्रोलियम की जरूरतें पूरी की जा सकेंगी।

तेल-विशेषज्ञों का विश्वास है कि इन लक्ष्यों की पूर्ति की जा सकती है। उन्होंने बताया है कि विदेशों में तेल साफ करने के ५० कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं और यह आशा की जाती है कि आगामी वर्ष के अन्त तक ये कारखाने बन कर तैयार हो जायेंगे तथा उनसे ४ लाख बैरल तेल प्रतिदिन साफ किया जा सकेगा। यह आशा की जाती है कि १९५३ के अन्त तक नये तेल-शोधक कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता ८ लाख बैरल प्रति दिन तक पहुँच जायेगी।

अमेरिकी तेल-विशेषज्ञों के समक्ष सब से बड़ी समस्या तो साधारण वायुयानों के उपयोग में आने वाले पेट्रोल और जेट वायुयानों में इस्तेमाल किये जाने वाले तेल की मांग को पूरी करने की है। तथापि अमेरिकी पैट्रोल-कम्पनियाँ दोनों प्रकार के तेलों का उत्पादन बढ़ाने के काम में अमेरिकी सरकार को पूरी तरह सहयोग दे रही है। गत १८ महीनों में अमेरिकी वायुयानों में इस्तेमाल किये जाने वाले पैट्रोल का उत्पादन दूना हो गया है।

अमेरिकी पैट्रोलियम प्रशासन के अनुसार, १९५२ में विश्व के लोकतन्त्री देशों को प्रतिदिन कुल १ करोड़ २० लाख बैरल तेल की आवश्यकता होगी। प्रशासन का यह भी अनुमान है कि संसार की कुल तेल-सप्लाई भी लगभग इतनी ही होगी।

अमेरिकी पैट्रोलियम प्रशासन के विशेषज्ञों का अनुमान है कि १९५३ में भी पैट्रोलियम-जन्य वस्तुओं की मांग में वैसी ही वृद्धि होगी जैसी कि १९४९ से ५१ तक गत तीन वर्षों में हुई। यदि ऐसा हुआ तो यह आवश्यक हो जायेगा कि पैट्रोलियम-उद्योग के विकास के लिये प्रारम्भ किये गये कार्यक्रमों के अन्तर्गत इतनी पर्याप्त मात्रा में पैट्रोलियम का उत्पादन किया जाये जिससे १९५३ की मांगें पूरी की जा सकें।

पैट्रोलियम-प्रशासन के अनुरोध पर अमेरिकी प्रतिरक्षा-प्रशासन ने गत अप्रैल में विदेशों में तेल साफ करने के कारखाने स्थापित करने की एक योजना तैयार की थी, जिसके अनुसार १९५१ और ५३ में प्रतिवर्ष ३,८४,००० बैरल अतिरिक्त तेल प्रतिदिन साफ करने की योजना बनाई गई थी अर्थात् १९५३ के अन्त तक कुल मिलाकर ७,६८,००० बैरल पैट्रोलियम प्रतिदिन प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इसे मिलाकर विदेशी तेल-शोधक कारखानों की उत्पादन-क्षमता ५८,००,००० बैरल तक पहुँच जायेगी।

इसके साथ ही पैट्रोलियम प्रशासन ने देश की पैट्रोलियम उत्पादन-क्षमता में हर वर्ष ५ लाख बैरल प्रतिदिन की वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया था। इस लक्ष्य के अनुसार १९५१ के अन्त में होने वाला देश का पैट्रोलियम-उत्पादन ७३,३०,००० बैरल प्रतिदिन से बढ़कर १९५३ के अन्त तक ८३,३०,००० बैरल प्रतिदिन तक पहुँच जायेगा।

तेल शोधन के लिए देश-विदेश में कारखाने खोलकर उत्पादन बढ़ाने के लक्ष्य इसलिए निर्धारित किये गये थे ताकि देश-विदेश की तेल-विकास योजनाओं को सन्तुलित मात्रा में इस्पात तथा अन्य आवश्यक सामग्री उपलब्ध की जा सके।

गत तीन वर्षों (१९४९-५१) के दौरान में अमेरिका की अपेक्षा विदेशों की पैट्रोलियम की मांग में अधिक वृद्धि हुई है। तेल-विशेषज्ञों को यह समाचार सुन कर प्रसन्नता होगी कि विदेशी तेल-शोधक कारखाने प्रतिरक्षा-उत्पादन प्रशासन द्वारा निर्धारित लक्ष्य के ७,६८,००० बैरल प्रतिदिन) की अपेक्षा ३२,००० बैरल अधिक तेल का उत्पादत कर सकेंगे। उपयुक्त लक्ष्य को लोकतन्त्री देशों की सैनिक व असैनिक आवश्यकताओं की दृष्टि से न्यूनतम समझा गया था।

१९५२-५३ की पैट्रोलियम उद्योग-विकास योजना के अनुसार, पश्चिमी यूरोप में ३, ८८,००० बैरल, कैरिबियन क्षेत्र में १,३५,०००, कनाडा में १,०३,००० पश्चिमी गोलार्द्ध के अन्य राष्ट्रों में ८३,००० बैरल तथा पूर्वी गोलार्द्ध के देशों में ८२,००० बैरल तेल-उत्पादन की क्षमता रखने वाले कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं।

अमेरिका की एक व्यापारिक संस्था अमेरिकन पैट्रोलियम इन्स्टिट्यूट' ने बताया है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद से इस वर्ष के अन्त तक अमेरिकी तेल कम्पनियां पैट्रोलियम-उद्योग के विकास कार्यों पर विदेशों में ?, ४२, ९०, २०,००? डालर तथा स्वदेश में १७३०, ४७, ४७, ००० डालर व्यय कर चुकेंगी।

अमेरिका के किसी भी उद्योग ने अपने विकास-कार्यों पर इतने अल्पकाल में इतनी अधिक धनराशि व्यय नहीं की है। तथापि यह कहा जा सकता है कि अमेरिकी पैट्रोलियम कम्पनियाँ उद्योग के विकास पर इतनी विशाल धनराशि व्यय करने में केवल इसलिए समर्थ हो सकी हैं क्योंकि गत महायुद्ध के बाद पैट्रोलियम तथा पैट्रोलियम-जन्य वस्तुओं की माँग में ५५ प्रतिशत वृद्धि हो गई है।

(पृष्ठ ६४ का शेष)

प्रकार की असुविधा न होवे। दोनों पुस्तकों के लेखकों ने विषय को समझाने के निमित्त प्रचुर मात्रा में चित्रों का प्रयोग किया है। प्रयुक्त चित्रण बड़ी सावधानी से तैयारी किये जान पड़ते हैं और उनकी स्पष्टता तथा प्रचुरता पुस्तक की एक खास विशेषता भी हो गयी है। पुस्तक के अन्त में लेखकों ने अत्यन्त उपयोगी एक शब्दानुक्रमणिका (Index) भी जोड़ दी है। 'जिनमें कुछ अन्तर्राष्ट्रीय भी हैं)

ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन के कार्य में हिन्दी के प्रकाशक अभी तक बहुत उदासीन रहे हैं। शायद इनके प्रकाशन में अधिक खर्च बैठता है और अपेक्षाकृत लाभ कम होता है। ऐसी परिस्थिति में इनके प्रकाशक 'स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स' (प्रयाग और बनारस) अपने साहस और उत्साह के लिए विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं। इन दोनों पुस्तकों ने अपने अपने क्षेत्रों में एक ऐसी कमी की पूर्ति की है जिसका अभाव इधर कुछ वर्षों से बहुत खटकता था। पुस्तकों की छपाई, आवरण और विषय-विन्यास आकर्षक और दोष शून्य हैं। विश्वास है कि हिन्दी-संसार इन पुस्तकों का स्वागत करेगा।

—ह० ल०

—:०:—

समालोचना

हिन्दी में विज्ञान की दो पुस्तकें

(१) सामान्य रसायन शास्त्रः *लेखक—डा० सत्य प्रकाश डी०एस-सी० मूल्य ८), पृष्ठ ३७२*

(२) भौतिक विज्ञान प्रवेशिकाः भाग १ और २, *लेखक—डा० नन्दलाल सिंह, डी० एस-सी० प्रत्येक खण्ड का मूल्य ७), पृष्ठ ७६१) प्रकाशक—स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स, प्रयाग काशी।*

बड़े हर्ष की बात है कि अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों और शिक्षा-विभागों ने इण्टरमीडिएट परीक्षा तक शिक्षण और परीक्षण का माध्यम राष्ट्रभाषा हिन्दी कर दिया है, पर विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए विज्ञान विषयक हिन्दी पुस्तकों का अभाव हिन्दी माध्यम को अपनाने और प्रोत्साहित करने के कार्य में एक बहुत शोचनीय रोड़ा है। आज भी इस क्षेत्र में काम करने वालों की संख्या नगण्य है। अभी हाल ही में इण्टरमीडिएट परीक्षा के पाठ्य-विषय को ध्यान में रखकर कुछ इनी-गिनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें ऊपर लिखी दोनों पुस्तकों का स्थान विशिष्ट और महत्वपूर्ण है। दोनों ही पुस्तकों के लेखक अपने अपने क्षेत्र में पारंगत तथा अनुभवी हैं। डा० सत्य प्रकाश जी हिन्दी के पुराने और अभ्यस्त लेखक हैं। आप बहुत पहिले ही से इस दिशा में काम कर दूसरों को उत्साहित करते आ रहे हैं। डा० नन्दलाल सिंह एक सफल अध्यापक और विषय के पारखी हैं।

'सामान्य रसायन शास्त्र' में भौतिक और अकार्बनिक रसायन का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। पुस्तक के प्रथम खण्ड में विषय के सामान्य और भौतिक, द्वितीय में अधातु तत्व और तृतीय में धातुतत्व के पक्ष का वर्णन है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में कुछ आवश्यक और परीक्षोपयोगी प्रश्न भी दिये गये हैं जिनकी सहायता से विषय को समझना विद्यार्थियों के लिए अधिक बोधगम्य होगा। पुस्तक के अन्त में उत्तर प्रदेश के बोर्ड द्वारा संचालित इण्टरमीडिएट परीक्षा के भी प्रश्न दिये हैं।

"भौतिक विज्ञान प्रवेशिका" अपने विषय की पहिली ऐसी पुस्तक है जिसमें इण्टर परीक्षा के लिए तैयारी करने वाले विद्यार्थियों को हिन्दी में इस विषय का उत्कृष्ट एवं सांगोपांग विश्लेषण मिलेगा। पुस्तक के प्रथम खण्ड में सामान्य भौतिक विज्ञान, ताप (Heat) प्रकाश (Light) इन तीन विषयों का विवेचन किया गया है और दूसरे खण्ड में ध्वनि विज्ञान (Sound), चुम्बक (Magnetism) तथा विद्युत (Electricity) का विवरण है। स्थान-स्थान पर प्रतिपादित विषयों को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त उदाहरण के साथ उन्हें हल किया गया है जिससे अध्यापकों को विषय समझाने और विद्यार्थियों को उसे समझने में बड़ी सुगमता हो जाती है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में प्रश्नावली भी दी गयी है जिनमें विभिन्न विश्वविद्यालयों के परीक्षा-प्रश्न भी संग्रहीत हैं। विषय को सुबोध बनाने में विद्वान और अनुभवी लेखक ने परिश्रम किया है। उसी से पुस्तक का आकार कुछ बड़ा हो गया है, पर अपनी मातृभाषा में लिखी हुई अपेक्षाकृत कुछ बड़ी पुस्तक विद्यार्थियों के लिए किसी प्रकार की कोई विशेष अड़चन नहीं पैदा करेगी।

ऊपर की दोनों ही पुस्तकों की भाषा सरल, सुबोध एवं परिमार्जित है। पारिभाषिक शब्दों के लिए प्रचलित पर सरल समानार्थक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। उनके साथ ही अंग्रेजी शब्द (Terms) भी रख दिये गये हैं ताकि उच्चशिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को किसी

(शेष पृष्ठ ६३ पर)

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—विज्ञान की प्रारम्भिक बातों की उत्तम पुस्तक—ले० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम०.एस.सी०; ।=)

२—**चुम्बक**—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; मू० ।।।=)

३—**मनोरञ्जन रसायन**—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी०; २)

४—**सूर्य सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सब से सुलभ उपाय—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; छः भाग मूल्य ८) । इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहाल-करण सेठी डी० एस-सी० ; १)

६—**समीकरण मीमांसा**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।) द्वितीय भाग ।।=)

७—**निर्णायक (डिटर्मिनेंट्स)** गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।)

८—**बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटर-मीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले०—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी ; ।=)

१०—**सुवर्णकारी**—ले० श्री० गंगाशंकर पचौली; ।=)

११—**विज्ञान का रजत जयन्ती अंक**—विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह १)

१२—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम ए०; १७५ पृष्ठ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द २)

१३—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द २) (अप्राप्य)

१४—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले०-डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द, २)

१५—**लकड़ी पर पालिश**—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का ब्योरेवार वर्णन । ले०-डा० गोरख-प्रसाद और श्री रामरतन-भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; ५) (अप्राप्य)

१६—**कलम पेवंद**—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी, सजिल्द; २)

१७—**जिल्दसाजी**—इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० सजिल्द, २)

१८—**तैरना**—तैरना सीखने की रीति अच्छी तरह सम-झाई गई है । ले०—डा० गोरखप्रसाद, मूल्य १)

१९—**सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग**—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद । बड़ी सरल और रोचक भाषा में जन्तुओं के विचित्र संसार, पेड़ों पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र, और तारों की जीवन-कथा तथा भरतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है । सजिल्द मूल्य ६) (अप्राप्य)

२०—**वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं**—ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२१—**खाद्य और स्वास्थ्य**—ले०—डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२२—**फोटोग्राफी**—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), फोटोग्राफी सिद्धान्त और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, सजिल्द मूल्य ४)

२३—**फल संरक्षण**—फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा जैम, जेली, शरबत अचार, चटनी सिरका, आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी० कृषि-विशारद, सजिल्द मूल्य २।।)

२४—**शिशु पालन**—लेखक-श्री मुरलीधर बौड़ाई । गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल, शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार-विहार आदि का वैज्ञानिक विवेचन । मूल्य ४)

२५—मधुमक्खी पालन—द्वितीय संस्करण। ले०—पंडित दयाराम जुगड़ान; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकों या जन-साधारण को इस पुस्तक का अधिकाँश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। २८५ पृष्ठ; अनेक चित्र, सजिल्द; ३)

२६—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक-डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच०, डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी, बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। १५० चित्र, सजिल्द, ४)

२७—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—संपादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। मूल्य ३॥)

नवीन पुस्तकें

२८—फसल के शत्रु—लेखक श्री शंकर राव जोशी मू० ३॥)

२९—साँपों की दुनिया—ले० श्री रामेश वेदी मू० ४)

३०—पोर्सलीन उद्योग—ले० प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस मू० ॥)

३१—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ— मू० २)

३२—गर्भस्थ शिशु की कहानी—ले० मारग्रेट शी गिल्बट (अनु० प्रो० नरेन्द्र) मू० २॥)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—साबुन-विज्ञान—विद्यार्थियों और व्यवसाइयों के लिये एक सरल और सुबोध पुस्तक, जिसमें साबुन तैयार करने की विभिन्न विधियाँ और नाना प्रकार के साबुन तैयार करने की रीतियाँ हैं, विवरण के साथ-साथ सैकड़ों के साथ-साथ अनुभूत और प्रमाणित नुसखेभी दिये गये हैं। लेखक-श्री श्याम नारायण कपूर बी० एस-सी, ए० एच० बी० टी० आई०, फेलो, आयल टेकनोलोजिस्ट एसोसिएशन आफ इंडिया मूल्य ६)

२—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ—ले०—श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ, सजिल्द; मूल्य ३॥) अजिल्द ३)

३—वैक्युमब्रेक—ले०—श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २)

पता—विज्ञान परिषद, प्रयाग

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यदि बिना मुल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम

सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद् बैंक रोड, इलाहाबाद

दिसम्बर, १९५२
धनु २००९

भाग ७६
संख्या ३

वार्षिक मूल्य
तीन रुपए

प्रति अंक
पाँच आने

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh for use in Schools, Colleges and Libraries

विज्ञान के नियम

१—वार्षिक मूल्य ३) तथा प्रति अंक का ।=) है

२—प्रतिमास प्रथम सप्ताह में विज्ञान प्रकाशित होता है।

३—ग्राहक किसी भी मास से बनते हैं।

४—वार्षिक मूल्य सदा दो एक मास पूर्व अग्रिम भेजने से ।=) वी० पी० व्यय की बचत हो सकती है।

५—नमूने की प्रति माँगने पर या बिना मांगे भी ज्ञात पतों पर मुफ्त भेजी जाती है।

लेखकों से निवेदन

१—लेख किसी भी विषय के वैज्ञानिक पक्ष पर होना चाहिए।

२—लेख मनोरंजक और सुबोध होना चाहिए।

३—कागज पर एक ओर ही सुपाठ्य लिखना चाहिए।

४—चित्र सदा काली स्याही से बने होने चाहिए। हल्के या अन्य रंग में बने चित्रों का ब्लाक नहीं बन सकता।

५—लेख भेजने के दो मास पश्चात् भी न छपने पर स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य—तीन रुपये, एक संख्या का मूल्य—पाँच आने।

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५

भाग ७६ | धनु २००६; दिसम्बर १६५२ | संख्या ३

कीटाणुओं की खोज

विज्ञान का आधुनिक युग प्रारंभ करने का सेहरा पाश्चात्य देशों के सिर बँधता है । इसके लिए हम उपयुक्त वातावरण उपस्थित करने वाले कारणों में मुद्रण यंत्र का गटनबर्ग द्वारा पंद्रहवीं शताब्दी में आविष्कार तथा धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होनेके प्रयत्न में नवीन विचारों का उदय मान सकते हैं । मुद्रण यंत्र ने शनैः शनैः योरप के देशों में ही जागृति का अवसर नहीं दिया, प्रत्युत इस विधि से अपने साहित्य में संचित अथवा अध्ययन तथा अनुवादों द्वारा अन्य देशों के साहित्य में अर्जित ज्ञान को सर्व साधारण तक में फैलाने के लोभ को कोई भी देश संवरण नहीं कर सकता था । एक बार आविष्कृत होकर मुद्रण कला एकदेशीय नहीं रह सकती थी । उससे लाभ उठाने के लिए सभी देश उत्सुक और जागरूक पाए जा सकते हैं । इस जागृति की भावना उदय होने को हम युग की माँग ही कह सकते हैं । यही कारण है कि हम जहाँ मुद्रण यन्त्र की सहायता से योरप में ईसाइयों का धर्म ग्रन्थ पहले पहल सन् १४ ६ ई० में छपते पाते हैं, वहाँ चिकित्सा विज्ञान के प्राप्य ग्रंथ भी उसके दूसरे ही वर्ष प्रकाशित होते देखते हैं। योरप के राजनीतिक तथा धार्मिक इतिहास में मार्टिन लूथर का नाम मध्ययुग के अंतिम चरण को समाप्त कर नवयुग के प्रथम चरण के प्रतिष्ठापन के संबंध में उल्लिखित पाते हैं; परन्तु जहाँ तक विज्ञान की उन्नति का प्रश्न है, वहाँ हम इस नवयुग के अवतार, धार्मिक पुनरुत्थान के प्रवर्तक, मार्टिन लूथर को नवीन विचार धाराओं का इतना ही विरोधी पाते हैं जितना पुरातन-पंथियों को । अतएव इसमें हमें कोई आश्चर्य नहीं हो सकता कि जब हम सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के परिक्रमा करने की बात प्रकट कर कापर्निकस द्वारा नवीन विचार-प्रवर्तन पर लूथर को यह शब्द निकालते देखते हैं "यह मूर्ख ज्योतिष के सारे विज्ञान को ही पलट देना चाहता है ।"

नवीन विचारधारा की प्रवृत्ति होने पर लोगों को हम लूथर की उक्ति का ही समर्थन न कर आगे बढ़ते देखते हैं जिनको विज्ञान के पोषक पूर्व युग की विरोधी विचारधाराओं को युक्तिसंगत समझ करउनका समर्थन करते पाया जाता है। यही कारण है कि नूतन जागृति का प्रवाह एक बार मंदगति से प्रारंभ होकर भी कुचला नहीं जा सका । कापर्निकस, गैलीलियो आदि विज्ञानसाधकों ने कालान्तर में अपने त्याग, साहस तथा नवीन विचारों का प्रबल अनुमोदन तथा सम-

र्थन प्राप्त किया जिसे वे स्वयं तो नहीं देख सके, परन्तु नए युग ने उनकी ही तरह नए-नए विचारक तथा शोधक उत्पन्न कर उनकी यश-वृद्धि का स्थायी तथा विशाल आयोजन किया।

इन वातावरणों ने चिकित्सा क्षेत्र में भी उत्थान युग लाने में अवश्य ही योगदान किया होगा किन्तु वैज्ञानिक या चिकित्सा संबंधी खोजें या नवीन विचारधारा इतनी शीघ्र हमें प्रस्थापित नहीं दिखाई पड़तीं। पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में जिस समय लूथर ने धार्मिक पुनरुत्थान का बीजारोपण किया, उन्हीं दिनों इस शताब्दी के अंत में योरप युद्धों में संलग्न दिखाई पड़ा। इन युद्धों में सैनिकों के भारी जमघट तथा विलास-प्रियता से एक भयानक रोग का प्रकोप होता दिखाई पड़ा जिसे उपदंश (गर्मी) या आतशक नाम दिया जाता है। ईसाई धर्म-ग्रन्थों में वर्णित किसी देवपुत्र 'सिपिलस' को किसी के प्रकोप द्वारा मृत्यु-लाभ करते पाते हैं। उसी के नाम पर यह घातक रोग भी "सिफिलिस" कहलाने लगा। इसका प्रारम्भ कब और किस देश में हुआ, यह तो कहना कठिन सा है। परन्तु व्यापक रूप में स्पेन सम्राट फर्डिनेंड तथा सम्राज्ञी इजाबेला द्वारा इटली के नेपुल्स नगर में वहाँ के सम्राट के सहायतार्थ भेजी गयी सेना में इस रोग के फैलने का वर्णन पाते हैं। दुर्भाग्यवश जब सन् १४९५ ई० में फ्रांस-सम्राट अष्टम चार्ल्स की सेनाएँ नेपल्स-विजय कर उस नगर में ठहरीं तो फ्रांसीसी सैनिकों में भी यह भयंकर रोग फैला। सब देश एक दूसरे को दोषी ठहराते। निदान हम इसे कभी "स्पेनीय रोग" और कभी "फ्रांसीसी बीमारी" के नाम से प्रसिद्ध होते पाते हैं। कुछ मनचले गोरे तो यह बात प्रचारित करते हैं कि उपदंश (सिफिलिस) रोग तो उनके देशों में कभी था ही नहीं, वह तो अमेरिका से उन तक पहुँचा। कोलंबस ने जब अपने सहयोगियों के साथ अमेरिका की यात्रा की तो वहाँ के निवासियों द्वारा यह जननेन्द्रिय रोग प्रसाद में मिला। उसे ही लेकर स्पेन वासी अपने देश में लौटे। निदान योरप में भी यह रोग फैल सका। किन्तु इतिहास के खोजी यह बात घोषित करते हैं कि कोलंबस की अमेरिका-यात्रा के बहुत पूर्व भी योरप में यह रोग विद्यमान था। तथ्य चाहे जो कुछ हो, परन्तु इतना तो अवश्य ही है कि पहले यह रोग इक्का-दुक्का ही होता रहा, परन्तु सैनिकों की भीड़-भाड़ में इसके प्रवेश से भारी संख्या में इस रोग के रोगी लोगों को दिखाई पड़ने लगे। यही इस रोग के सामूहिक प्रसार का कारण था।

जिन दिनों मुद्रण यंत्र संसार के सम्मुख आ चुका था, ज्ञान के सीमित केन्द्रों का व्यापक प्रसार होने लगा था मनुष्य की अन्धविश्वास वृत्ति अपनी जड़ हिली देखने लगी थी, स्वच्छन्द विचार की भावना जाग उठी थी, धर्म तथा राजनीति के संकुचित क्षितिज व्यापक बनने लगे थे, उसी जागृति के युगारम्भ में उपदंश का प्रकोप लोगों की विवेक बुद्धि को प्रसारित करने का प्रेरक हो सकता था। इसके संक्रामक रूप में फैलने के कुछ दिनों ही पूर्व योरप ने भयानक संक्रामक रोग, प्लेग, के विनाश-कार्य द्वारा अपनी कुल जन-संख्या का तीन चतुर्थांश नष्ट होते देखा था। अतएव इसमें आश्चर्य ही क्या कि उपदंश का प्रसार कुछ विवेकशील मेधावी पुरुषों के हृदय में उथल-पुथल, व्यग्रता की भावना उठाने में समर्थ होता दिखाई पड़ा। ऐसे विचारकों में हम फ्राकेस्टोरियस नाम के एक विद्वान को विशेष प्रयत्नशील देखते हैं। फ्राकेस्टोरियस ने न तो उपदंश के कारण को ही पूर्णतया समझने में सफलता प्राप्त की और न कोई बड़ी प्रभावोत्पादक चिकित्सा ही आविष्कृत कर सका। फिर भी उसके मेधावी मस्तिष्क ने इस रोग का मूल कारण कोई कीटाणु होने की कल्पना या मत दृढ़ता-पूर्वक प्रचारित कर भावी शोध के कार्यकर्ताओं को बड़ा बल प्रदान किया।

फ्राकैस्टोरियस को चिकित्सा-जगत् के इतिहास में इस कारण ही आदर का स्थान मिलता है कि उसने किसी प्रत्यक्ष अनुभव, प्रमाण तथा सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना ही केवल अपनी विचार शक्ति के बल पर रोगों का कारण कीटाणु होना घोषित किया और कालांतर में अन्य शोधकों ने शताब्दियों पश्चात् उसकी कल्पना को फलवती कर युगान्तरकारी चिकित्सा पद्धतियाँ प्रवर्तित कीं जिनको हम आज भिन्न-भिन्न रूपों में रोगों का विनाश करते पाते हैं तथा जिनके आविष्कार की जड़ में रोगों का आधार कोई विशेष कीटाणु होने का प्रत्यक्ष ज्ञान है।

फ्राकैस्टोरियस का जन्म इटली देश के वेरोना नगर में सन् १४७८ ई० में हुआ था। उसने पडुआ विश्व-विद्यालय में चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया। २१ वर्ष के वय में विवाह कर वह १५०१ ई० में उसी विश्वविद्यालय में तर्क शास्त्र का अध्यापक नियुक्त हो गया। सात वर्ष पश्चात् इटली पर जब विपत्ति के बादल छाये और जर्मनी के हैब्सवर्ग राज्य के शासक ने आक्रमण कर दिया तो फ्राकैस्टोरियस को भगोड़ा बनकर कहीं शरण ढूँढनी पड़ी। पहले तो वेरोना में ही उसने शरण ली किन्तु फिर एक अन्य स्थान पर निवास करना पड़ा। कुछ स्थिति शान्त होने पर उसने वेरोना में ही लौटकर फिर डेरा जमाया और चिकित्सा का व्यवसाय करने लगा। इस प्रकार सन् १५१६ ई० में उसे चिकित्सक रूप में जीवन प्रारम्भ करना पड़ा किन्तु उसकी खोज-बुद्धि इतनी गम्भीर तथा प्रबल थी कि १५३० ई० के बाद उसने अपने चिकित्सा के व्यवसाय को सर्वथा तिलांजलि देकर सारा समय अध्ययन तथा खोजों में ही लगाना प्रारम्भ किया। इस अध्ययन तथा मननशील जीवन को २३ वर्ष तक चला कर सन् १५५३ में वह मृत हुआ।

फ्राकैस्टोरियस का जन्म ऐसे काल में हुआ था जो ज्ञान के उद्भव तथा विज्ञान की शोधों का आरंभ ही कहा जा सकता है। अतएव कापर्निकस का समकालीन रहकर इसने भी केवल बौद्धिक कौशल दिखाया। कापर्निकस ने केवल बौद्धिक बल तथा गणित द्वारा पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर घूमने का सिद्धान्त निर्धारित किया था। फ्राकैस्टोरियस ने वैज्ञानिक प्रश्नों का निराकरण जीवन भर साहित्य रूप में ही करना जारी रक्खा। यही कारण है कि सन् १५३० ई० में प्रकाशित होने वाली उसकी उपदंश विषयक पुस्तक का प्रारम्भ एक कविता से किया गया था। उस कविता में उपदंश उत्पन्न होने की, देवी-देवताओं के आधार पर वर्णित, कोई दंत कथा दी गई थी। किन्तु उसके साथ ही कुछ अस्पष्ट रूप से वह इस रोग का कारण कोई कीटाणु होने की बात भी समाविष्ट कर सका था। ऐसे प्रासंगिक उल्लेख से तो रोग की मीमांसा विशेष सुलझाव नहीं उपस्थित कर सकती थी। परन्तु इसके सोलह वर्ष पश्चात् जब उसने सन् १५४६ ई० में रोगों के संक्रमण पर विशद रूप से विचार करते हुए एक पुस्तक छपाई तो वह चिकित्सा-जगत् में एक महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध हुआ। जिन दिनों कीटाणुओं के दर्शन कर सकने योग्य यंत्रों के आविष्कारक अवतरित नहीं हो सके थे, लोगों को इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष कुछ भी ज्ञान प्राप्त करने का साधन प्राप्त नहीं था, उस समय सब साधनों के अभाव में ही प्रत्यक्ष अनुभूत ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व ही फ्राकैस्टोरियस ने कीटाणुओं के प्रभाव से रोगों के फैलने अर्थात् संक्रमण की प्रबल कल्पना सम्मुख रक्खी। यह भविष्य की रासायनिक चिकित्सा आविष्कृत करने की प्रबल भूमिका थी। इसने स्पष्ट लिखा कि रोगों के संक्रमण का कारण अत्यन्त ही क्षुद्र प्रकार के कोई जीव हैं। इन जीवों को यदि मृत कर दिया जाय तो रोग फिर और नहीं फैल सकता।

चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने फ्राकैस्टोरियस की इस महान् कल्पना को भविष्य में फलवती और यन्त्रों तथा वैज्ञानिक साधनों द्वारा प्रत्यक्ष होते देखकर कीटाणु विज्ञान के सूत्रपात करने वाले वैज्ञानिकों में इसका भी नाम दिया, जिसकी प्रबल कल्पना, कीटाणुओं की साहित्यिक प्रशस्ति, कीर्ति-वर्णन आदि से उत्प्रेरित होकर भावी वैज्ञानिकों तथा शोधकों ने अपने प्रयत्न सफल देखने का संकल्प किया होगा। कुछ भी हो, समय से पूर्व एक सत्य की काल्पनिक रूप में प्रतिस्थापना भारी यश-प्राप्ति का आधार होनी चाहिए।

फ्राकैस्टोरियस ने स्पष्ट रूप से यह भी समझा था कि रोगों के संक्रमण अर्थात् कीटाणुओं के प्रभाव डालकर शरीर-विकार उत्पन्न होने के कई प्रकार हो सकते हैं। उसने यह भी देखा कि कुछ रोग तो किसी प्रकार रोग को उत्पन्न करने के लिए शरीर में पहुँचते हैं जिसे संक्रमण करना कहा जाता है किन्तु कुछ रोग केवल रोगी के साथ संपर्क तथा स्पर्श द्वारा ही उत्पन्न होते हैं जिन्हें स्पर्श रोग या छुतही बीमारी कहा जा सकता है। इन दोनों प्रकार के रोगों का विभेद उसने अनुमानित किया था। अधिकांश रोगों को उसने बीमार के निकट रहने पर रोगी से बिना सम्पर्क हुए ही फैलते देखा। अतएव फ्राकैस्टोरियस ने

इन प्रश्नों को समझने का उद्योग किया कि छूत का रोग क्या है ? क्यों उत्पन्न होता है ? किस कारण छूत द्वारा कुछ रोग तो हल्के रूप में होने पर भी फैलते हैं किंतु संक्रमण वाले रोग भयानक रूप से आक्रमण करने की दशा में भी केवल निकट के सम्पर्क से दूसरे रोगी में नहीं फैल जाते।

इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर समझने के प्रयत्न के साथ-साथ यह भी अनुभव किया जाय कि रोगों को उत्पन्न करने वाले कीटाणु अपना-अपना अलग ही गुण स्वभाव रखते हैं। इस बात ने फ्राकैस्टोरियस के हृदय में स्थान पाया कि कुछ रोग वयस्कों के स्थान पर शिशुओं को ही अधिक आक्रान्त करते हैं; तथा कुछ रोग वृद्धों की अपेक्षा तरुणों और तरुणियों को अधिक वेग से प्रभावित करते हैं। उसने यह भी अनुभव किया कि कुछ कीटाणु जीवजंतुओं पर प्रभाव डालने में तो बिल्कुल अक्षम होते हैं, परन्तु वे फल, शाक अन्न, वृक्षों आदि को प्रभावित कर नष्ट-भ्रष्ट भी कर डालते हैं। इन अनुभवों, कल्पनाओं, विचारों, धारणाओं आदि को जगत् के सम्मुख रखने के कारण फ्राकैस्टोरियस ही ऐसा प्रथम विचारक ज्ञात होता है जिसे अन्य सभी प्राचीन तथा मध्यकालीन विचारकों से चिकित्सा क्षेत्र में आगे बढ़कर नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर नवयुग का संदेश लाते पाते हैं।

कीटाणुओं के अधिक आधारपूर्ण ज्ञान का प्रमाण पाने के लिए हम फ्राकैस्टोरियस को यह बताते देखते हैं कि कीटाणुओं की विशेष स्थानों में विशेष वृद्धि होती है अर्थात् वे अपनी संख्या बढ़ा सकते हैं। संक्रमण तथा स्पर्श रोगों के फैलाने वाले इन अदृश्य जीवों के बीज रूप में अपनी शक्ति द्वारा अपने अंग से संतान उत्पन्न करने की क्षमता आधुनिक विज्ञान के शोधों द्वारा ही ज्ञात हो सकी है किन्तु फ्राकैस्टोरियस ने केवल कल्पना के आधार पर ही स्पष्ट लिखा था; जो कीटाणु कहीं शरीर के ऊपर चिपक जाते हैं, अपने समान अन्य कीटाणुओं को जन्म देते तथा फैलाते हैं, फिर ये नये उत्पन्न कीटाणु अपनी ही जाति के अन्य कीटाणु उत्पन्न करते जाते हैं जिसमें संक्रमण का स्थान पूर्णतया इनसे ही घिर जाता है। फ्राकैस्टोरियस का यह भी कहना था कि कीटाणु और विष हमारे प्राणों से शत्रुता रखते हैं उसी प्रकार कुछ अन्य पदार्थ हो सकते हैं जिनकी इन कीटाणुओं और विषों से ही स्वाभाविक शत्रुता हो, वे उनको निकाल बाहर कर सकते हों या उनकी कमर तोड़कर निर्बल बना सकते हों।

ऐसी कल्पना कितनी युक्तिपूर्ण थी किन्तु फ्राकैस्टोरियस न तो औषधिनिर्माण विद्या का विशेषज्ञ ही था और न उसके लिए इतनी अधिक सफलता का अवसर ही मिल सकता था, अतएव उसके बताये नुस्खे भी वैसे ही निरर्थक सिद्ध हो सकते थे जितने अन्य चिकित्सकों के। अतएव कीटाणु के संक्रमण द्वारा रोगों का वेग कुछ कम होने या फ्राकैस्टोरियस की नवीन कल्पनाओं या धारणाओं की व्यावहारिक सफलता प्रकट होने का दृश्य नहीं देखा जा सका। यह कार्य आगे की पीढ़ी के घोर उद्योगी तथा विचक्षण शोधकों के प्रयत्नों की प्रतीक्षा करता रहा।

चिकित्सा-जगत में विशेष प्रगति के लिए फ्राकैस्टोरियस ने जो पग बढ़ाया उसे कार्यान्वित करने के लिए कीटाणुओं सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान या कीटाणुओं के प्रत्यक्ष दर्शन की आवश्यकता थी। इसे अति सूक्ष्म वस्तुओं को बड़ा दिखा सकने वाला यंत्र ही सफल बना सकने में विशेष योग दे सकता था, परंतु सूक्ष्मदर्शक यंत्र के उत्तम रूप में बनने के लिए समय तथा साधकों की आवश्यकता थी। इस दिशा में अपने अथक उद्योग से सफलता प्राप्त करने का श्रेय जिन लोगों को मिल सकता है उनमें ल्यूवेनहुक का नाम विशेष प्रसिद्ध है।

ल्यूवेनहुक हालैंड के एक छोटे नगर का रहने वाला था जिसे न तो आधुनिक या प्राचीन विभिन्न भाषाओं का ही ज्ञान था, न कोई पांडित्य था और न किसी प्रकार की वैज्ञानिक साधना की शिक्षा देने वाला कोई गुरु ही सुलभ था। इन अवस्थाओं में भी कर्मठता तथा अपने कौशल के बल पर इस साधक ने जो कर दिखाया, वह आश्चर्य की बात है। ल्यूवेनहुक के पूर्व ही काँच के ताल चश्मे रूप में उपयोग होते आ रहे थे तथा लोगों ने उनके ताल विशेष रूप से आयोजित कर छोटे-मोटे सूक्ष्मदर्शक यंत्र बनाना प्रारम्भ किया था। ऐसे सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों को ही अपने हाथों बड़ी उत्तम कोटियों का तैयार करना प्रारम्भ कर ल्यूवेनहुक ने उनसे सूक्ष्म पदार्थों का अवलोकन करने

में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। इसी कारण उसका नाम विज्ञान की खोजों का मार्ग प्रशस्त करने का प्रबल साधन, कीटाणुओं के दर्शन कर सकने के यंत्र रूप में उपस्थित करने के लिए प्रसिद्ध है। चिकित्सा विज्ञान ने अपने क्षेत्र में युगांतरकारी खोजें कर सकने के लिए कीटाणुओं के दर्शन कर सकने के जिस यंत्र का आविष्कार होते देखा, उसका आविष्कारक एक हालैंड सरीखे साधारण देश की भूमि का अर्द्धशिक्षित निवासी हो सकता है जो न तो कोई चिकित्सक हो, न भौतिकविज्ञानवेत्ता ही हो या कोई गणितज्ञ ही हो, तो यह एक भारी विस्मय की ही बात हो सकती थी। ल्यूवेनहुक ने अपनी ऐसी साधारण स्थिति में विज्ञान की एक गहन खोज का अवसर प्राप्त कर यह सिद्ध कर दिखाया कि योग्य साधक के मार्ग में कोई भी प्रबल बाधा नहीं खड़ी हो सकती।

ल्यूवेनहुक का जन्म १६३२ ई० में हालैंड के डेल्फ नाम के छोटे स्थान में हुआ था। यह सारे जीवन हालैंड में ही रहा और वहीं इसकी सन् १७२३ ई० में मृत्यु हुई। केवल एक बार वह अपने देश से बाहर सन् १६८० ई० में इंग्लैंड, सैर-सपाटे के लिए जा सका था। ल्यूवेनहुक एक वस्त्र-व्यवसायी था। इस दूकानदारी के व्यवसाय में ही उसने अपना सारा जीवन व्यतीत किया किंतु उसका यथार्थ कार्य इस दैनिक कार्यक्रम के अतिरिक्त सूक्ष्मदर्शक यंत्रों की उन्नति करने का था जिसे वह अपने अतिरिक्त समय में ही करता। दूकानदारी के दिन भर के धंधे के अतिरिक्त भी उसका समय फँसाने वाले अन्य अनेक कार्य थे। वह अपने नगर का सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति था। एक प्रसिद्ध स्थानीय चित्रकार के देहांत होने पर नगर के अधिकारी वर्ग ने ल्यूवेनहुक को चित्रकार की पत्नी की संपत्ति का प्रबंधक नियुक्त किया था। वह नगर-सभाभवन के दरवान रूप में भी काम करता था जिसे आदर का ही स्थान समझा जाता। उसे साधारण या असाधारण बैठकों के पूर्व द्वार खोलने तथा बैठक समाप्त होने पर बंद करने तथा भवन को झाड़-बुहार कर स्वच्छ रखने का कार्य करना पड़ता।

ल्यूवेनहुक का पिता एक टोकरी बनाने का व्यवसायी था। माता एक धनी परिवार की महिला थी। ल्यूवेनहुक को प्रारम्भिक शिक्षा के लिए एक निकट के स्थान की पाठशाला में भर्ती किया गया, फिर वह अपने एक चाचा के यहाँ अध्ययन करने चला गया जो एक वकील था; किन्तु ल्यूवेनहुक को न तो वकालत पढ़ने की लालसा थी और न पुस्तक-ज्ञान की ही विशेष आकांक्षा थी। उसे तो विद्वान के स्थान पर कोई साधारण भद्दा छात्र ही कहा जा सकता था, परंतु उसकी अंतर्बुद्धि तीव्र थी जो समय पाकर विकसित दिखाई पड़ी। कल्पना या मनन कार्य में विशेष लिप्त न रहने का ही यह परिणाम हुआ कि वह कालांतर में अपनी सब कुछ शक्ति ठोस निरीक्षणों तथा परीक्षणों में ही लगा सका। इसी ठोस कार्य-पद्धति ने उसे एक प्रसिद्ध खोजी सिद्ध किया।

एक वस्त्र-व्यवसायी की दूकान में काम सीखने की दृष्टि से सन् १६४८ ई० में ल्यूवेनहुक हालैंड के मुख्य नगर एमस्टर्डम में गया। वहाँ छः वर्ष रहने के पश्चात् वह फिर अपने जन्म-स्थान डेल्फ में लौट आया और स्वतन्त्र व्यवसाय कर वस्त्र-विक्रेता रूप में जीवन व्यतीत करता रहा।

अपने नियमित धंधे तथा दैनिक कार्यों के अतिरिक्त ल्युवेनहुक ने बड़े ही मनोयोग से काँच को गढ़-गढ़ कर उत्तम सूक्ष्मदर्शक बनाने प्रारंभ किए। उसका सूक्ष्मदर्शक यन्त्र एक उन्नतोदर काँच का ताल था जिसके ऊपर और नीचे पीतल की पतली तथा चौड़ी चादरें मढ़ी होतीं। इन दोनों चादरों में एक-एक छेद ठीक उस स्थान पर होते जहाँ बीच में काँच का ताल मढ़ा होता। अतएव इन पीतल की चादरों के बीच दबा हुआ काँच का ताल या गढ़ कर चिकना बनाया खंड दोनों छेदों से होकर दृष्टि जाने का मार्ग बनाता। इन छेदों में से एक पर आँख लगा कर शीशे के ताल को पार करते हुए दूसरी चादर के छेद से बाहर तक दृष्टि दौड़ाई जा सकती थी। इस दूसरे छेद के सामने कोई वस्तु सुई की नोक या किसी पारदर्शी ताल या काँच-खंड पर रख कर लाई जाती तो वह बहुत बड़ी दिखाई पड़ सकती।

ल्युवेनहुक ने एक-एक कर इतने अधिक सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र तैयार किए कि उसकी मृत्यु के समय २५० सूक्ष्मदर्शक यन्त्र विद्यमान पाए गए। इनको वह एक से एक उत्तम बनाने का उद्योग करता। अपनी कुशलता से उसने इतना

उत्तम ताल बनाने में सफलता प्राप्त की कि उसके द्वारा बने सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से इतनी बड़ी तथा स्पष्ट वस्तुएँ दिखाई पड़तीं जितनी अन्य व्यक्तियों के भद्दे यन्त्रों द्वारा नहीं दिखाई पड़ सकती थीं। इन यन्त्रों को वह बड़ी ही सावधानी से रखता। अपनी प्रसिद्धि होने पर वह कुछ साधारण सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र तो दर्शकों को भी दिखाता, किन्तु अपने अत्युत्तम यन्त्रों को छिपा कर दूर ही रखता। कभी मान्य अतिथि के घर में एक पल के लिए आने पर भी वह अपनी चमत्कारी वस्तु रूप का सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र तुरन्त ही छिपा कर रख देता।

ल्युवेनहुक ने अपने सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा उस सूक्ष्म-जगत् का दर्शन करना प्रारंभ किया जिसे पहले किसी ने भी नहीं अवलोकन किया था। उसने ऐसी सूक्ष्म जीवित वस्तुओं को चलते देखा था जो कभी भी किसी की दृष्टि में नहीं पड़ी थीं। ये सूक्ष्म-दर्शकीय जंतु थे जिन्हें हम आज एक-कोषीय जंतु तथा कीटाणु नाम देते हैं। पहले पहल इनका दर्शन कर ल्यूवेनहुक ने कितना अधिक कौतूहल अनुभव किया होगा। पानी की एक बूँद को सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र के दृष्टि-मंच पर रखने से उसमें नन्हें-नन्हें जंतु निरंतर गति-करते दिखाई पड़ते। वर्षा के स्वच्छ जल में इन्हें भले ही न देखा जा सकता हो, किन्तु वही जल कहीं रखा हुआ पड़ा रहे तो कुछ समय में उस में ये जन्तु दिखाई पड़ने में कोई संदेह नहीं हो सकता।

ल्यूवेनहुक ने इन विचित्रताओं का दर्शन करना ही आरंभ किया था कि किसी प्रकार इसकी सूचना उसके नगर-निवासी चिकित्सक डी ग्राफ नाम के व्यक्ति को मिली जो इंगलैंड की राजकीय परिषद् (रायल सोसाइटी) नाम की विद्वन्मंडली का एक विदेशी संवाददाता था। रेनियर डी ग्राफ ने ल्यूवेनहुक की खोज से अपने देशाभिमान के बढ़ाने का अवसर देखा अतएव उससे अभ्यर्थना की कि अपनी खोजों का वर्णन रायल सोसाइटी को भेजे। रायल सोसाइटी ने भी तुरन्त ही डी ग्राफ द्वारा प्रेषित समाचार को सादर ग्रहण किया और ल्यूवेनहुक को अपनी खोजों के संबंध में पत्र लिखते रहने के लिए बराबर प्रोत्साहित करना प्रारंभ किया। इन पत्रों के वर्णन पढ़ कर सोसाइटी के सभ्य चकित रह गए। उन्होंने अपना प्रतिनिधि भी हालैंड के इस साधारण किन्तु मेधावी नागरिक के पास भेजा। निदान ल्यूवेनहुक एक दिन रायल सोसाइटी का सभ्य भी निर्वाचित कर लिया गया जो उसके जीवन की अत्यन्त आनन्दप्रद घटना थी। इस प्रकार हालैंड ने अपने एक प्रतिभाशाली निवासी द्वारा विज्ञान जगत् में अपना सिर ऊँचा होते देखा। आज भी हालैंड के निवासी अपने एक देशवासी के इतने पूर्व आदरित होने की बात हर्षपूर्वक स्मरण करते हैं।

ल्यूवेनहुक को लैटिन या ग्रीक भाषाएँ ज्ञात नहीं थीं जो उन दिनों उच्च ज्ञान का माध्यम थीं। उसे अन्य कोई भाषा भी नहीं आती थी। केवल अपनी ही भाषा का साधारण रूप का ही ज्ञान था। अतएव हम उसे किसी पाण्डित्यपूर्ण पद्धति से कोई ग्रन्थ लिखते नहीं देखते। उसने कुछ घरेलू तथा स्थानीय बातों तथा अपनी वर्णन-पद्धति में समाविष्ट कितनी ही असंगत बातों के साथ ही वैज्ञानिक तथ्य की जो बातें रायल सोसाइटी को लिखे पत्रों में लिखीं वे वैज्ञानिक साहित्य की निधि तुल्य ही हैं। ऐसे साहित्य को समझने के लिए तत्कालीन अर्द्ध ग्रामीण हालैंड देशीय भाषा का अध्ययन कर विद्वानों ने उनके उपयुक्त अंश अनुवाद कर सुलभ बनाने का उद्योग किया है। ल्यूवेनहुक द्वारा रायल सोसाइटी को लिखे पत्रों की संख्या ११२ पाई जाती है।

जिन दिनों डेल्फ निवासी रेनियर डी ग्राफ ने रायल सोसाइटी के मंत्री को ल्युवेनहुक का परिचय देने के लिए पत्र लिखा, उन दिनों हालैंड तथा इंगलैंड के मध्य एक दीर्घकालीन युद्ध होता चला आ रहा था; किन्तु इन राजनीतिक उथल-पुथल की कुछ भी चिन्ता न करते हुए विज्ञान के क्षेत्र में सार्वभौमिकता का अनुभव कर डी ग्राफ ने लिखा था, "यह बात आप को अधिक स्पष्ट होगी कि तलवार के ही उठे होने से हम लोगों के मध्य से मानवता तथा विज्ञान का लोप नहीं हो गया है, इसलिए मैं आप को यह बताने के लिए लिख रहा हूँ कि एक अत्यंत देशी व्यक्ति यहाँ पर ल्यूवेनहुक नाम का है जिसने एक ऐसा सूक्ष्मदर्शक यंत्र आविष्कृत किया है जो उन सबसे उत्कृष्ट है जिन्हें हम लोगों ने अब तक देखा है या अन्य लोगों द्वारा निर्मित हुए हैं। उसके द्वारा लिखा हुआ पत्र साथ

में नत्थी है जिसमें उसने कुछ वस्तुओं का वर्णन किया है जिन्हें उसने स्वयं इतने विशद रूप में देखा है जितना अन्य खोजियों ने नहीं देखा। इससे आपको उसके काम का कुछ नमूना ज्ञात होगा।"

ल्यूवेनहुक ने अपने दूसरे पत्र में लिखा था, "अनेक भद्र पुरुषों द्वारा मुझसे प्रायः प्रश्न किया जाता है कि मैं अपने नव-आविष्कृत सूक्ष्म-दर्शक यंत्र द्वारा अवलोकित वस्तुओं का वर्णन करूँ किन्तु मैंने सदा इनकार ही किया है। पहला कारण यह है कि मेरी न तो कोई शैली है, न लेखन शक्ति है जिसमें मैं अपने विचारों का प्रदर्शन ठीक रूप से कर सकूं। दूसरे मुझे कला तथा भाषाओं की शिक्षा नहीं मिली है, मैं तो केवल व्यवसायी हूँ।......अतएव मैं आप से तथा जिन सज्जनों को इसे पढ़ने का अवसर मिले, उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे कृपया यह ध्यान में रक्खें कि मेरे निरीक्षण तथा विचार मेरी निजी, सहायता विहीन भावना तथा केवल जिज्ञासा के परिणामस्वरूप हैं, क्योंकि मेरे अतिरिक्त मेरे नगर में कोई वैज्ञानिक नहीं है जो इस विद्या का ज्ञान रखता हो। अतएव मेरी लेखनी की भूल को ध्यान में न लावें।"

ल्यूवेनहुक ने अपने अठारहवें पत्र में लिखा कि पानी में दिखाई पड़ने वाली कृमि की अपेक्षा वर्षा के गँदले जल में दस हजार गुना छोटे जीव दिखाई पड़ते हैं जिन्हें जीवित तथा चलता-फिरता पाया जाता है।

ल्यूवेनहुक ने अपने दाँतों के मध्य मैल की परीक्षा कर उसे नाना प्रकार के कीटाणुओं से भरा पाया। इनका वर्णन उसने अपने ३९ वें पत्र में किया था। उसने लिखा कि वह नित्य ही दांत स्वच्छ करता था। फिर भी मैल में ये कीटाणु रहते थे। उसके देश भर में मनुष्यों की जितनी संख्या हो सकती थी, उससे भी अधिक संख्या दांतों के मध्य रहने वाले इन कीटाणुओं का होना उसने बतलाया। इनको मृत करने के लिए उसने अंगूरी आसव की कुल्ली करने का प्रयोग किया। अंगूर के आसव से ये कीटाणु काँच के ताल पर तो मृत हो जाते, किन्तु दाँतों की संधि में इनकी गाढ़ी तह पर ऊपरी भाग के ही कुछ कीटाणु मृत हो सकते। आसव का प्रभाव भीतरी भाग तक नहीं होता। इस प्रकार हम कीटाणु विज्ञान का प्रारंभ होते देखते हैं जिसमें धारणाओं पर ही ज्ञान आधारित न रहकर प्रत्यक्ष निरीक्षण तथा प्रयोग के आधार पर प्रचलित होने वाला था, किन्तु इन प्रयत्नों के पश्चात् भी कीटाणु संबंधी प्रयोग बहुत दिनों तक सुनाई न पड़े। उनका युग कुछ अवधि व्यतीत होने पर ही आने वाला था।

जिन बहुमूल्य सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों को ल्यूवेनहुक ने अपने प्राणों समान सुरक्षित रक्खा तथा सर्वोत्तम यन्त्रों को किसी को भी दिखाना भी अनुचित समझा। उन सब को उसने अपनी मृत्यु के पश्चात् इंगलैंड की रायल सोसाइटी को दान देने का आदेश अपनी उत्तराधिकारिणी पुत्री को दे दिया था, अतएव उसकी मृत्यु होते ही वह यन्त्रों का संचित भंडार उसकी पुत्री ने सोसाइटी के पास भेज दिया। यह विज्ञान की खोज का कार्य आगे बढ़ाने तथा वैज्ञानिकों की उदार मनोवृत्ति का एक अनुपम उदाहरण था।

ल्यूवेनहुक की खोज की महत्ता तत्काल ही समझने वाले विद्वानों की कमी नहीं थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही रायल सोसाइटी ने उसके द्वारा दान में मिले हुए सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रों के संबंध में सम्मति आमंत्रित की। सोसाइटी के उप-सभापति श्री मार्टिन फोक्स ने जो बाद में उसके सभापति हुए थे, ल्यूवेनहुक के कार्यों के संबंध में अपने सम्मति-पत्रक में कहा था, "सोसाइटी के कुछ सभ्य ल्यूवेनहुक द्वारा परिचालित खोजों को आगे बढ़ाएँगे तथा रायल सोसाइटी को उसके द्वारा अन्तिम दान रूप में आदर भाव प्रदर्शन केवल हमारे भंडार की ही वृद्धि नहीं करेगा, बल्कि कतिपय अन्य कुशल शोधकों को उन्हीं विचित्र तथा लाभकारी खोजों को संचालित रखने में समर्थ बनाएगा।"

इस प्रकार हम जिस ज्ञान को फ्रैकैस्टोरियस द्वारा एक कल्पना रूप में ही खड़ा होते पाते हैं उसी के लिये एक दृढ़ नींव का उपक्रम हम ल्यूवेनहुक को प्रत्यक्ष कीटाणुओं के दर्शन का साधन उत्तम सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र के निर्माण द्वारा उपस्थित करते पाते हैं।

ल्यूवेनहुक ने स्वयं अपनी खोजों की चिकित्सा संबंधी महत्ता को अधिक नहीं समझा, क्योंकि वह एक कल्पनाशील व्यक्ति न होकर प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति ही था। उसे कीटाणुओं के दर्शन का अधिक से अधिक जितना प्रबल साधन बनाते संभव हो सका उसे प्रस्तुत करने तथा उन यन्त्रों के द्वारा

प्रत्यक्ष देखी सूक्ष्म वस्तुओं का विशद वर्णन विद्वानों के सम्मुख रख कर ही संतोष किया।

ल्यूवेनहुक जब ८५ वर्ष का हो गया, सभी अंग शिथिल पड़ने लगे, तब भी वह खोजों में लगा ही रहा। उसके हितैषियों ने उसे पूर्ण विश्राम का परामर्श देना प्रारम्भ किया, फिर भी वह अपने उद्योगों में लगा ही रहा। अंत में ६१ वर्ष की अवस्था में उसका देहान्त हुआ।

लीडेन विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा छात्रों ने ल्यूवेनहुक की खोजों से स्तब्ध होकर ऐसी खोजें करने के लिए तीन शीशा गढ़ने वाले व्यक्ति किराए पर नियुक्त किए, परन्तु परिणाम कुछ न निकला ल्यूवेनहुक ने उस पर लिखा था—"मेरी जहाँ तक दृष्टि जाती है, लगभग जितने भी पाठ वे पढ़ते हैं, वे स्व ज्ञान के माध्यम से धन अर्जन करने या संसार को यह दिखाकर कि वे कितने विद्वान् हैं, संसार की प्रतिष्ठा पाने के लिए हैं। ये बातें उन बातों की खोजों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखतीं जो हमारी आँखों से दूर छिपी रहती हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हजार आदमियों में कोई विरला ऐसी खोज करने में समर्थ होता है क्योंकि यदि कोई सफलता प्राप्त करनी हो तो उसके लिए असीम धन नष्ट होता है तथा निस्सीम समय की आवश्यकता होती है क्योंकि मनुष्य को अपने विचारों की उधेड़बुन में रहना पड़ता है।"

[जगपति चतुर्वेदी]

आणविक भट्टी

ओकरिज (टैनेसी) स्थित ओकरिज नेशनल प्रयोगशाला में एक ऐसी नई प्रक्रिया मालूम की गयी है जिसमें अणु-शक्ति का उपयोग करके खाद्यान्नों, औषधियों, धातुओं तथा अन्य वस्तुओं में मिलावट का पता लगाया जा सकता है। इसके अलावा यह भी मालूम किया जा सकता है कि अमुक वस्तु में कितनी मिलावट है।

विश्लेषण की इस अद्भुत प्रक्रिया की सहायता से सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में यह पता लगाया जा सकता है कि वे शुद्ध हैं अथवा उन में कुछ मिलावट की गयी है। अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन द्वारा कारबाइड ऐन्ड कारबन कम्पनी के जरिये समस्त स्वतंत्र देशों की औद्योगिक वैज्ञानिक तथा चिकित्सा-संस्थाओं में इस सम्बन्ध में व्यवस्था की जा रही है। यह कम्पनी कमीशन की ओर से उस प्रयोग-शाला का संचालन करती है।

प्रयोगशाला के डाइरेक्टर डा० सी० ई० लार्सन के कथनानुसार, जिस वस्तु का विश्लेषण करना होता है उसका कुछ नमूना लेकर और उसे आणविक भट्टी (ग्रेफाइट रिऐक्टर) में रखकर न्यूट्रोन से प्रताड़ित करने पर मिलावट की वस्तुएँ रेडियो प्रभावित हो जाती हैं। इसके बाद वैज्ञानिक उत्तम यंत्रों की सहायता से माप कर ठीक-ठीक पता लगा लेते हैं कि अमुक वस्तु में मिलावट की कितनी मात्रा मौजूद है।

इसके पूर्व जिस वस्तु का विश्लेषण करना होता था उसके थोड़े से नमूने की जांच की जाती थी, पर अब इस नई प्रक्रिया से पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में नमूनों का विश्लेषण किया जाता है और इस प्रकार अन्य परीक्षणों के परिणामों की अपेक्षा अधिक सही परिणाम निकलते हैं। डा० लार्सन ने बताया है कि अब प्रथम बार वैज्ञानिक बहुत से ऐसे रासायनिक तत्वों का पता लगाने में समर्थ हुए हैं जिनका इस से पूर्व कुछ भी पता नहीं चलता था। उनके कथनानुसार यह नई विधि अन्य पुरानी विधियों से अधिक स्पष्ट है।

डा० लार्सन ने बताया कि अणुशक्ति की सहायता से विश्लेषण द्वारा हम औषधियों, रासायनिक खादों, चारों, उत्तम रासायनिक द्रव्यों, ईंधनों, शीशों, मिट्टी के सामान, कीटनाशक रासायनिक द्रव्यों, तेलों, धातु एवं धातु मिश्रणों खनिजों, रंग-रोगन सम्बन्धी वस्तुओं, प्लास्टिक तथा रालमिश्रित धातुओं, धूल और पानी आदि में दूषित मिलावट का ठीक ठीक पता लगा सकते हैं।

नव-ग्रह

डा० उदित नारायण सिंह, एम० ए०, डी० फिल्०

आज भी भारतवर्ष के हिन्दूघरों में किसी भी मंगलकार्य के समय नव-ग्रहों की पूजा की जाती है। जिन नव-ग्रहों की पूजा की जाती है वे हैं : सूर्य, चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। केवल हिन्दुओं में ही नहीं बल्कि संसार के और देशों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों में भी बहुत प्राचीन काल से ही यह विश्वास प्रचलित रहा है कि आकाश में चमकने वाले कुछ ग्रह बहुत अंश तक पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों के भाग्य का नियमन करते हैं और उनके जीवन-क्रम पर बहुत बड़ा प्रभाव डालते हैं। शुभ कार्य में कोई विघ्न न उपस्थित हो जाय और जीवन-मार्ग मंगलमय बना रहे इसी इच्छा से इन भाग्य-नियन्ता ग्रहों की पूजा की जाती है। ये ग्रह वस्तुतः क्या हैं? किन पदार्थों के बने हुए हैं तथा एक दूसरे से इनका क्या सम्बन्ध है? यदि इन बातों का उचित ज्ञान इनके निष्ठावान पुजारियों को हो जाय तो चाहे इनकी परम्परागत पूजा में किसी प्रकार की कमी भले ही न उपस्थित हो पर इनकी तथाकथित क्रूरता से जो मानव-समाज सदैव सशंकित रहता है उस दैवी भय से उन्हें अनायास ही मुक्ति मिल जाती। राहु और केतु को छोड़कर बाकी सात (तथाकथित) ग्रह तो आकाश में बिना किसी यंत्र की सहायता के भी देखे जा सकते हैं और हजारों साल से लोग इन्हें देखते तथा पहचानते आ रहे हैं, पर राहु और केतु, मंगल आदि की तरह आकाश में चमकने वाले ग्रह नहीं हैं। ये तो बिल्कुल दूसरी चीज हैं और यथास्थान इनके विषय में भी लिखा जायेगा। पूजा के नव-ग्रहों में केवल पाँच ही ऐसे हैं जो वास्तव में ग्रह हैं। ये हैं : मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि और आकाश में चमकने वाले अनेक सितारों के बीच इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति रात भर सितारों के बीच उनकी स्थिति का निरीक्षण करता रहे तो उसे सरलता से मालूम हो जायेगा कि ये ग्रह सितारों की पृष्ठभूमि में अपना स्थान परिवर्तित करते रहते हैं—प्रायः वैसे ही जैसे चन्द्रमा अपना स्थान बदलता रहता है, पर उतनी शीघ्रता पूर्वक नहीं। उनके इसी स्थान-परिवर्तन के कारण ही शायद प्राचीन काल में लोगों को यह विश्वास होने लगा कि ये ग्रह मनुष्यों के जीवन पर अपना प्रभाव डालते हैं। जो भी हो आज के गणितज्ञ-ज्योतिषी को इस बात से बिल्कुल मतलब नहीं है कि ये ग्रह प्रसन्न होकर मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाते हैं अथवा अप्रसन्न होकर उसके ऊपर भयंकर विपत्तियों की वर्षा करते हैं। उसे तो यह जानने में अधिक आनन्द है कि ये ग्रह किस धातु के बने हैं। इनके भीतर मिट्टी, पत्थर, लोहा...क्या क्या है? किस प्रकार ये बने। ये निरन्तर परिक्रमा क्यों करते रहते हैं—इनके अवधि—पर्यटन का क्या उपसंहार होगा...आदि आदि। आधुनिक विज्ञान की खोजों के आधार पर इन ग्रहों के विषय में हमें जो कुछ भी ज्ञान हो सका उसका विवेचन करने के पूर्व यह आवश्यक है कि पहले सौर परिवार के ग्रहों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लिया जाय।

जिस प्रकार पृथ्वी सूर्य के चारों ओर निरन्तर घूमती रहती है उसी प्रकार कुछ और पिंड भी सूर्य के चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं। सूर्य एक तारा है और उसके चारों ओर घूमने वाले ये पिण्ड ग्रह कहलाते हैं। सूर्य का तेज और उसका प्रकाश उसी के भीतर स्थित द्रव्यों के कारण है पर उसके आश्रित सभी ग्रह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं और उसी के प्रकाश को प्रतिबिम्बित कर चमकते रहते हैं। सूर्य के अतिरिक्त और भी हजारों तारे हैं जो अपने प्रकाश से चमकते हैं, पर इन तारों में सब के चारों ओर घूमने वाले वाले ग्रह नहीं हैं। अभी तक केवल सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों का ही पता है पर सम्भव है कि कछ और तारों के पास भी ग्रह-परिवार हो। ग्रहों को तारों से अलग इस बात को ध्यान में रख कर आसानी से पह-

जाना जा सकता है कि तारे ग्रहों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से टिमटिमाते रहते हैं। उनकी चमक स्थिर नहीं रहती है। ग्रहों के चारों ओर उनसे छोटे पिण्ड घूमते रहते हैं। इन छोटे-छोटे पिण्डों को उपग्रह कहा जाता है। पृथ्वी सूर्य का एक ग्रह है और इस तरह चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है। पृथ्वी के अलावा और भी कई ग्रह हैं जिनके उपग्रह हैं। सूर्य तथा उसके ग्रहों और उपग्रहों को मिलाकर सौर परिवार कहा जाता है।

पहले लोगों की यह धारणा थी कि ग्रह सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार पथ में घूमते हैं, पर यह धारणा गलत थी। वस्तुतः कोई भी ग्रह सूर्य के चारों ओर एक वृत्त में नहीं घूमता है। प्रत्येक ग्रह की कक्षा दीर्घ वृत्त के रूप की होती है। यदि कोई वस्तु किसी समतल में इस प्रकार घूमे कि उस समतल में स्थित दो स्थिर विन्दुओं से घूमने वाले विन्दु की दूरियों का योग सर्वदा समान रहे तो उसका पथ एक दीर्घ वृत्त होता है। दोनों स्थिर विन्दुओं में प्रत्येक को दीर्घ वृत्त की नाभि कहते हैं। जब दोनों स्थिर विन्दु मिल कर एक ही हो जाँय तो घूमने वाले विन्दु का पथ वृत्त हो जाता है। इस प्रकार कोई भी वृत्त एक प्रकार का दीर्घ वृत्त ही है। ग्रह सूर्य के चारों ओर दीर्घ वृत्त में क्यों घूमते हैं इसका कारण आगे चल कर बताया जायेगा। यहाँ केवल यह जान लेना आवश्यक है कि प्रत्येक सूर्य ग्रह-कक्षाओं के केन्द्र में नहीं रहता बल्कि प्रत्येक ग्रह-कक्षा के एक नाभि स्थान पर रहता है। इस प्रकार घूमने वाले ग्रह हर समय सूर्य से एक ही दूरी पर नहीं रहते। सूर्य से प्रत्येक ग्रह की अधिकतम दूरी और अल्पतम दूरी के योग के आधे को इस ग्रह की औसत दूरी कहते हैं। सूर्य की पृथ्वी से औसत दूरी ९२८७०,००० मील है। यह दूरी कितनी अधिक है इसका अनुमान इस बात से लग सकता है कि यदि कोई जहाज ध्वनि की गति अर्थात् ७५० मील प्रति घंटा की चाल से निरन्तर चलता रहे तो उसे यह दूरी तय करने में १४ वर्ष लगेंगे। अधिकांश ग्रहों की सूर्य से औसत दूरी पृथ्वी की अपेक्षा कहीं अधिक है अतः मीलों में उनकी दूरी आँकना बहुत ही असुविधाजनक सिद्ध होगा। ग्रहों की दूरी जानने के लिये ज्योतिषियों ने दूरी नापने का एक नया मापदण्ड अपनाया है। इस माप की इकाई है सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी अर्थात् ९२,८७०,००० मील। इस इकाई दूरी को ज्योतिष की इकाई कहते हैं। इस तरह पृथ्वी की सूर्य से औसत दूरी ज्योतिष की एक इकाई के बराबर हुई।

सूर्य के सब ग्रहों में सूर्य के सब से निकट बुध है। नव ग्रहों में आकार में सब से छोटा भी बुध ही है। सूर्य से बुध की दूरी ज्योतिष की ०.३९ इकाइयों के बराबर है। इसका व्यास ३१०० मील अर्थात् पृथ्वी के व्यास का ०.४ है। और यह ८८ दिन में सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा कर लेता है। अपनी धुरी पर यह ग्रह कितनी देर में एक चक्कर काटता है यह निश्चित रूप से नहीं मालूम है। यह ग्रह इतना छोटा है और सूर्य के इतने नजदीक रहता है कि इसका भली भाँति देखना और इसकी सतह का पर्याप्त निरीक्षण करना बड़ा कठिन है। यह सूर्य के इतने समीप है कि या तो सूर्योदय के थोड़ा पहले पूर्वीय क्षितिज के पास या सूर्यास्त के बाद ही पश्चिमी क्षितिज के पास बहुत ही थोड़ी देर के लिये दिखाई पड़ता है।

सूर्य से दूरी के क्रमों में बुध के बाद शुक्र है। शुक्र की दूरी सूर्य से ज्योतिष की ०.७२ इकाई के बराबर है। यह ग्रह की दृष्टियों से पृथ्वी से मिलता जुलता है। इसका आकार प्रायः पृथ्वी के आकार के बराबर है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का ९७.३ प्रतिशत है। सूर्य के चारों ओर यह २२५ दिनों में एक परिक्रमा कर लेता है और इसका द्रव्य पुंज पृथ्वी का ०.८ वाँ भाग है। सूर्य के समीप होने के कारण शुक्र भी या तो सवेरे सूर्योदय के पहले या शाम को सूर्यास्त के बाद आकाश में दिखाई देता है। ग्रहों में सब से अधिक चमकीला शुक्र ही है। सूर्य और चन्द्रमा के बाद आकाश में सबसे प्रभापूर्ण पिण्ड यही है। इसकी तेज चमक के कारण शुक्र को पहचानना बहुत आसान है। पृथ्वी की ही भाँति शुक्र भी चारों ओर से विस्तृत वायुमंडल से ढँका हुआ है।

शुक्र के बाद पृथ्वी की कक्षा आती है और पृथ्वी के बाद मंगल। पौराणिक आख्यानों में मंगल को पृथ्वी का पुत्र कहा गया है। यह शायद इसी बात को दृष्टि में रखकर कहा गया है कि आकार प्रकार में मंगल 'पृथ्वी का बच्चा'

जैसा है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का आधा है और यह चारों ओर बहुत विरल वायुमण्डल से घिरा हुआ है। इसका वायुमंडल अत्यन्त विरल होने के कारण मंगल का धरातल भली भाँति देखा जा सकता है। मंगल में समुद्र बिलकुल नहीं है। मंगल सूर्य के चारों ओर ६८७ दिनों में एक परिक्रमा कर लेता है। जिस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता रहता है उसी तरह मंगल के चारों ओर घूमने वाले दो उपग्रह हैं। ये दोनों उपग्रह, फोबाँस और डीमाँस आकार में बहुत ही छोटे हैं। फोबाँस का व्यास केवल ५ मील है और डीमाँस का व्यास ७½ मील है। सूर्य से मंगल की औसत दूरी ज्योतिष की १.५२ इकाइयों के बराबर है।

मंगल के बाद वृहस्पति की कक्षा है, पर मंगल और वृहस्पति की कक्षा के बीच की दूरी बहुत अधिक है। सूर्य से मंगल की दूरी ज्योतिष की १.५२३ इकाइयों के बराबर है और वृहस्पति की दूरी ५.२० इकाई के बराबर है। वृहस्पति ग्रहों में सबसे बड़ा है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का ग्यारह गुना है लेकिन इसका औसत घनत्व पानी के घनत्व का ⅓ ही है। यही कारण है कि वृहस्पति चारों ओर से बहुत ही सघन वायुमंडल से घिरा हुआ है। जितनी शीघ्रता से वृहस्पति अपनी धुरी पर चक्कर काट लेता है उतनी शीघ्रता से कोई दूसरा ग्रह नहीं घूम पाता। इसे अपनी धुरी पर घूमने में कुल १० घन्टे लगते हैं। धुरी पर इतना तेज घूमने के कारण ही इसका मध्यवर्ती भाग थोड़ा बाहर की ओर उभर आया है।

मंगल और वृहस्पति की कक्षाओं के बीच में सहस्त्रों लघु-ग्रह (जिन्हें Asteriods कहा जाता है) भरे हुए हैं। इनमें बहुत से इतने छोटे हैं कि इनका व्यास प्रायः १ मील के बराबर है और इनमें सबसे बड़ा सेरल (Cerel) है जिसका व्यास ४३० मील है। सेरल के बाद आकार में सबसे बड़ा पैलेस (Palles) है और इसके बाद वेस्टा है जिनके व्यास क्रमशः ३०४ और २४० मील हैं। बड़े-बड़े सभी क्षुद्रग्रह प्रायः पहचाने जा चुके हैं। अब तक कुल १५०० से अधिक ही पहचाने गये हैं, पर सहस्त्रों छोटे छोटे भरे पड़े हैं जिनको अलग अलग पहचानना अत्यन्त कठिन है।

वृहस्पति ग्रहों में सबसे बड़ा ही नहीं कहा जाता बल्कि इसके पास सबसे अधिक उपग्रह भी हैं। वृहस्पति के चारों तरफ घूमने वाले कुल ग्यारह उपग्रह हैं, इनमें से चार तो आकार में प्रायः हमारे चन्द्रमा के बराबर हैं पर बाकी सात छोटे-छोटे हैं।

दूरबीन के सहारे ग्रहों को देखने में सबसे आकर्षक और प्रिय शनि मालूम पड़ता है। हिन्दुओं के फलित ज्योतिष में शनि एक क्रूर ग्रह कहा जाता है और अपनी हल्की सी वक्रदृष्टि द्वारा यह किसी भी व्यक्ति को विपद्ग्रस्त कर सकने की क्षमता रखता है। कोई नहीं चाहता कि शनि की वक्रदृष्टि उस पर पड़े। जो भी हो दूरबीन द्वारा देखने पर शनि का स्वरूप इतना मोहक लगता है कि इच्छा होती है कि इसे बार बार देखा जाय। इस ग्रह की कक्षा वृहस्पति के बाद आती है और आकार में भी वृहस्पति के बाद सबसे बड़ा ग्रह है। सूर्य से शनि की दूरी ज्योतिष की ६.५४ इकाई के बराबर है। पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से यह प्रायः ६ गुना अधिक दूर है और इसका व्यास भी पृथ्वी के व्यास से प्रायः ६ गुना बड़ा है। सूर्य के चारों ओर एक चक्कर काटने में इसको प्रायः २६½ वर्ष लगते हैं। अपनी कक्षा पर इतने धीरे धीरे चलने के कारण ही इसे शनैश्चर (धीरे धीरे चलने वाला) नाम दिया गया था।

शनि को उसके गोलाकार पिंड से कुछ दूर एक पतली सी वृत्ताकार मेखला चारों ओर से घेरे हुए हैं। इस मेखला को 'शनि वलय' कहा जाता है। इस वलय के कारण ही शनि का सौन्दर्य अद्भुत और अपूर्व लगता है। यह वलय बहुत ही छोटे छोटे Asteriods (क्षुद्रग्रहों) का सघन समूह मात्र ही है जो शनि के चारों ओर प्रायः वृत्ताकार कक्षाओं में घूमा करते हैं। इस वलय के अतिरिक्त शनि के चारों ओर घूमने वाले ६ उपग्रह भी हैं, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ६ ग्रह। इस दृष्टि से शनि एक छोटा-सा सौर परिवार ही है, क्योंकि इसके चारों ओर उपग्रहों के अतिरिक्त Asteriods (क्षुद्रग्रह) भी घूमते रहते हैं। शनि के Asteriods (क्षुद्रग्रह) प्रायः एक ही समतल में हैं, इसीलिये शनि-वलय बहुत ही पतला है।

बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि काफी चमकीले होने के कारण सरलता पूर्वक देखे जा सकते हैं और पता नहीं कबसे लोग इनको पहचानते आ रहे हैं। खोज करने के बाद जिन ग्रहों का पता लगा है वे हैं, वारुणी वरुण, और यम (यूरैनस, नेप्यून और प्लेटो)। यूरैनस का अन्वेषण सन् १७८१ में सर विलियम हर्शेल ने किया। नेप्यून और प्लेटों की खोज क्रमशः सन् १८४६ ई० और १६३० में हुई। इनके अन्वेषण की कहानी, जिसका उल्लेख आगे किया जायेगा, बहुत ही मनोरंजक है। सूर्य से युरैनस की दूरी ज्योतिष की १६ इकाइयों के बराबर है और इसका व्यास ३२००० मील है। यह पृथ्वी के व्यास का प्रायः चौगुना है। सूर्य के चारों ओर एक चक्कर काटने में इसे ८४ वर्ष लगते हैं और अपनी धुरी पर १०½ घंटे में घूम लेता है। यूरैनस के पास चार उपग्रह हैं।

नेप्यून की दूरी ३० इकाइयों के बराबर है और इसका व्यास ३१००० मील लम्बा है। अपनी कक्षा पर एक बार घूमने में इसको १६४ साल लगते हैं और अपनी धुरी पर यह १५ घंटा ४८ मिनट में एक चक्कर काटता है। बृहस्पति की तरह इन दोनों ग्रहों पर भी बहुत सघन वायुमंडल है। सूर्य से बहुत अधिक दूर होने के कारण यह अत्यन्त ठण्डे हैं। नेप्यून के पास एक उपग्रह है।

नवग्रहों में सूर्य से सबसे अधिक दूर प्लेटो है। पर आकार में युरैनस नेप्यून की अपेक्षा बहुत छोटा है। यम की दूरी सूर्य से ३६. ४६ इकाइयों के बराबर हैं। अपनी कक्षा पर घूमने की अवधि २४७ वर्ष है। इसके विषय में अभी हमें बहुत कम मालूम है। अभी तक जो कुछ भी मालूम हैं उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका आकार पृथ्वी के आकार से थोड़ा छोटा है। इसकी धुरी पर चक्कर काटने की अवधि अनिश्चित है। ऐसा लगता है कि इसके चारों ओर वायुमंडल नहीं है और यदि है तो वह बहुत ही विरल है क्योंकि इसकी सतह से सूर्य का प्रकाश बहुत क्षीणता पूर्वक प्रतिबिम्बित होता है। जिन ग्रहों पर वायु-मण्डल नहीं होता। वे अपेक्षाकृत कम चमकीले होते हैं। यदि चन्द्रमा पर भी हवा होती तो वह कहीं अधिक प्रभा-पूर्ण दिखलाई पड़ता।

इस तरह सौर परिवार में कुल नव ग्रह और २८ उपग्रह हैं। मंगल और बृहस्पति के बीच में छोटे छोटे क्षुद्रग्रह हैं। ग्रह और उपग्रह के अलावा मनुष्यों को भयभीत करनेवाले कभी कभी अकस्मात प्रकाश में उदय हो जाने वाले पुच्छल तारे भी सौर परिवार के ही सदस्य हैं। पुच्छल तारों का आकार-प्रकार, इनकी बनावट, इनका आचरण, ग्रहों से सर्वथा भिन्न है।

यह तो हुआ सौर परिवार के सदस्यों का संक्षिप्त परिचय। इनमें प्रत्येक ग्रह का परिचय देते हुए हमने सूर्य से उसकी औसत दूरी, अपनी कक्षा पर एक बार घूम आने की उसकी अवधि आदि तथ्यों का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में इस प्रश्न का उठना अत्यन्त स्वाभाविक है कि इन तथ्यों को कैसे जाना गया। इससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, ग्रह सूर्य के चारों ओर निरन्तर क्यों घूमते हैं। आकाश में अपनी भ्रममान स्थितियों में किस प्रकार टिके हुए हैं? इन प्रश्नों के साथ यह जानने का कुतूहल हो सकता है कि सौर परिवार की उत्पत्ति कैसे हुई और अन्त में इस व्यवस्था का उपसंहार क्या होगा। सौर परिवार के निर्माण का प्रश्न निस्सन्देह बहुत ही मौलिक और महत्वपूर्ण है, पर साथ ही यह इतना जटिल भी है कि शताब्दियों से श्रेष्ठतम गणितज्ञों के महान प्रयत्नों के बावजूद भी आजतक इस प्रश्न का पूर्णतः सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल पाया है। समय समय पर गणितज्ञों ने सौर-परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनके सिद्धान्तों का तर्कपूर्ण और तुलनात्मक विवेचन बहुत ही शिक्षाप्रद एवम् मनोरंजक होगा पर यहाँ स्थानाभाव से उनकी चर्चा नहीं की जायेगी, हाँ, ग्रहों के सम्बन्ध में अभी तक जिन महत्वपूर्ण तथ्यों का पता लग सका है (उनके आकार प्रकार, उनकी बनावट तथा उनके ऊपर और उनके भीतर पाये जाने वाले द्रव्यों, उनके ऊपर जीव-संसार के बसने की सम्भावनाओं आदि) उनका अधिक विस्तार के साथ उल्लेख करने के पहले यह आवश्यक होगा कि हम यह जान लें कि इन तथ्यों का विश्वसनीय ज्ञान गणित की सहायता से किस प्रकार किया जाता है।

बहुत दिनों तक आकाश में ग्रहों की गतिविधि का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद सत्रहवीं शताब्दी में व्युर्टम्बर्ग (जर्मनी) के प्रसिद्ध गणितज्ञ जान केप्लर ने ग्रहों की गति के सम्बन्ध में तीन महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले। इन निष्कर्षों को 'केप्लर के तीन नियम' कहा जाता है। ये हैं—

१—सूर्य के चारों ओर प्रत्येक ग्रह एक दीर्घवृत्त में घूमता है और सूर्य इस दीर्घ वृत्ताकार कक्षा की एक नाभि पर स्थित है।

२—प्रत्येक ग्रह अपनी कक्षा पर इस प्रकार घूमता है कि सूर्य से उस ग्रह को मिलाने वाली सीधी रेखा समान समयों में समान क्षेत्रफल खींचे।

३—किन्हीं दो ग्रहों की अवधियों (सूर्य के चारों ओर एक चक्कर काटने की) के वर्ग का अनुपात सूर्य से उप ग्रहों की औसत दूरियों के तृतीय घात के अनुपात के बराबर होता है।

पहले दो निष्कर्षों को केप्लर ने १६०६ में प्रकाशित किया था, पर अपने तीसरे निष्कर्ष का प्रतिपादन उसने दस वर्ष बाद किया। सन् १६१६ ई० में प्रकाशित उसकी पुस्तक 'संसार का सामंजस्य' (The Harmony of the World) में ये तीनों निष्कर्ष साथ ही साथ दिए गये थे। केप्लर ने अपने इन नियमों का प्रतिपादन केवल ग्रहों की गतिविधि का निरीक्षण करने के बाद ही किया था। अपने स्वयं के निरीक्षण के अतिरिक्त उसने कुछ और ज्योतिर्विदों (जैसे टाइको ब्राहे) द्वारा संग्रहीत तथ्यों से सहायता ली थी। केप्लर ने इन तथ्यों तथा ग्रहों की स्थितियों का इतना मार्मिक अध्ययन किया था कि उसके तीनों नियम पूर्णतः सत्य हैं और आगे चलकर समय ने यह सिद्ध किया कि केप्लर के निष्कर्ष ठीक थे। परन्तु इस प्रश्न का—कि ग्रहों का आचरण इन्हीं तीन नियमों के अनुसार क्यों होता है—केप्लर के पास कोई उत्तर नहीं था। इसका समाधान तो न्यूटन ने अपने सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके किया। न्यूटन के इस सिद्धान्त को मान लेने के बाद ग्रहों की गति सम्बन्धी केप्लर के उपर्युक्त तीनों निष्कर्ष सरलतापूर्वक गणित द्वारा निकाले जा सकते हैं। न्यूटन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर केवल केप्लर के निष्कर्षों को गणित द्वारा सिद्ध ही नहीं किया है बल्कि उसने पूरे ज्योतिषशास्त्र को एक नई गति दी और सम्पूर्ण विज्ञान को एक नया दृष्टिकोण दिया। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त ने विज्ञान में जो क्रान्तिकारी विकास किये हैं उनकी चर्चा यहाँ न कर हम केवल यह देना कह चाहते हैं कि ऊपर दिये हुए केप्लर के तीन नियम केवल निरीक्षण और अनुमान के विषय ही नहीं वरन् गणितसिद्ध सत्य हैं। अब आगे चलकर हम देखेंगे कि इन्हीं तीन निष्कर्षों के सहारे किस प्रकार ग्रहों के विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

ग्रहों के नाक्षत्र काल और युतिकाल ज्ञात करना

सूर्य के चारों ओर एक चक्कर कर लेने में किसी ग्रह को जितना समय लगता है उसे उस ग्रह का नाक्षत्रकाल कहते हैं। यदि किसी प्रकार कोई मनुष्य सूर्य के ऊपर पहुँच जाय और वहाँ चिरकाल तक जीवित रहे तो वह बराबर निरीक्षण करने से विभिन्न ग्रहों के नाक्षत्रकाल जान सकता है क्योंकि आकाश में तारों की पृष्ठ भूमि में वह किसी भी ग्रह को सूर्य के चारों ओर घूमते देख सकता है। चक्कर की पूरी अवधि जानने के लिये उसके लिये केवल इतना ही आवश्यक है कि वह यह जान ले कि एक निश्चित समय में वह ग्रह अपनी कक्षा पर सूर्य को केन्द्र में रखकर कितने अंश का कोण बनाता है। इस प्रकार पूरा चक्कर करने में अर्थात् ३६०° का कोण बनाने में उसे कितना समय लगेगा, आसानी से निकाला जा सकता है। परन्तु सूर्य की तह पर पहुँच कर ग्रहों की गतिविधि का निरीक्षण करना तो बिलकुल असम्भव है, अतः पृथ्वी पर से ही निरीक्षण कर हमें ग्रहों के नाक्षत्रकाल जानने का उपाय निकालना होगा।

सूर्य पर किसी ग्रह की गति का निरीक्षण करने में ऐसे भी क्षण आयेंगे जब वह ग्रह, पृथ्वी तथा सूर्य ये तीनों एक ही सीधी रेखा में स्थित हो। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि वह ग्रह 'युति' में है। यदि ग्रह सूर्य और पृथ्वी दोनों के बीच में है तो अन्तर्युति कहते हैं (बुध और शुक्र प्रायः अन्तर्युति में हैं) और यदि सूर्य, पृथ्वी तथा उस ग्रह के बीच में रहता है तो

उसे प्रधानयुति कहते हैं। सभी ग्रह प्रधानयुति में आ सकते हैं। यदि उस ग्रह और सूर्य के बीच में पृथ्वी रहती है तो उस स्थिति को सम्मुख स्थिति कहते हैं।

किसी ग्रह को दो क्रमागत युतियों अथवा सम्मुख स्थितियों के बीच जितना समय लगता है (पृथ्वी के ऊपर से निरीक्षण करने में) उसे उस ग्रह का प्रतिकाल कहते हैं। पृथ्वी के ऊपर से निरीक्षण करने पर किसी भी ग्रह का युतिकाल आसानी से निकाला जा सकता है। युतिकाल जानने के पश्चात् उस ग्रह का नाक्षत्रकाल नीचे दी हुई विधि द्वारा सफलता पूर्वक निकाला जा सकता है। मान लो किसी ग्रह का नाक्षत्र काल *स* है तथा उसका युति काल *ग* है। पृथ्वी के नाक्षत्र काल को हम सूर्य के निरीक्षण द्वारा आसानी से निकाल सकते हैं। पृथ्वी के नाक्षत्र काल को *च* द्वारा व्यक्त किया जायेगा। वह ग्रह *स* समय में सूर्य के चारों ओर ३६०° का कोण बनाता है अतः समय की इकाई में वह $\frac{३६०}{स}$ अंश का कोण बनायेगा। अर्थात् उसकी औसत कोणीय गति $\frac{१}{स}$ की समानुपाती है। इसी प्रकार पृथ्वी की औसत कोणीय गति $\frac{१}{च}$ की समानुपाती है। पृथ्वी के ऊपर से निरीक्षण करने पर उस ग्रह की औसत कोणीय गति $\frac{१}{ग}$ की समानुपाती होगी। पर यह कोणीय गति सूर्य के ऊपर से निरीक्षण करने पर उस ग्रह की तथा पृथ्वी की कोणीय गतियों के अन्तर के बराबर होनी चाहिये—अर्थात्

$$\frac{१}{ग} = \frac{१}{स} - \frac{१}{च} \qquad (१)$$

पर यह सूत्र उस ग्रह के लिये उपयुक्त है जिसकी कक्षा पृथ्वी के भीतर रहती है अर्थात् एक *लघु* ग्रह के लिये है। यदि वह ग्रह *प्रधान* ग्रह है अर्थात् इसकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा के बराबर है तो *स*, *च* से बड़ा होगा और ऊपर दिये गये सूत्र के आधार पर *ग* का मान ऋणात्मक आयेगा जो ठीक नहीं है। थोड़ा ध्यान देने पर यह आसानी से स्पष्ट हो जायेगा कि ऐसी दशा में ऊपर के समीकरण में दाहिने पक्ष के पदों के चिन्ह बदल देना चाहिये। इस प्रकार एक *प्रधान* ग्रह के लिये

$$\frac{१}{ग} = \frac{१}{च} - \frac{१}{स} \qquad (२)$$

अतः किसी भी ग्रह का *नाक्षत्रकाल स* जानने के लिये

$$\frac{१}{स} = \frac{१}{च} \pm \frac{१}{ग} \qquad (३)$$

इस सूत्र का प्रयोग करना चाहिये। यदि ग्रह *लघुग्रह* है तो धन चिन्ह लेना चाहिये और यदि *प्रधान* ग्रह है तो ऋण चिन्ह लेना चाहिये। इस सूत्र के प्रयोग को स्पष्ट करने के लिये नीचे दो उदाहरण लिये जाते हैं।

शुक्र एक *लघु* ग्रह है। पृथ्वी के ऊपर से निरीक्षण करने पर पता चला है कि इसका युतिकाल ५८३.९२ दिनों का है और पृथ्वी की अवधि ३६५.२५ दिनों की है। शुक्र का नाक्षत्रकाल निकालने में हमें सूत्र (३) में धन चिन्ह लेना पड़ेगा। अतः शुक्र के लिये

$$\frac{१}{स} = \frac{१}{३६५०२५} + \frac{१}{५८३०६२} = \frac{६४९०१७}{२१३२७७} \text{ दिन}$$

इस प्रकार स = २२४.७ दिन।

अब मंगल को लीलिए। यह एक *प्रधान* ग्रह है। इसका युतिकाल ७७९.९४ दिनों का है। इसका नाक्षत्र काल निकालने में सूत्र (३) में ऋण चिन्ह लेना होगा। अतः मंगल के लिये

$$\frac{१}{स} = \frac{१}{३६५.२५} - \frac{१}{७७९.९४} = \frac{४१४.६९}{२८४८७३}$$

अतः स = ६८६.९८ दिन।

इसी भाँति अन्य ग्रहों के *नाक्षत्रकाल* निकाले जा सकते हैं।

सूर्य से किसी ग्रह की औसत दूरी निकालना

यदि किसी ग्रह का *नाक्षत्रकाल* वर्षों में मालूम हो तो सूर्य से उस ग्रह की दूरी निकालने में हम केप्लर के तीसरे नियम का प्रयोग करते हैं। तीसरा नियम दो ग्रहों के *नाक्षत्रकाल* तथा सूर्य से उनकी औसत दूरियों के पारस्परिक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यदि हम सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी को दूरी की इकाई मानें और पृथ्वी के *नाक्षत्र काल*—(अर्थात् एक वर्ष) को समय की इकाई मानें तो

किसी भी ग्रह का नाक्षत्र काल तथा सूर्य से उसकी औसत दूरी सरलता पूर्वक निकाली जा सकती है। पहले तो वर्ष की इकाइयों में हम ऊपर दी हुई विधि द्वारा उस ग्रह का *नाक्षत्रकाल* ज्ञात करेंगे। मान लीजिए कि नाक्षत्रकाल *य* वर्ष है अतः यदि उस ग्रह की सूर्य से औसत दूरी *ब* के बराबर मानें तो तीसरे नियम के अनुसार $य^२ = ब^३$। इस प्रकार *ब* का मान निकाला जायेगा। उदाहरण स्वरूप हम सूर्य से मंगल की औसत दूरी निकालेंगे। हमने ऊपर यह निकाला है कि मंगल का *नाक्षत्रकाल* ६८३·९५ दिन अर्थात् १.८८१ वर्ष है। यदि उसकी औसत दूरी *ब* है तो $ब^३ = (१.८८१)^२$

$= ३.५३८१६१$

$ब = १.५२४$

अर्थात् सूर्य से मंगल की दूरी ज्योतिष की १.५२४ इकाइयों के बराबर हुई। चूँकि ज्योतिष की एक इकाई (अर्थात् पृथ्वी की सूर्य से दूरी) ९३००५००० मील है। अतः सूर्य से मंगल की दूरी (१.५२४) × (९३००५०००) मील या १४१७४०००० मील हुई। किसी अन्य ग्रह की औसत दूरी इस प्रकार निकाली जा सकती है।

सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी निकालना

सूर्य से किसी ग्रह की औसत दूरी निकालने की जो विधि ऊपर दी गई है उसके द्वारा हम उस ग्रह की दूरी केवल ज्योतिष की इकाइयों में ही निकाल सकते हैं। अब प्रश्न उठता है कि ज्योतिष की इकाई का मान मीलों में किस प्रकार निकाला जाय। अर्थात् सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी मीलों में किस प्रकार ज्ञात की जाय। इस कार्य में एरॉस नामक लघुग्रह से बड़ी सहायता मिलती है। एरॉस एक ऐसा लघुग्रह है जो कभी कभी पृथ्वी के बहुत समीप आ जाता है। जिस समय यह पृथ्वी के बहुत समीप रहता है (यह बात निरीक्षण से मालूम हो जावेगी) उस समय पृथ्वी से इसकी दूरी मीलों में उसी प्रकार ज्ञात कर ली जाती है जिस प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी निकाली जाती है। अब पृथ्वी पर से निरीक्षण कर हम एरॉस की औसत दूरी ज्योतिष की इकाइयों में निकाल सकते हैं क्योंकि हम एरांस का युतिकाल जानते हैं, अतः उसका नाक्षत्रकाल मालूम हो जायेगा। नाक्षत्रकाल की सहायता से ऊपर दी गई विधि द्वारा हम सूर्य से एरॉस की औसत दूरी निकाल सकते हैं। इसके बाद कुछ और तथ्यों की सहायता से (जैसे एरॉस की कक्षा की उत्केन्द्रता, पृथ्वी की कक्षा से उसकी कक्षा का झुकाव, एरॉस के सूर्य से सबसे समीप रहने का समय आदि। हम पृथ्वी से एरॉस की किसी भी समय की दूरी ज्योतिष की इकाइयों में निकाल सकते हैं। मान लीजिए कि यह दूरी *क* ज्या० इ० के बराबर हैं और मीलों में एरॉस की दूरी है तो

ज्योतिष की *क* इकाई = *स* मील

$$” \quad १ \quad ” = \frac{स}{क} \text{ मील}$$

इस प्रकार ज्योतिष की एक इकाई का मान मीलों में आ जायेगा।

सन् १९००—१ में एरांस पृथ्वी के बहुत समीप था। उस समय श्री हिन्कूस ने गणनाकर ज्योतिष की एक इकाई का मान ९,२९,००,०००, मील निर्धारित किया था।

सन् १९३०-३१ में एक समय एरांस पृथ्वी से केवल १६०००००० मील की दूरी पर था। इस स्थिति से लाभ उठाकर इंगलैंड के राज ज्योतिषी सर हैरोल्ड स्पेन्सर जोन्स ने एक बार फिर ज्योतिष की इकाई का मान मीलों में निकालने का प्रयत्न किया। १९४१ में उनकी गणना समाप्त हुई और उनके अनुसार पृथ्वी की सूर्य से औसत दूरी ९, ३०, ०५ ००० मील है।

ग्रहों की गति का वेग निकालना

किसी ग्रह की सूर्य से औसत दूरी तथा कक्षा पर घूमने की अवधि आदि जानने के लिए हमने मुख्यतः केप्लर के तीसरे नियम की सहायता ली हैं। यदि हमें यह ज्ञात करना हो कि कोई ग्रह किसी समय अपनी कक्षा पर किसी वेग से चल रहा है तो हमें केप्लर के दूसरे नियम का सहारा लेना पड़ेगा। दूसरे नियम से जो बात बहुत ही सरलता पूर्वक स्पष्ट हो जाती है वह है :—

कोई भी ग्रह अपनी कक्षा पर ज्यों ज्यों सूर्य के समीप आता जाता है त्यों त्यों उसका वेग बढ़ता जाता है और ज्यों ज्यों वह सूर्य से दूर होता जाता है त्यों त्यों उसका

वेग घटता जाता है। क्योंकि दूसरे नियम के अनुसार सूर्य से ग्रह को मिलाने वाली रेखा (दिक् त्रिज्या) एक ही समय में बराबर क्षेत्रफल तय करती है। अतः यदि ग्रह सूर्य के समीप है तो दिए हुए समय के अभीष्ट क्षेत्रफल तय करने के लिये उसे अपनी कक्षा का अपेक्षाकृत अधिक बड़ा चाप समाप्त करना पड़ेगा और परिणाम स्वरूप उसे अधिक तीव्र वेग से कक्षा पर घूमना होगा। यदि किसी समय सूर्य से ग्रह की वास्तविक तथा उसकी औसत दूरी मालूम हो जाय तो दूसरे नियम की सहायता से उस समय उसका वेग आसानी से निकाला जा सकता है। यहां हम वेग ज्ञात करने का एक सरल सूत्र दे देते हैं। यदि ज्योतिष की इकाइयों की और दूरी द हो तथा उसकी वास्तविक दूरी त हो तो उस समय उसका वेग=

$$(१८.४७)\sqrt{\frac{२}{त}-\frac{१}{द}}$$ मील प्रति सेकेन्ड।

ऊपर हमने मंगल ग्रह की सूर्य से औसत दूरी ज्ञात की है। वह १.५२४ ज्यो० दूरी के बराबर है। सूर्य से मंगल की अधिकतम एवं अल्पतम् दूरी क्रमशः १.६७५ और १.३६० ज्यो० इ० के बराबर है। जब मंगल सूर्य से अधिकतम दूरी पर है तो उपयुक्त सूत्र के अनुसार उसका वेग

$$(१८.४७)\times\sqrt{\frac{२}{१.६७५}-\frac{१}{१.५२४}}=(१८.४७)\times(०.७३३)=१३.५$$ मील प्र० से०। जब मंगल अल्पतम दूरी पर हो तो त=१.३६० और

$$वेग=१८.४७\sqrt{\frac{२}{१.३६०}-\frac{१}{१.५८४}}=$$

१८.४७ × ०.८८५ = १६.३ मील प्रति सेकेन्ड

वरुण और यम के अन्वेषण की कहानी

वरुण और यम इन दो ग्रहों के अन्वेषण की कहानी ज्योतिष विज्ञान के इतिहास की बहुत ही महत्वपूर्ण एवम् गौरवपूर्ण घटना है। वस्तुतः इनके खोज की कथा श्रीराम के चमत्कार का एक बहुत ज्वलन्त उदाहरण है। इन दो ग्रहों के अन्वेषण की कहानी वारुणी के खोज के इतिहास से इस प्रकार उलझी हुई है कि इनका पूर्ण महत्व समझने के लिये यह अच्छा होगा कि संक्षेप में वारुणी के अन्वेषण की घटना का वर्णन कर दिया जाय। वारुणी ही सबसे पहला ग्रह है जिसकी वस्तुतः खोज की गई। बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि ये पाँच ग्रह इतने अधिक चमकने वाले हैं कि केवल आँख की सहायता से ही पता नहीं कब से मानव संसार इनको देखता और परखता आ रहा है। युगों से पहचाने और जाने गये इन ग्रहों की संख्या में नवीन वृद्धि ३ मार्च सन् १७८१ ई० को हुई जब प्रसिद्ध ज्योतिषी सर विलियम हर्शेल ने पुनर्वसु के पास के छोटे-छोटे तारों का निरीक्षण करते समय पास पड़ोस के तारों से बड़े तथा अधिक चमकते हुए सितारे को देखा। और तारों से बड़ा होने के कारण हर्शेल ने समझा कि यह कोई धूमकेतु है पर कुछ दिनों तक इसकी गति और इसके पथ का निरीक्षण करने के बाद यह सिद्ध हो गया कि यह धूमकेतु नहीं वरन् एक नया ग्रह है। जार्ज तृतीय के निर्देशक बोर्ड की राय मानकर इसका नाम वरुणी रक्खा गया। हर्शेल के पहले वरुणी १७ बार और देखा गया था पर कभी किसी को इसके ग्रह होने का सन्देह नहीं हुआ था। सबसे पहली बार इसको १६९० ई० में देखा गया था। बाद को वारुणी की कक्षा निर्धारित करने में इन पुराने निरीक्षणों के समय इसके स्थान की सहायता ली जाने लगी तो इन सब का समन्वय करना बड़ा कठिन हो गया। गणना करनेवालों ने पहले सोचा कि अन्य ग्रहों के आकर्षण के कारण यह गड़बड़ी हो रही है। १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ज्योतिषियों की गणना के अनुसार वारुणी को जहाँ होना चाहिये था वह इस स्थान से थोड़ा आगे रहता था। पर सन् १८८२ ई० के बाद तो वह अपने निर्धारित स्थान से पीछे रहने लगा।

ज्ञात ग्रहों द्वारा इसकी कक्षा में जो कुछ गड़बड़ी सम्भव हो सकती उसका हिसाब बैठाकर इसके लिये जो पथ निर्धारित किया गया, जब वारुणी इस पथ से भी दूर हटने लगा तो कुछ ज्योतिषियों को सन्देह हुआ कि इसकी कक्षा के बाहर कोई अज्ञात ग्रह अपने आकर्षण के प्रभाव से निरन्तर इसकी गति में व्यतिरेक उपस्थित कर रहा है।

फ्रांस के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद लवेर्ये तथा कैम्ब्रिज के एक युवक गणितज्ञ जान कौच एडमस् ने अलग अलग स्वतंत्र

रूप से यह गणना करनी प्रारम्भ कर दी कि वारुणी की गति में इस प्रकार का व्यक्तिक्रम उत्पन्न करने वाला ग्रह कैसा और किस स्थान पर होना चाहिये। एडम्स ने अपनी गणना सितम्बर १८४५ ई० में समाप्त की और अपनी गणना का परिणाम तत्कालीन राज-ज्योतिषी एयरी के पास इस विचार से भेज दिया कि वे दूरबीन की सहायता के इस बात का पता लगावें कि गणना के परिणाम-स्वरूप आकाश में जिस स्थान पर नये ग्रह को होना चाहिये वहाँ वह है कि नहीं। दुर्भाग्यवश एयरी ने एडम्स की गणना को कोई खास महत्व नहीं दिया और वे दूसरे कार्यों में लगे रहे। लेवेर्ये ने अपनी गणना सन् १७४६ के ग्रीष्म काल में समाप्त की और उस समय फ्रान्स की विज्ञान परिषद् के पास उसने अपने परिणाम तीन निबन्धों के रूप में भेजे। लवेर्ये की गणना का कुछ अंश एयरी को भी देखने को मिला और तब उन्हें पता चला कि लवेर्ये और एडम्स एडम्स और लवेर्ये दोनों वरुण के अन्वेषण के समान अधिकारी समझे जाते हैं।

यम के खोज की कहानी भी प्रायः वैसे ही हैं जैसे वरुण की। इस बार भी दो ज्योतिषियों ने अलग-अलग गणना कर एक नये ग्रह की स्वतन्त्र स्थिति की भविष्यवाणी की। लेकिन इन भविष्यवाणियों के बावजूद भी इस नये ग्रह का पता लगाने में काफी समय लगा। मंगल ग्रह का निरीक्षण करने के लिये अमेरिका के प्रसिद्ध ज्योतिषी वार्सिवल लोवले ने इस शताब्दी के प्रारम्भ में वारुणी की कक्षा के सम्बन्ध में एक बार फिर से गणना की और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वारुणी की कक्षा के बाहर स्थित किसी अज्ञात ग्रह के प्रभाव के कारण, वारुणी की कक्षा में गड़बड़ी होती रहती है। उन्होंने इस अज्ञात ग्रह की कक्षा और उसकी स्थिति के विषय में गणना कर भविष्यवाणी की जो १९१४ में प्रकाशित हुई
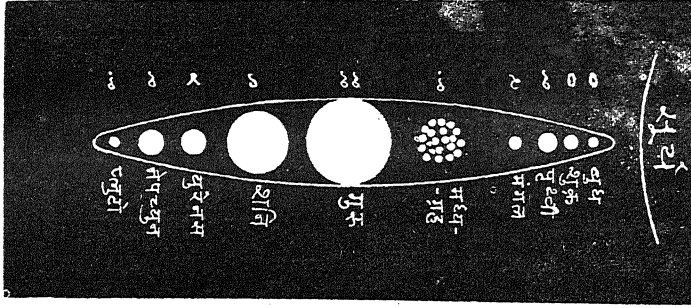
की गणनाओं में बहुत कुछ समानता थी। उसके बाद उन्होंने कैम्ब्रिज के मैलिस से दूरबीन द्वारा उस ग्रह का पता लगाने को कहा। मैलिस के पास आकाश के उस भाग का जहाँ ऐडम्स ने उस ग्रह के होने की भविष्यवाणी की थी, चार्ट ही नहीं था। अतः उन्होंने क्रमपूर्वक उस भाग के तारों के फोटोग्राफ लेकर चार्ट बनाना प्रारम्भ किया। इस कार्य में काफी समय लग गया।

उधर लवेर्ये ने अपनी गणना बर्लिन के ज्योतिषी श्री गाले के पास भी भेज दी। गाले को उनका निबंध २३ सितम्बर सन् १८४६ को मिला। उसी दिन रात को लवेर्ये द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर खोज करके उन्होंने उस नये ग्रह का पता लगा लिया। एडम्स के लिये यह दुर्भाग्य की ही बात थी कि मैलिस ने ४ अगस्त तथा उसके आठ दिन बाद दो बार अपने चार्ट में उस ग्रह को स्थान दे कर भी उसे पहचाना नहीं। यह सुख का विषय है कि थी। १९१६ में लोवले का देहान्त हो गया। १९२९ में लोवले वेधशाला के एक युवक श्री टॉमवाड ने लोवले की गणना के आधार पर पुनर्वसु नक्षत्र के भीतर उस नये ग्रह का पता लगाया। इस ग्रह का नाम 'यम' रखा गया। इसकी खोज १३ मार्च सन् १९३० को हुई थी। ठीक इसी दिन हर्शेल ने वारुणी की खोज की थी।

"लोवले ने तो वारुणी की कक्षा की गड़बड़ियों का अध्ययन कर 'यम' की स्थिति के विषय में भविष्यवाणी की थी, पर विलियम पिकरिंग ने मुख्यतः वरुण की कक्षा में उत्पन्न हुई गड़बड़ियों के आधार पर ग्रह के होने की भविष्यवाणी १९११ में की थी। उनकी धारणा थी कि इस ग्रह का द्रव्य पुंज पृथ्वी का दूना होना चाहिये। लोवले के अनुसार यम का पुंज पृथ्वी का सात गुना होना चाहिये। पर वस्तुतः उसका पुंज पृथ्वी के पुंज से कुछ कम ही है। वैसे यम प्रायः मंगल के आकार का है।

बोडे का नियम

सूर्य से विभिन्न ग्रहों की दूरी जानने के लिये बोडे ने एक नियम निकाला था। इस नियम के लिये कोई गणित-सिद्ध प्रमाण नहीं है, पर इसके द्वारा प्रायः सभी ग्रहों की औसत दूरी मोटे तौर पर ज्ञात की जाती है। बोडे का नियम इस प्रकार है—

	बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	क्षुद्र ग्रह	बृहस्पति	शनि	वारुणी	वरुण	यम
बोडे का नियम	४ ०	४ ३	४ ६	४ १२	४ २४	४ ४८	४ ९६	४ १९२	४ .	४ ३८४
	.४	०.७	१.०	१.६	२.८	५.२	१०.०	१९.६	.	३८.८
वास्तविक	०.३९	०.७२	१.०	१.५२		५.२०	९.५४	१९.१९	३०.०७	३९.४६

पहले एक सारिणी में सभी ग्रहों के नाम क्रम पूर्वक जैसा ऊपर दिया गया है लिख ले। फिर उसके नीचे एक एक ४ लिख ले और ४ के नीचे क्रम पूर्वक ०, ३, ६, १२, २४–इस प्रकार की संख्यायें लिख ले। प्रत्येक ग्रह के नीचे की संख्याओं को जोड़ कर उनमें १० का भाग दो। इस प्रकार ज्यो० इ० उस ग्रह की, सूर्य से दूरी आ जायेगी। बोडे के नियम के अनुसार वरुण के लिये जो दूरी आनी चाहिये वह यम के लिये अधिक उपयुक्त है। इसीलिये वरुण की दूरी इस नियम द्वारा नहीं निकाली गई है।

ग्रहों के ऊपर क्या है

पृथ्वी के ऊपर हम रहते हैं। इस ग्रह के ऊपर युगों से जीवन क्रम चल रहा है और इसी प्रकार युगों तक चलता रहेगा। यहाँ हवा और पानी होने के कारण नाना प्रकार के जीव जन्तु, पेड़-पौधे बनस्पतियाँ आदि उत्पन्न होती रहती हैं। क्या यह सम्भव है कि सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रह और उसी के प्रकाश से प्रकाशित और ग्रहों के उपर भी पृथ्वी की भाँति प्राणि-संसार बसा हुआ है। यदि हो तो किस ग्रह पर किस प्रकार की जीवन लीला सम्भव है? और यदि नहीं तो उन ग्रहों की सतह कैसी है, उनके ऊपर क्या होता है? आदि बहुत ही मनोरंजक प्रश्न हैं। उन प्रश्नों के सम्बन्ध में हमें काफी विश्वसनीय बातें ज्ञात हो चुकी हैं। यहाँ हम उन तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करते हैं। पृथ्वी के सबसे समीप आकाशीय पिण्ड चन्द्रमा है। चन्द्रमा से ही हम अपने ग्रहों का परिचय प्रारम्भ करते हैं।

चन्द्रमा

चन्द्रमा को तो हम प्रायः प्रतिदिन देखते हैं। पूर्णमासी का चाँद विशेष रूप से मनोहर लगता है। कवि तो सुन्दर स्त्रियों के मुख की तुलना प्रायः चन्द्रमा से किया करते हैं। पर दुरबीन द्वारा चन्द्रमा को एक बार देख लेने पर कोई भी स्त्री अपने को 'चन्द्रमुखी' कहलाना पसन्द नहीं करेगी। दूरबीन से देखने पर चन्द्रमा के ऊपर नाना प्रकार के खड्ड दिखलाई पड़ते हैं। ये गड्ढे देखने में प्रायः वैसे ही लगते हैं जैसे पृथ्वी पर के क्रेटर। अभी तक चन्द्रमा के जितने क्रेटरों का नकशा बन चुका है उनकी संख्या ३०,००० से भी अधिक है। इन क्रेटरों के अतिरिक्त अनेक बनस्पतिहीन पर्वत-मालायें और निर्जन घाटियाँ दिखाई पड़ती हैं। इन पर्वतों, क्रेटरों और घाटियों के अतिरिक्त चन्द्रलोक में और कुछ है ही नहीं। वहाँ हवा नाम को भी नहीं है और जब हवा नहीं है तो बादल नहीं हो सकते, पानी नहीं बरस सकता। समुद्र और नदियाँ हो ही नहीं सकतीं और किसी

भी प्रकार की ध्वनि नहीं हो सकती। सम्पूर्ण चन्द्र-लोक प्रशान्त, निश्शब्द, निर्जन, उजाड़ और निष्प्राण सा-पड़ा हुआ है।

चन्द्रमा का दिन (चन्द्रमा के उस भाग में जो सूर्य के सामने रहता है दिन रहता है। तथा पीछे वाले भागमें रात होती है) पृथ्वी के प्रायः दो सप्ताह के बराबर होता है और रात भी उतनी ही लम्बी होती है। यह इसलिए होता है कि चन्द्रमा अपनी धुरी पर प्रायः २७ दिन में एक चक्कर काटता है और इतने ही समय में वह पृथ्वी के चारों ओर भी एक चक्कर काटता है। यही कारण है कि हम लोग चन्द्रमा का केवल एक ही भाग पृथ्वी पर से देखते हैं। चन्द्रमा के जिस भाग में दिन रहता है उस भाग से आकाश का कोई रंग नहीं जान पड़ेगा। केवल चमकता हुआ सूर्य और उसका अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकाश दिखाई देगा और रात में काला आकाश और चमकते हुए तारे। दिन में पृथ्वी के ऊपर से जो आकाश का रंग नीला दीखता है वह केवल पृथ्वी के ऊपर के वायुमंडल में किरणों के बिखर जाने से होता है और वायुमण्डल के ही कारण पृथ्वी के ऊपर उतनी गर्मी नहीं पड़ती जितनी गर्मी सूर्य से आती है तथा रात को उतनी ठंढक नहीं पड़ती जितनी सूर्य की गर्मी न होने के कारण पड़नी चाहिये पर चन्द्रमा के ऊपर तो वायुमंडल है नहीं, अतः दिन में वहाँ इतनी गर्मी पड़ती है कि पानी उबलने लगे। दोपहर का तापमान प्रायः २१४° फारनहाइट तक रहता है और रात का २४३° फा० रहता है। दिन और रात के तापक्रम में इतना अधिक अंतर होने पर पृथ्वी जैसा प्राणि संसार चन्द्रमा में कैसे रह सकता है। चन्द्रमा में दिन-रात के परिवर्त्तन के अतिरिक्त और किसी प्रकार का ऋतु परिवर्त्तन नहीं होता है

चन्द्रमा के ऊपर हवा न होने का प्रधान कारण है उसके पुञ्ज की अल्पता। इसके पुञ्ज के कम होने के कारण इसका आकर्षण इतना कम है कि वायुमंडल के अणु अपने वेग के कारण चन्द्रमा की सतह से धीरे-धीरे दूर हट कर शून्य में विलीन हो जायेंगे। यदि चन्द्रमा की सतह से कोई चीज प्रति सेकेंड १॥ मील की गति से चन्द्रमा से दूर भागना प्रारम्भ करे तो वह फिर चंद्रमा से हमेशा के लिये दूर निकल जायगी और चद्रमा का क्षीण आकर्षण उसे फिर अपनी सतह पर लौटा नहीं सकेगा। साधारण तापक्रम में हाइड्रोजन के अणुओं का औसत वेग प्रायः १½ मील प्रति सेकेंड के बराबर ही होता है और चूँकि कुछ अणु तो ऐसे अवश्य होते हैं जो औसत वेग से तीव्रतर होते हैं अतः चन्द्रमा की सतह पर से हाइड्रोजन का बहुत शीघ्रता पूर्वक लोप हो जायेगा। ऑक्सिजन और नाइट्रोजन के अणु हाइड्रोजन की अपेक्षा अधिक भारी होते हैं, अतः चन्द्रमा की सतह पर से इन गैसों का उतनी शीघ्रता पूर्वक लोप नहीं हो सकता है, पर ये भी कालान्तर में चन्द्रमा के आकर्षण से मुक्त हो जायेंगी।

किसी ग्रह की सतह पर से जिस वेग से भागने पर कोई वस्तु उस ग्रह के आकर्षण के परे निकल जाती है उस वेग को उस ग्रह का 'मुक्ति-वेग' कहते हैं। चन्द्रमा का मुक्ति-वेग १½ मी० प्रति सेकेंड है। पृथ्वी का मुक्ति-वेग ७½ मी० प्रति सेकेन्ड है। अर्थात् यदि कोई वस्तु पृथ्वी की सतह से ७½ मी० प्रति सेकेन्ड की गति से पृथ्वी से दूर आकाश की ओर भागना प्रारम्भ करे तो इस पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण फिर वापस नहीं खींच सकता। पृथ्वी का यह मुक्ति-वेग इतना अधिक है कि हाइड्रोजन के अणु भी अनन्त काल तक पृथ्वी के आकर्षण से दूर नहीं जा सकते और हमारा वायुमंडल प्रायः इसी भाँति चिरकाल तक स्थायी बना रहेगा

चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के ·१६६ के बराबर है अर्थात् पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के प्रायः छठें भाग के बराबर है। यदि पृथ्वी के ऊपर किसी वस्तु का वजन छ सेर है तो चन्द्रमा के ऊपर (स्प्रिंग बैलेन्स द्वारा तौलने पर) उस वस्तु का वजन १ सेर होगा और चन्द्राकर्षण की इस अल्पता के कारण पृथ्वी के ऊपर ४ फीट कूदने वाला आदमी चन्द्रमा की सतह पर प्रायः २४ फीट ऊँचा कूद जाएगा। यदि पृथ्वी पर कोई आदमी एक कंकड़ ६४ फीट प्रति सेकेण्ड की गति से ऊपर फेंके तो वह कंकड़ करीब करीब ६४ फीट ऊपर जाकर लौटेगा। चन्द्रमा की सतह पर इस गति से फेंकने पर वह कंकड़ ३८४ फीट ऊँचा जाकर वापस लौटेगा।

चन्द्रमा में क्रेटरों के उत्पन्न होने के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त प्रतिपादित किए जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि चन्द्रमा की सतह पर बड़ी बड़ी उल्काओं के गिरने के कारण सतह में क्रेटर की तरह से गड्ढे हो गए हैं और कुछ लोगों की धारणा है कि प्रारम्भ में चन्द्रमा में ज्वालामुखी थे जो कालान्तर में शान्त हो गये हैं. उन्हीं के क्रेटर गड्ढे के रूप में दिखाई देते हैं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन सा मत ठीक है। चन्द्रमा के ऊपर सबसे ऊँचा पहाड़ औसत सतह से १५०० फीट ऊपर है और सबसे गहरे क्रेटर की गहराई प्रायः २४०० फीट है। पृथ्वी पर सबसे ऊँची चोटी (माउन्ट एवरेस्ट) प्रायः ३०००० फीट है और समुद्र की सबसे अधिक गहराई ३५, ४०० फीट है।

पृथ्वी से चन्द्रमा की अधिकतम दूरी २, ५२, ७१० मील तथा कम से कम दूरी २, २१, ४६३ मील है। उसकी औसत दूरी २, ३८, ८५७ मील है।

मंगल

पृथ्वी के बाहर मंगल ही पहला ग्रह है जो अपनी रक्तिम आभा के कारण सर्वदा सरलता से पहचाना जा सकता है। इसके भीतर की प्राकृतिक अवस्थाएँ ऐसी नहीं हैं जिनमें वनस्पतियाँ तथा पशु न रह सकें और विशेषतः इस कारण यह ग्रह अन्य गृहों की अपेक्षा अधिक मनोरंजक है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मंगल में किसी न किसी रूप में जीवन है ही अपितु इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुकूल अवस्थायें पाकर वहाँ जीवन का प्रादुर्भाव हो सकता है।

दूरबीन से देखने पर हमें मंगल की सतह पर बहुत सी मनोरंजक बातें दिखाई पड़ती हैं। शियापरेली ने, १८७७ में, मंगल में स्थित तथाकथित 'नहरों' का पता लगाया। इसके कारण फैले हुये भ्रमका निवारण आज तक नहीं हो सका है। 'नहरों' का नाम सुनते ही लोगों ने अपनी कल्पना को खूब ऊँची उड़ान दी। उन्होंने यह सोचा कि मंगल के निवासियों ने सिंचाई के लिये ध्रुवों से नहरें निकाल रखीं हैं। प्रो० लोवले ने तो अपना अधिकांश समय इन्हीं नहरों की छानबीन में व्यतीत किया। एक अंगरेज इन्जीनियर ने तो एक पूरी स्कीम ही तैयार कर दी कि यहाँ कितनी शक्ति के पम्प प्रयोग में आते हैं, कैसे पानी का उपयोग होता है, मंगल में कितने वर्गमील क्षेत्रफल पर खेती होती है आदि आदि। परन्तु प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि मंगल में स्थित रेखायें, रेखायें नहीं हैं अर्थात् बहुत पासपास स्थित विन्दुओं का एक समूह मात्र है।

मंगल का वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल की अपेक्षा विरल है। वहाँ पर ओषजन (oxygen) की कमी है : कहा नहीं जा सकता कि वहाँ इतनी भी ओषजन है या नहीं जिसमें पशु जीवन का होना सम्भव हो सके। मंगल की सतह पर भिन्न भिन्न ऋतुओं में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या, वनस्पति जीवन की उत्पत्ति, वृद्धि तथा अन्त के द्वारा की जाती है। किन्तु यदि वहाँ वनस्पति जीवन सम्भव है तो पशुजीवन की स्थिति भी सम्भव हो सकती है किन्तु अभी ये सब बातें विवादग्रस्त हैं।

मंगल के पास दो छोटे छोटे उपग्रह हैं जिन्हें फोबस (Phobos) और डीमस (Deimos) कहते हैं। फोबस का व्यास प्रायः १० मील है। मंगल से इसकी मध्यमान दूरी ५८२८ मील है यह ७ घंटा ३९ मिनट में मंगल की एक परिक्रमा करता है। डीमस का व्यास फोबस का प्रायः आधा है। उसकी मध्यमान दूरी १४६०० मील तथा एक परिक्रमा की अवधि ० घन्टे है।

वृहस्पति

वृहस्पति हमारे सौरमंडल का एक बहुत बड़ा ग्रह है। इसका भार सौरमंडल के अन्य सभी ग्रहों के एकत्रित भार से भी अधिक है इसकी भ्रमण की अवधि ९ घन्टा ५५ मिनट है : दूरबीन के सहारे देखने पर हमें इस ग्रह पर इसकी विषुवत रेखा के समानान्तर गाढ़े रंग की पट्टियाँ दीखती हैं जिनमें तेजी से होते रहने वाले परिवर्तन ध्यान पूर्वक देखने पर ही मालूम पड़ते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि ये पट्टियाँ ग्रह की सतह पर न होकर उसे ढकने वाले वायुमंडल में ही स्थित हैं।

हमें ज्ञात है कि सूर्य का भ्रमण काल (Period of-rotation) अक्षांशों के साथ-साथ बदलता रहता है, ठीक
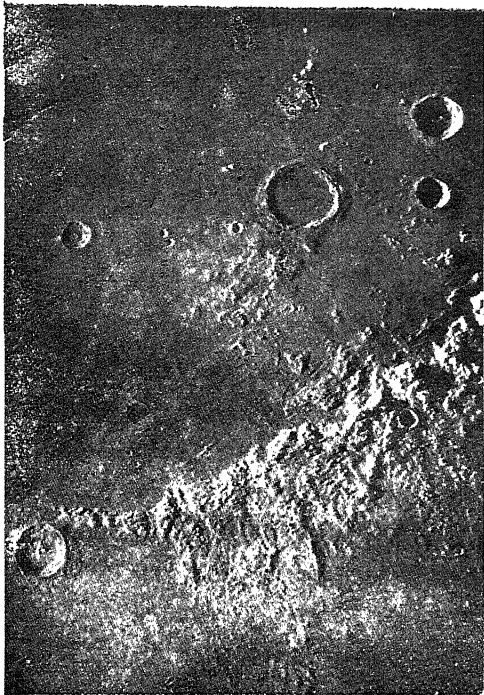
चन्द्रमा के क्रेटर
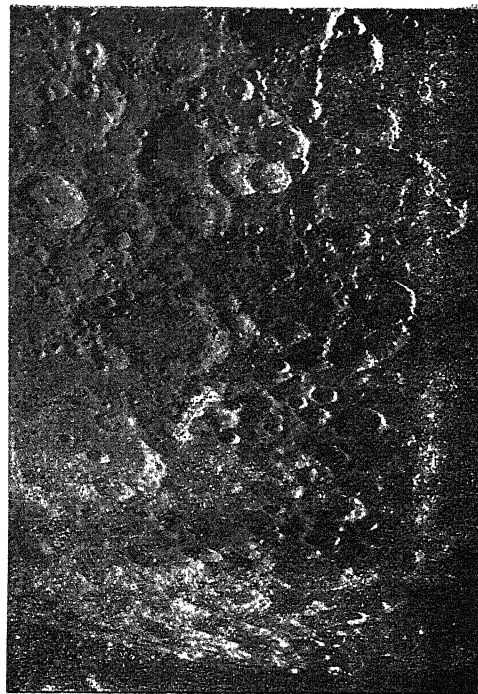
चन्द्रमा के ज्वालामुखी
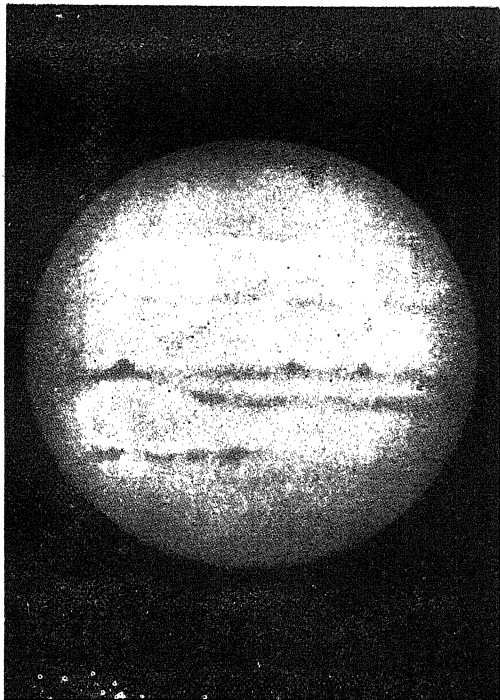
वृहस्पति

मंगल

यही दशा इस ग्रह की भी है। विषुवत रेखीय भाग मध्य-मान काल ६ घन्टा ५० मिनट २६ सेकेन्ड है तथा अन्य भागों में यह ६ घन्टा ५५ मिनट ५ सेकेन्ड से ६ घन्टा ५५ मिनट ४२ सेकेन्ड तक रहता है। इस अन्तर के कारण यह प्रतीत होता है कि हमको ग्रह का ठोस भाग न दिखाई देकर उसे ढकने वाला वायुमंडल—जो प्रायः ६००० मील का है, ही दिखाई पड़ता है।

वृहस्पति के ११ उपग्रहों में ४ तो बड़ी आसानी से दिखाई पड़ जाते हैं सात काफी धुँधले होने के कारण कठिनाई से दीखते हैं।

शनि

वृहस्पति के बाद सौरमण्डल का दूसरा बड़ा ग्रह शनि है। इसका भ्रमणकाल १० घन्टा १४ मिनट है तथा इसके विषुवत रेखीय और ध्रुवीय व्यासों का अन्तर ७६०० मील है। यह दूरी वृहस्पति के लिये निकाली गई इसी दूरी के मान से कहीं अधिक है यद्यपि शनि वृहस्पति से छोटा ग्रह है।

शनिवलय आकाश के कुछ सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। इनके समुदाय का एक भाग शनि की विषुवत रेखा से ७००० मील की दूरी से प्रारम्भ होकर ११५०० मील की दूरी तक स्थित है। फिर १००० मील तक शून्य है जिसके बाद समुदाय का प्रकाशमान वलय दीखता है जिसकी आर-पार दूरी १६००० मील है। समुदाय का अन्तिम सिरा ग्रह के केन्द्र से ८६००० मील दूर है। ये वलय कोई ठोस पदार्थ नहीं अपितु असंख्य छोटे-छोटे पिंडों के समूहमात्र हैं। शनि ६ उपग्रहों में सब से बड़ा टिटान (Titan) है। इसका व्यास बुध के व्यास से छोटा है तथा यह १६ दिन में सूर्य की परिक्रमा करता है।
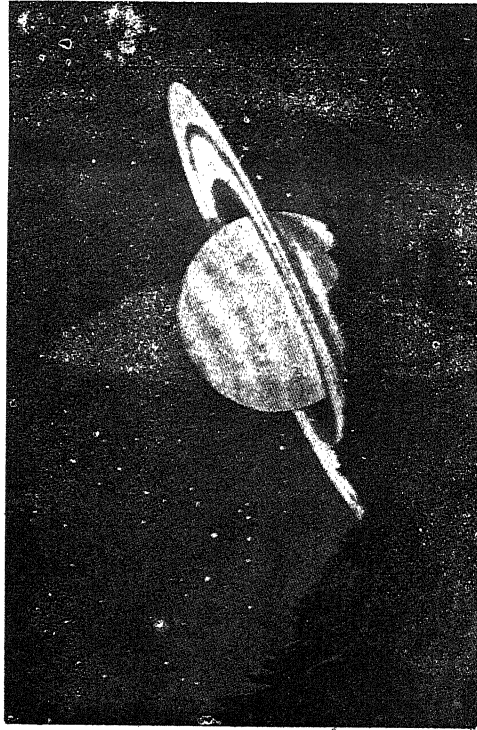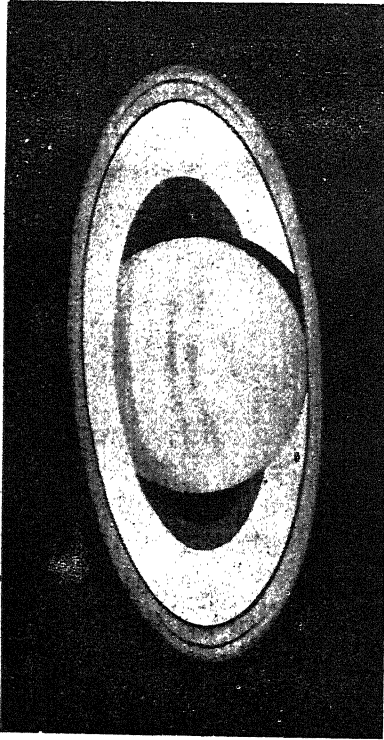
शनि

भक्ष्य छत्र

डा० ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा, बोटेनी विभाग, प्र० वि० वि०

शायद ही कोई ऐसा हो जिसको वर्षा ऋतु में छत्र जैसे रोचक पौधों को देखने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो। यद्यपि ये गले-सड़े पदार्थों पर उत्पन्न होते हैं फिर भी अधिकतर इतने रंग-बिरंगे और सुडौल होते हैं कि मनुष्य को सुगमता से आकर्षित कर लेते हैं। सभी छत्र विचित्र विचित्र रूप से उत्पन्न होते हैं और प्रायः उसी प्रकार लोप भी हो जाते हैं। इसीलिए युगों से पादप जगत की ये विचित्रताएँ साधारण मनुष्य के लिए बड़ी आश्चर्यजनक रही हैं और यही कारण है कि हमें पौराणिक कहानियों और कथाओं में इनका निर्देश मिलता है। लोग इन्हें अनेक नामों से पुकारते आए हैं, जैसे, कुकमुत्ता, धरती फूल, खुम्भी, भूफोड़ गगनफूल, आकाशफूल, मधुरिका छत्रक, छत्रा, आदि। अंग्रेजी भाषा में इन्हें मशरूम (Mushroom कहते हैं।
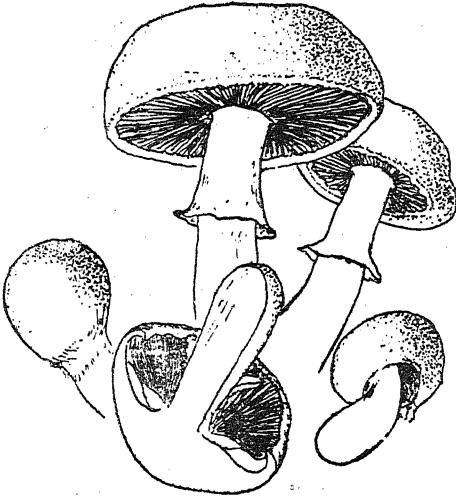
साधारण छत्र सैलिओटा कैमपेट्रिस

छत्र प्रायः मृतोपजीवी हैं। अधिकतर यह चर (Pasture) आदि में सड़ते हुए प्रागारिक पदार्थों (organic substances) अर्थात् सड़ती हुई लकड़ियों, पत्रों आदि पर ही जीवन निर्वाह करते हैं। सम्पूर्ण कवकानि-वर्ग (Fungi) में छत्र अति बड़े होते हैं। इनका वह भाग जो धरती के ऊपर होता है अर्थात् जिसे साधारणतया लोग छत्र कहते हैं वस्तुतः केवल बीजाणु उत्पन्न करने वाला भाग ही है। इनका शेष भाग धरती के भीतर ही रहता है जो पादप का वर्धि भाग है। इसमें कवकसूत्र (hyphae) होते हैं जो जीवाधार (substratum) में घुस कर विलेय प्रांगारिक संयोगों (soluble organic compounds) को प्रचूसित करते हैं जिन पर छत्र जीवित रहते हैं। ये सब कवक सूत्र मिलकर एक कवक-जाल (mycelium) निर्मित करते हैं। छत्रों का प्रजनन वर्धी (vegetative) भी हो सकता है। इसके लिए कवक जाल के टुकड़े उचित जीवाधारों पर स्थानान्तरित (transfer) कर दिए जाते हैं। प्रकृति में प्रजनन इनके धरती से ऊपर के प्रजनन-कार्यों से उत्पन्न बहुसंख्यक प्रकरणों (basidiospores) द्वारा ही होता है। फलन-काय (fructification) कवक-जाल की एक पट्टी (strand) पर उत्पन्न होता है जो एक गोलाकार या रुचि फलाकार (pear-shahed) आस्वेद-काय है जिसमें कवक सूत्रों का जाल होता है। जैसे जैसे वृद्धि होती है एक उपरि प्रदेश (upper region) स्पष्ट हो जाता है। अन्त में उपरि भागसे अवर (lower) भाग में अधिक वृद्धि होने के कारण एक समान फलन-काय का विकासन होता है। इसे पाइलियस (Pileus) कहते हैं और इसके वृन्त सदृश्य (stalk like) भाग को स्टाइप (stipe) कहते हैं। पाइलियस के अधःपक्ष (under side) में पट सदृश्य (plate like) काय विकसित होते हैं जिन्हें गिल्स या लैमिली (Gills or lamellae) कहते हैं और इन्हीं के अन्दर प्रकणों का

विकासन होता है। ये प्रकण अर्थात् बीजाणु असंख्य होते हैं और गिल्स से पृथक होकर वायु में विचरते रहते हैं। धरती पर गिरने से उचित परिस्थिति में प्रकणों का उद्भेदन होता है जिससे नवीन छत्रों का विकासन होता है।

कवकानि, जिनके छत्र एक अंग हैं, सम्भवतः इतिहास पूर्व काल से ही खाए जाते हैं। भक्षणीय और विषैले कवकान का बेबीलोनिया, यूनान, और रोम निवासियों को पूर्णतयः पता था और इसके अतिरिक्त इनके अनेक निर्देश हमें प्रतिष्ठित (Classical) लेखों में मिलते हैं। मिश्र के प्राचीन लेखों में इनका उल्लेख और आस्मरकों (monuments) में चित्रण है। प्राचीन काल में रोम के राजाओं का एक विशेष शाही छत्र था जिसे वे बड़ी रुचि से खाते थे। इसका वैज्ञानिक नाम एमैनिटा जारिया (Amanita Caesarea) है और आजकल रोम निवासी इसे बोलिटस (Boletus) और फ्राँसीसी औरोंगे (Oronge) कहते हैं। यह कहा जाता है कि उस समय बड़े बड़े राजा महाराजा इनको बहुमूल्य पात्रों में स्वयं पकाते थे और इन पात्रों को बोलीटेरिया (Boletaria) कहते थे। यहाँ तक कि रोमनिवासी इनके पीछे बौरा से जाते थे। इनके महाराजा टीबैरियस ने एयसीलियस सैबिन्स के एक ऐसे वार्तालाप को, जिसमें बोलिटों आदि छत्रों को सब से उच्च स्थान दिया था, लिखने के लिए करीब दो हजार पौंड पारितोष दिया। आज कल का साधारण छत्र सैलिओटा कैमपेस्ट्रिस (Psalliota Campestris) भी रोमन निवासी खाते थे। भिन्न भिन्न राष्ट्र भक्षणीय छत्रों की ओर पृथक पृथक अधिमान (Preferences) और प्रतिकूलताएँ (Prejudices) रखते हैं। १६७० ई० में ही फ्रांसीसियों की 'छत्रों के लिए अत्याधिक लालसा' ('an inordinate appetite for mushrooms') एक फ्राँसीसी रोग समझा जाता था। फिर भी फ्राँस में १८७६ के पूर्व केवल साधारण छत्र (Common mushroom, Psalliofa campstris) ही बाजारों में खुल कर बिक सकता था यद्यपि अन्य प्रकार के छत्र भी लोग चोरी छिपे खाते रहे होंगे। अब तो वहाँ अनेक प्रकार के कवकानि बिना किसी रोक टोक खा सकते हैं। साधारण छत्रों के अतिरिक्त सेप (cepe) और औरोंगे (Oronge) नाम के छत्र, जिनके वैज्ञानिक नाम क्रमशः बोलिरस एडूलिस (Bolerus Edulis) और एमैनिटा जारिया (Amanita caesarea) हैं, सुखाए और परीक्षण (Preserve) किए जाते हैं। इन्हीं से फ्राँस को करीब २५०,००० फ्रैंक की प्राप्ति होती है। फ्रांस का शायद ही कोई जंगल के निकट का नगर हो जो आज कल वन्य छत्रों का केन्द्र न हो। इन वन्य छत्रों के अतिरिक्त पेरिस में छत्र-उगाने का एक बड़ा भारी उद्योग है। पेरिस के घेरे (Siege of Paris) के समय जब तरकारियों का अभाव था छत्रों ने ही फ्रांसीसीयों की सहायता की। जर्मनी में भी युद्ध के समय खाद्य की कमी अन्य खाद्य पदार्थों को छत्रों द्वारा आपूरण (supplement) या प्रतिस्थापन (replace) कर पूरी की गई। डुगर का कहना है कि म्युनिक (Munich—Germany) वन्य-छत्रों का संसार भर से सबसे बड़ा बाजार है। जापान को लोग "छत्रों की भूमि" (Land of Mushrooms) कहते थे। उसकी नम जलवायु और बड़े बड़े जंगल छत्रों की उत्पत्ति के लिए बड़ी अनुकूल परिस्थियां हैं। कहा जाता है कि वहां छत्रों की उत्पत्ति ५००० टन से भी अधिक है। करीब एक दर्जन जातियों में से "शी-टाके" ("Shii-Take")—(Armillaria Shiitake) और 'माटसू-टाके" ("matsu-take')—(Armillaria edodes) अधिक महत्वपूर्ण हैं। चैन्ट्रीले (Chanterelle, Cantharellus cibarius) छत्र भी जापान में पाया जाता है। यही छत्र ब्रिटेन में भी बड़ी रुचि से खाया जाता है। जापानी इसे "शिबा-टेक (Shiba-take) कहते हैं। १७५५ में बट्टारा (Battarra) ने अपनी पुस्तक में लिखा था कि यदि यह छत्र मृत मनुष्य के शुष्क मुख में रख दिया जावे तो वह फिर से जीवित हो जावेगा पर यह कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है। इनके अतिरिक्त जापान में सामान्य छत्र (Common Mushroom) और औइस्टर छत्र (Pleurotus ostreatus) भी खाये जाते हैं जिन्हें वे क्रमशः 'हारा-टेक' (hara-take) और "हीरा-टेक"

(hira-take) कहते हैं। भारतवर्ष में अधिकांश लोग छत्रों का सेवन करना पसन्द नहीं करते। इसका मुख्य कारण उनका गली-सड़ी चीजों, घोड़े की लीद आदि पर पैदा होना ही है। अधिकतर यहाँ की अनार्य जातियाँ इनको बड़ी रुचि से खाती हैं। यहाँ साधारण छत्र (Common mushroom – Psalliota campestris) बहुतायत से पाया जाता है। पंजाब और अफगानिस्तान में ये वर्षा के पश्चात् चरों Pastures) में विशेषतः पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वर्ग के छत्र भी यहाँ खाये जाते हैं पर इनके सम्बन्ध में साहित्य के अभाव के कारण कुछ लिखना सम्भव नहीं है। तिब्बत में 'ओंगलाऊ' ('onglau') या "यूँगल टिकामो" (Yungla tekamo) नामक बड़े छत्र अधिक पाये जाते हैं जिन्हें वैज्ञानिक कौर्टीनेरियस इमोडेन्सिस (Cortinarius emodensis) कहते हैं। वहाँ के निवासियों का यह मुँहलगा खाद्यपदार्थ है।

कुछ लोग अधिकांश गुच्छी (Morel, Morchella esculenta) को भी छत्रों के साथ ही सम्मिलित कर लेते हैं पर यह उनकी वैज्ञानिक अज्ञानता ही है। वैज्ञानिक रूप से गुच्छी कवकानों (Fungi) के एस्कोमाइसीट (Ascomycete) वर्ग में सम्मिलित की जाती है पर छत्र बेसीडियोमाइसीट (Basidiomycete) वर्ग के कवकानि हैं।

छत्रों के पौष्टिक गुण पर बहुत पहले से ही विचार किया जा रहा है। अनेक रसायनिक परीक्षणों द्वारा यह स्थापित हो गया है कि इनमें माध्यतः (on an average) ८० से ९०% जल, २ से ५% नाइट्रोजन, ८% कार्बोहाइड्रेट, १% स्नेह (Fat) और १३% खनिज पदार्थ होते हैं। इस तरह रसायनिक रूप से उपयोगिता में अभिनव कवकानि (Fresh fungi) अधिकतर तरकारियों के समान होते हैं। भारतवर्ष में कुछ भक्ष्यणीय छत्रों के रसायनिक विश्लेषण (chemical analysis) द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि हमारे छत्रों में प्रोटीन (Proteins) और स्नेह (fats) की मात्रा ब्रिटेन और अमेरिका के छत्रों से अधिक होती है। छत्रों में विटामिन भी पर्याप्त मात्रा में रहती है। विटामिन ए (A), बी (B) और सी (C) तो अधिकतर नहीं मिलती पर विटामिन डी (D) पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहती है। इस विटामिन की छत्रों में उपस्थिति बड़े महत्व की है क्योंकि अन्य शाकाहारी खाद्य पदार्थों में यह यदि उपस्थित भी होती है तो केवल न्यून मात्रा में ही।

जहाँ कुछ छत्र भक्षणीय होते हैं वहाँ अन्य अत्यन्त विषैले भी होते हैं। अँग्रेजी में मशरूम शब्द साधारणतः सभी प्रकार के छत्रों के लिए प्रयोग होता है पर कुछ लोग अखाद्य छत्रों को टोड्स्टूल कहते हैं और भक्षणीय छत्रों को बहुधा एडबिल मशरूम कहते हैं। बिना पहचाने छत्रों को खाने से विषैले छत्रों को भी खाने की सम्भावना रहती है। यद्यपि बहुत पहले से ही लोगों ने खाद्य छत्रों को अखाद्य छत्रों से पृथक करने की रीतियाँ बताई थीं पर वे सब ही अविश्वासनीय हैं। वास्तव में छत्रों को भिन्नित करने की केवल एक ही सच्ची रीति है। वह है भिन्न प्रकार के छत्रों को उसी प्रकार निश्चित रूप से पहचानना जैसे हम गाजर, मूली, चुकन्दर आदि को पहचानते हैं; और जब तक पूर्णतः निश्चित न हो जाय किसी भी प्रकार के छत्र को खाद्य छत्रों की गिनती में न लायें। उचित तो यही होगा कि उन खाद्य छत्रों को जो विषैले छत्रों से बहुत कुछ मिलते जुलते हों उन्हें छोड़ ही दिया जाय क्योंकि साधारण मनुष्य बिना विशारदों (experts) की मदद के उनको भिन्नित नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक रूप से सभी ऐसे छत्रों को जो रंग बदलने और सड़ने लगे हों त्याग देना चाहिए क्योंकि ऐसी अवस्था के मांस और मछलियों की तरह इनमें भी विष (toxin) पैदा होने लगता है।

भक्षणीय छत्र को उसके विशिष्ट लक्षणों द्वारा पहचानने के पश्चात कृषि-करण (cultivate) भी किया जाता है। यद्यपि छत्रों की कई जातियाँ भक्षणीय होती हैं पर प्रायः साधारण छत्र (Common Mushroom—Psalliota campestris) ही अधिकतर कृषि-करण (cultivate) किया जाता है और और अब इतना अधिक कृष्य किया जा रहा है कि अनेक भिन्न देशों के लोगों का इससे निर्वाह होता है। कृषि कला फ्रांस में, पेरिस के समीप, प्रथम बार १७०७ के निकट उत्पन्न हुई।

केवल एक ठण्डा बन्द स्थान या किसी बेकार मकान का खाली कमरा, जिसमें थोड़ी वायु और मन्द प्रकाश जा सके, ही छत्रों के कर्षण (cultivation) के लिए उचित होता है। ऐसे स्थान पर छत्रों की शय्या (bed) प्रायः घोड़े की लीद और गाय के गोबर को मिश्रित कर ही बनायी जाती है। इस शय्या के ऊपर भक्षणीय छत्र के जाल (Spawn) को बो (inoculate) दिया जाता है। छत्रों को इस प्रकार कृषि-करण (Cultivate) करने से प्रथम तो विषैले छत्रों से धोका होने की सम्भावना नहीं रहती और द्वितीय यह कि इनकी खेती प्राकृति (Nature) के ऊपर ही निर्भर नहीं रहती पर उनका उत्पन्न होना निश्चय रहता है। छत्रों को इस प्रकार वर्ष भर उत्पन्न किया जा सकता है यदि हम उनके विकासन के लिए उचित ताप (Temperature) को संधारण (maintain) कर सकें। आजकल केवल योरप और अमेरिका में ही इनको बड़े माप पर कृषि-करण किया जाता है अमेरिका के अतिमात्र (Enormous) छत्र उद्योग (Mushroom-industry) की वृद्धि १९०५ से हुई। जापान में 'शिटाके (Shitake) को २००० वर्ष से बलूत (Oak) और चेस्टनट (Chestnut) के कुँदे के सूराखों में कृष्य किया जाता है। दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में छत्रों का नियमित रूप से कर्षण (Cultivation) नहीं होता।

छत्रों से भिन्न प्रकार की सुस्वादु खाने (dishes) तैयार किए जा सकती हैं और भिन्न पुस्तकों में इनके लिए भिन्न नुसखे दिये गये हैं जिनमें से कुछ ये है। उबले हुए भेड़ के मास के साथ छत्र, छत्रों से भरे हुए टमाटर, छत्र पाई (Mushroon Pie), टोस्ट के साथ तले हुए छत्र, छत्रों का अचार, आदि।

क्या ही अच्छा हो यदि भारतवर्ष में भी छत्रों को कृषिकरण करने का उचित प्रबन्ध किया जाय और यहां के सामान्य निवासियों में इनके प्रति जो घृणा की भावना भर गई है उसे दूर किया जावे जिससे ये रोचक पौधे भी यहां के निवासियों के भोजन का एक अंग बन सकें। हमारे देश की खाद्य समस्या किसी से छिपी नहीं है। जहां हम अनाज और तरकारियों को अधिक से अधिक मात्रा में उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं वहां हमारे लिए अन्य खाद्य पदार्थों को छत्रों ऐसे उपयोगी पौधों से आपूरण (Supplement) या प्रतिस्थापन (Replace) करना उचित ही है।

—:o:—

खेती के लिए हाथी

उत्तर प्रदेश में हाथियों की सहायता से हल जोतने का जो प्रयोग किया जा रहा है, उसमें यदि सफलता मिली तो निश्चय ही भारतीय किसान की एक बहुत बड़ी परेशानी दूर हो जायगी और उसे भारी भरकम ट्रैक्टर या उसके पुर्जों के लिये चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

साधारणतः हाथी का मूल्य लगभग ४,००० रु० से ६,००० रु० तक होता है और लम्बी उम्र के कारण खेती के कामों में कम के कम ३० साल तक जुटा रह सकता है। मशीनों या औजारों की तरह उसका मूल्य-ह्रास नहीं होता।

यह सुझाव दिया गया है कि हल जोतने के कार्य में एक हाथी एक दिन में छः या आठ घंटे, एक महीने में बीस दिन और एक साल में आठ महीने लगाया जा सकता है। खाली समय में हाथी यातायात का कामकर सकता है।

हाथी की देखभाल का खर्च बहुत अधिक नहीं माना जाता। काम करने वाले एक हाथी की रोज की खुराक लगभग दस मन गन्ना, आठ पौंड आटा और आधा पौंड घी होती है। यह भी कहा गया है कि केवल १०० एकड़ या अधिक क्षेत्रफल के फार्मों में ही हाथी का उपयोग लाभदायक हो सकता है, इसलिये यह उचित ही होगा कि कुल की एक-दो प्रतिशत भूमि में केवल हाथी के लिये चारा आदि पैदा किया जाय।

योजना को आगे बढ़ाने वालों का विचार है कि खेती से संबंधित कार्यों में हाथी के लाभपूर्ण उपयोग की बहुत सम्भावनायें हैं। उनको यह भी आशा है कि साल में लगभग २०० हाथी पकड़ कर पालतू बनाये जा सकेंगे।

संतुलित-आहार

श्री ब्रजभूषण पाण्डेय, केमिकल इंजीनियरिंग, का० वि० वि०

मनुष्य शरीर के सुचारू-रूप से विकास-वर्धन एंव स्वस्थ रखने के लिये संतुलित भोजन का बहुत बड़ा महत्व है। शरीर की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं के लिये विभिन्न प्रकार के द्रव्यों की आवश्यकता होती है। उदाहरण स्वरूप हड्डियों की वृद्धि के कैलशियम (ca) मैगनीशियम (magnesium) फासफोरस (Phosphorus) एवं लोहे के यौगिक तथा क्षारों की आवश्यकता होती है। माँस वृद्धि के लिये प्रोटीन तथा विटामीन की आवश्यकता होती है। अतएव हमारे भोजन में विभिन्न तत्वों का उचित अनुपात में होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे हम अपने शरीर एवं मस्तिष्क के लिये उचित शक्ति प्राप्त कर सकें। निम्नतालिका में संतुलित भोजन के लिये आवश्यक पदार्थों की मात्रा दी हुई है :—

प्रोटीन ७५ से ८५ ग्राम। कारबोहाइड्रेट्स ४५० से ५५० ग्राम, । कैलशियम .४ से .८ ग्राम

चरबी (Fats) ५५" ६५ " । लोहा ·०१० से ·०१२ ग्राम

विटामिन	(A) ए	१५०० से ५००० तक	(अन्तर्राष्ट्रीय इकाई)
विटामिन	(B) बी	३०० ,, ५०० तक	,, ,,
विटामिन	(D) डी	४०० ,, ८०० तक	,, ,,
विटामिन	(C) सी	·०३ से ·०४ ग्राम।	

[४५३·६ ग्राम = १ पौंड = १६ औंस]

प्रतिदिन कार्य के लिये आवश्यक शक्ति—२६०० से ३००० केलारी ताप

उपरोक्त तालिका एक औसत श्रेणी के मनुष्य के लिये है परन्तु अवस्था, कार्य एवं व्यक्तिगत कारणों के कारण इसमें उचित परिवर्तन भी किया जा सकता है।

इस देश में धनी, गरीब, साधन-युक्त एवं साधन-विहीन सभी लोगों का भोजन बहुत कुछ असंतुलित है। भोजन के महत्व को न जानने का कारण यह है कि साधन-सम्पन्न व्यक्ति संतुलित भोजन के महत्व को न जानने के कारण दिन में कई बार जो कुछ भी मिलता गया खाते जाते हैं एवं गरीब जनता के सामने संतुलित भोजन के प्रति अज्ञान एवं उसकी उपलब्धता ये दोनों बाधाएँ हैं। वास्तव में हम लोगों ने कभी प्रयत्न ही नहीं किया जिससे इसकी वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कर सकें। जिस धारा में जीवन बहता है उसी प्रवाह में हम प्रवाहित होते जाते हैं। यदि कुछ वर्षों तक मनुष्य भोजन में आवश्यक वस्तुओं को उचित स्थान दे तो वह स्वयं उनका आदी हो जायेगा।

निम्न तालिका में साधारण मनुष्य के लिये प्रतिदिन की आवश्यक भोजन-सामग्री एवं उससे प्राप्त शक्ति का विवरण दिया गया है :—

		शाकाहारी	मांसाहारी	कलारी शक्ति
अन्न (चावल एवं आटा)	१४ औंस	१४०० (कलारी शक्ति)	१४ औंस—	१४००
दाल —	३ ,,	३०० (,, ,,)	२ ,,—	२००
दूध —	१० ,,	२०० (,, ,,)	६ ,,—	१२०
बिना पत्ती की तरकारियाँ—	६ ,, }	६० (,, ,,)	६ } ,,—	६०
पत्तीदार तरकारियाँ—	४ ,, }		४ } ,,	

	शाकाहारी		मांसाहारी	कलारी शक्ति
फल —	२ औंस	२६ (कलारी शक्ति)	२ ,,—	२६
घी एवं तेल —	२ ,,	५१० (,, ,,)	२ ,,—	५१०
चीनी या गुड़ —	२ ,,	२१० (,, ,,)	२ ,,—	२२०
मांस या मछली..................			२ ,,—	१६५
अण्डा..............			१ ,,—	४२
योग	४३ ,,	२७१० (,, ,,)	४० ,,	२७४३

इसमें आवश्यकता एवं परिस्थिति अनुसार थोड़े बहुत परिवर्तन से भी मनुष्य अपने भोजन को संतुलित रख सकता है। ध्यान देने से ज्ञात होगा कि भोजन में दूध (घी मक्खन या तेल) (Fat) फल एवं तरकारियों का होना आवश्यक है।

यदि मनुष्य भिन्न-भिन्न पदार्थों से प्राप्त शक्ति के विषय में जानकारी रक्खे तो अपनी शक्ति एवं परिस्थिति अनुसार इस समय में भी बिना अधिक मूल्य लगाये संतुलित भोजन का बड़ी सरलता से प्रबंध कर सकता है।

दूधः—यह मनुष्य के लिये प्रकृति की एक महान देन है। इसके विश्लेषण से ज्ञात होता है कि यह एक सुलभ पाच्य है एवं इसमें सभी आवश्यक विटामिन द्रव्य वर्तमान हैं। इससे मनुष्य अपने शरीर को सुगठित, स्वस्थ, सुन्दर, एवं शक्तिवान बना सकता है। दूध का भोजन में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है और विशेषतः शाकाहारियों के लिये जिन्हें जीव प्रोटीन का केवल यही एक साधन है, नित्यशः इसका उपयोग करना चाहिये।

चरबीः—इसके लिये घी तथा मक्खन सर्वोत्तम पदार्थ हैं, परन्तु वर्तमान समय में इनके अभाव में मूंगफली नारियल एवं सरसों के तेल का भी उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि इन पदार्थों में घी के बहुत से तत्व वर्तमान हैं और ये भी समान शक्तिदायक हैं।

तरकारी एवं फलः—इनसे हमें प्रोटीन, क्षार, एवं रेशे प्राप्त होते हैं। पत्तीदार तरकारियों में विटामिन (A) ए और कैलशियम की मात्रा अधिक रहती है इसीलिये दिन में इन्हें तीन चार बार खाना चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि बहुत मँहगे फलों एवं तरकारियों का ही उपयोग किया जाय। आंवला, नींबू, आम, केला, गाजर, मूली, नारंगी, संतरा, बेल, पालक, बथुआ, लौकी, आलू, टमाटर, परवल, तोरई आदि सस्ते एवं शक्तिदायक फल तरकारियाँ हैं। यदि फल या तरकारियां उपलब्ध न हो सकें तो अंकुरित चना, मटर या मूंग उपयोग में लायी जा सकती हैं। अंकुरित करने के लिये चने या मटर को २४ घंटे पहले पानी में भिगो दिया जाय। पुनः एक भींगे तौलिये या कपड़े में बांधकर २४ घंटे पड़े रहने दीजिये। पुनः ये उपयोग में लाये जा सकते हैं।

पहले मनुष्य बिना पके भोजन करता था परन्तु अब हम पके हुये भोजन के आदी हो गये हैं और हमारी पाचन शक्ति निर्बल पड़ गयी है, नहीं तो भोजन बनाने में बहुत से आवश्यक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। हमें अपने भोजन में बिना पकाये हुये पदार्थों को भी स्थान देना चाहिये।

हम भोजन से अधिक लाभ उठा सकें तथा पूर्ण शक्ति प्राप्त कर सकें, इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारा भोजन ठीक तरीके से पकाया जाय। भोजन उचित रीति से न पकाने से उसके बहुत से तत्व नष्ट हो जाते हैं और हमें उससे पूरा लाभ नहीं मिलता। बच्चों के उचित वर्धन के लिये उनके भोजन में दूध एवं फलों की विशेषता रखनी चाहिये क्योंकि बड़ों के लिये यह कमी अन्न एवं कार्बोहाइड्रेट से भी बहुत कुछ अंशों में पूरी की जा सकती है।

यदि हम उचित भोजन के अभ्यस्त हो जायें तो अपना ही नहीं परन्तु देश का भी सब से बड़ा उपकार होगा। क्योंकि देश में अन्न की उतनी कमी नहीं है जितने इसके सुचारु वितरण एवं उचित उपयोग की कमी है। इससे हम सुन्दर, स्वस्थ बलिष्ठ एवं बुद्धिमान नागरिक उत्पन्न कर देश की सच्ची सेवा कर सकेंगे।

विज्ञान-समाचार

कैलिफोर्निया की नवीन सिंचाई-विधियाँ

अमेरिकी गृह-विभाग कैलिफोर्निया की सूखी और बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए एक अनूठी योजना बना रहा है। भूमिसुधार की यह पद्धति मध्यपूर्व, भारत तथा अफ्रीका की भूमि सुधार-समस्याओं को हल करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकेगी।

इस योजना का उद्देश्य लौस एन्जेलेस के उत्तर-पश्चिम में सेन्टा मेरिया के अंचल में रहने वाले कृषकों के लिए बाढ़ों की रोकथाम करना तथा निरन्तर घटती रहने वाली भूमिगत जलराशि को फिर से पूरा करना है। गृह-विभाग के उप-सचिव बरनौन डी० नार्थरप ने अभी हाल में इस योजना की स्वीकृति की घोषणा की है।

इस योजना द्वारा एक बांध तथा जलाशय की व्यवस्था की गई है और इसके अलावा अब यहाँ भूमि में रिसने के सिद्धान्त से लाभ उठाया जायेगा। इस से पूर्व अमेरिका में इस सिद्धान्त से कभी लाभ नहीं उठाया गया। जब किसी क्षेत्र में वर्षा होती है तो उसका अधिकांश जल नदी-नालों में बह जाता है, किन्तु उसमें से कुछ जल भूमि में रिस कर धीरे-धीरे जल की सतह अथवा प्राकृतिक भूमिगत जलभण्डार तक पहुँच जाता है।

इस समय सेन्टा मेरिया के अंचल में खेतों की सिंचाई तथा कारखानों और घरेलू उपयोग में आने वाला सारा पानी भूमिगत जलभण्डारों ही से प्राप्त किया जाता है। किन्तु जितना पानी पम्पों द्वारा भूमि में से निकाला जाता है उतना पानी रिस कर भूमि के नीचे पहुँचता नहीं है। फलस्वरूप वहाँ पानी की सतह उतरती जा रही है और इससे यह आशंका हो सकती है कि किसी दिन भूमिगत जलभण्डार सूख न जाये।

वर्षा की ऋतु में प्रस्तावित जलाशय में फालतू जल को जमा किया जायेगा और ग्रीष्म के शुष्क महीनों में इस पानी को राज बहे में छोड़ा जायेगा। कुछ पानी को भूमि अपने अन्दर सोख लेगी, जिससे भूमिगत जलभण्डार की सतह पुनः ऊपर उठने में मदद मिलेगी।

भूमि-सुधार ब्यूरो इस कार्य के लिये २, ४५, ७५, ००० डालर की निश्चित राशि में से आधे से अधिक राशि से १८४ फुट का ऊँचा एक बाँध तथा १, १४, ००० एकड़ फुट की क्षमता रखने वाला एक जलाशय तैयार करेगा।

यह बाँध "वाकेरो बाँध" के नाम से पुकारा जायेगा और इसे सुयामा तथा सेन्टा मेरिया से संगम से पूर्व बनाया जायेगा। शेष राशि से अमेरिकी सेना के इंजीनियर राजबहे बना कर सेन्टा मेरिया की घाटी में नहरों का सुधार करेंगे।

इस योजना से २६ हजार लोगों के लिए जल की व्यवस्था करने के अलावा नियमित रूप से आने वाली बाढ़ों से भी उन की रक्षा की जायेगी। रेकार्ड से पता चलता है कि ये बाढ़ें १८६१ से सेन्टा मेरिया के क्षेत्र को निरन्तर भारी हानि पहुँचाती रही हैं।

योजना का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व काँग्रेस को आवश्यक धनराशि की व्यवस्था करके नये निर्माण-कार्य की स्वीकृति प्रदान करनी होगी।

मछलियों को मारने वाले पौधे

कटक के केन्द्रीय अन्तर्देशीय मछली-पालन गवेषणा उप-केन्द्र में इन दिनों मछलियों के जीवन से संबंधित ऐसी अनेक बातों की छानबीन की जा रही है, जिनकी जानकारी देश के भीतरी जलाशयों में मछली पालने के व्यवसाय के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस छानबीन के परिणामस्वरूप मालूम किया गया है कि नदियों के पानी में पैदा होने वाली छोटी-छोटी मछलियां शुरू-शुरू में केवल पशु-खाद्य यानी छोटे-मोटे जंतुओं का आहार पसंद करती हैं,

किन्तु कुछ दिनों के बाद इनकी यह आदत बदल जाती है और तब ये जंतुओं तथा वनस्पति दोनों पर अपना जीवन निर्वाह करने लगती हैं।

मछली-पालन

कटक गवेषणा—केन्द्र में मछलियाँ पालने के लिए कुल ७२ तालाब हैं। गर्मी का मौसम खत्म होनेपर इन तालाबों का पानी पम्पों के जरिये खींचकर बाहर निकाल दिया जाता है, और उनके तले साफ कर दिये जाते हैं। इसके बाद इन तालाबों के तलों में गोबर और खाद फैलाकर उन्हें फिर पानी से भर दिया जाता है। वर्षा ऋतु के आरम्भ में, जब मछलियों के अंडे-बच्चे देने का मौसम आता है, तो महानदी की पास वाली नहर से इन छोटे-छोटे अंडों-बच्चों को पकड़ कर इन तालाबों में डाल दिया जाता है तालाबों के तलों में जो गोबर व खाद पहले से फैलायी गयी थी, उससे छोटे-मोटे जंतु और वनस्पति, दोनों ही काफी मात्रा में पैदा हो जाते हैं, जिसे खाकर मछलियों के ये छोटे-छोटे बच्चे बड़े होने लगते हैं। इस प्रकार पलकर जब मछलियां बड़ी हो जाती हैं, तो उन्हें राज्य के मछली-पालन विभाग के जरिये उन लोगों में बांटा जाता है, जो मछलियों के फारम चलाते हैं। केन्द्र के तालाबों में,आवश्यकता होने पर अतिरिक्त खाद्य भी डाला जाता है, जो सरसों की खली का होता है।

गवेषणा केन्द्र में मछलियों से संबंधित जिन अनेक बातों की छानबीन की जाती है, उनमें मछलियों की मृत्यु-संख्या, उसके कारण तथा उनके निरोध के भी विषय हैं। गवेषणा कार्य शुरू होनेपर वह मृत्यु-संख्या बहुत ऊँची, ९५ प्रतिशत के बराबर थी, पर अब ५० प्रतिशत हो गयी है। केन्द्र में विशेषतः तालाबी मछलियों जैसे कातला, रोहूँ, म्रिगाल, कल्हास, आदि के संबंध में ही छानबीन होती है, और इनके संबंध में व्यापक तथा विविध प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं। सीमेंट के बने हौजों में इन्हें रखकर इनकी आदतों का पता लगाया जाता रहता है।

उन पौधों के बारे में भी काफी छानबीन हुई है, जिन्हें मछलियाँ अपनी खूराक के तौर पर इस्तेमाल करती हैं। पता चला है कि कुछ छोटे-छोटे पौधे मछलियों के खाद्य के लिए बड़े उपयोगी होते हैं, जबकि कुछ अन्य बड़े पौधे उनके लिए खतरनाक होते हैं अथवा उनकी बाढ़ में रुकावट डालते हैं।

'डेरिस चूर्ण'

कटक के इस केन्द्र में काम करने वाले गवेषणाकर्ताओं ने 'डेरिस चूर्ण' के एक नये उपयोग का पता लगाया है। अब तक यह चूर्ण मछलियां मारने के लिए काम में आता रहा है, पर अब इसकी सहायता से जीवित रूप में मछलियां पकड़ी जा सकेंगी। यह चूर्ण एक पौधे की जड़से प्राप्त किया जाता है।

काफी मात्रा में इसे पानी में घोलकर तालाब में छिड़क देने से तालाब की सारी मछलियाँ मर जाती हैं। किन्तु इसी चूर्ण को थोड़ी मात्रा में पानी में घोल कर, उसे तालाब में छिड़कने और फिर तालाब को मथने से उस तालाब की मछलियाँ कुछ बेहोश होकर ऊपर उतराने लगती हैं। इस प्रकार ये मछलियाँ जालों के जरिये पकड़ी जा सकती हैं, और ताजे पानी में डाल कर उन्हें फिर पूरी तरह से होश में लाया जा सकता है।

इसी प्रकार, केंद्र में अन्य प्रयोगों द्वारा मछली-पालन व्यवसाय के लिए उपयोगी अनेक बातों का पता लगाया जा रहा है, और यह केन्द्र उक्त व्यवसाय की उन्नति के लिए काफी काम कर रहा है। अन्य क्षेत्रों में विज्ञान से जो सहायता ली जा रही है, वही सहायता मछली व्यवसाय के लिए भी विज्ञान हमें प्रदान कर रहा है।

'सिगरेट'

भारत वर्ष पर मुगल-साम्राज्य का शासन पूर्ण रूप से हो चुका था। इस शासन-काल तक तम्बाकू हुक्के और चिलम द्वारा पी जाती थी; लेकिन अंग्रेजी शासन-काल में तम्बाकू का अधिक प्रचार हुआ। क्यों हुआ? इसलिये हुआ कि इस शासन-काल में तम्बाकू पीने के लिये हुक्के और चिलम का झंझट समाप्त हो चुका था। अब तम्बाकू अपने

परिवर्तित रूप सिगरेट में आने लगी थी। इस तम्बाकू को अँग्रेजों ने सुलभ ढंग से पीने के लिये सिगरेट का रूप दिया। तम्बाकू जो गाँव वाले पीते हैं वह पत्ती को गीली करके बनाया जाता है और जो सिगरेट होती है उसमें सूखी ही पत्ती होती है। अब आप समझ गये होंगे कि सिगरेट तम्बाकू का ही परिवर्तित रूप है।

संसार में इसका प्रादुर्भाव १४९२ ई० के पूर्व हो चुका था क्योंकि कोलम्बस ने 'क्यूबा' के टापू पर मक्का के पत्तों में सूखे तम्बाकू को लपेट कर लोगों को पीते हुये देखा था। यह सब से पहले अमरीका में देखा गया था। मेयर साहब ने बनस्पति के भौगोलिक आधार पर कहा कि यह चीन में अधिक प्राचीन समय से उपयोग की वस्तु रही है; लेकिन अधिक छानबीन करने पर पता चला कि तम्बाकू अमरीका की देन है।

अब इसका संसार में किस प्रकार प्रसार होता है इसे पढ़िये। अमरीका के पश्चात सर्वप्रथम तम्बाकू का प्रवेश यूरोप महाद्वीप के स्पेन देश में शौकिया होता है। वहाँ के एक सज्जन (गौनटेलोन हरनन्देज) ने शौकिया इसे अपने खेत में बोया। स्पेन के बाद इंग्लैण्ड का क्रम आता है। यहाँ महारानी एलिजाबेथ (१५५८-१६०३) को सर वाल्टर रेले साहब ने सर्व प्रथम इसे अच्छी वस्तु समझ कर भेंट किया था; लेकिन दो ही तीन घूँट पीने में महारानी के पेट में दर्द होने लगा था। भारतवर्ष में तम्बाकू का प्रचार अकबर (१५४२,१६०५) के शासन-काल में हुआ। एलिजाबेथ ने अकबर को भेंट स्वरूप तम्बाकू भेजा था। इस प्रकार इसका प्रचार होता गया और आज यहाँ तक पहुँच गया है कि दस वर्ष तक के बच्चे भी सिगरेट पीने में जरा भी नहीं हिचकिचाते।

उत्तरी अमरीका में तम्बाकू का इतना महत्व बढ़ चुका था कि सन् १६२० में वहाँ एक क्वाँरी कन्या की शादी १०० पौण्ड तम्बाकू के बदले होने लगी थी। एक वर्ष के बाद अर्थात १६२१ ई० में यह कार्य १५० पौण्ड तम्बाकू पर होने लगा। इस प्रकार तम्बाकू का प्रचार बढ़ता ही गया।

तम्बाकू में अत्यधिक जहरीला पदार्थ निकोटीन होता है निकोटीन एक विष है इसका प्रमाण डा० ब्रोडे के प्रयोग द्वारा लीजिये। ब्रोडे साहब ने बिल्ली की जीभ पर एक बूँद निकोटीन रक्खा था। बिल्ली पाँच मिनट में ही मर गई थी। निकोटीन के अतिरिक्त तम्बाकू में अनेक सूक्ष्म विष रहते हैं। जैसेः—प्रुसिक एसिक, फरफुरल और कोलिडीन इत्यादि। इस प्रकार आपने देखा कि तम्बाकू जहरीले पदार्थों का कोश है। प्रुसिक एसिड (Prussic Acid) या हाइड्रोकेनिक एसिड (Hydrocyanic Acid) यह अम्ल Acid प्रयोग शाला में पोटैशियम सायनाइड (Potassium Cyanide) और गन्धकाम्ल (Sulphuric Acid) द्वारा तैयार किया जाता है। गन्धकाम्ल के गुण से तो पाठक गण परिचित होंगे ही और सम्भवतः आप जानने होंगे कि पोटैशियन सायनाइड इतना जहरीला है कि इसके स्वाद का पता अभी तक नहीं लग सका। जीभ पर रखते ही आदमी को संकेत करने तक का समय नहीं मिलता और वह मर जाता है। कुछ ही वर्ष हुये कलकत्ता के श्री प्रभात कुमार मित्र ने इसके स्वाद का पता लगाने के लिये अपने प्राण को गवाँ दिया। प्रुसिड एसिड ज्ञान तन्तुओं को मलीन कर देता है।

फरफुरलः—यह मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं को ढीला कर देता है। कोलिडीनः—यह जहरीला क्षार है। इसके कारण स्नायु दुर्बल हो जाते हैं और चक्कर आने की बिमारी हो जाती है।

हाल ही में डाक्टरों ने कैंसर ऐसे भयानक रोग पर अनुसन्धान करके देखा कि सिगरेट पीने वालों के फेफड़ों में कैंसर हो जाता है। उन्होंने यह भी निकाला है कि जो आदमी साठ सिगरेट नित्य पियेगा वह एक महीने में ही कैंसर से आक्रान्त हो जायेगा। अनुसन्धान के फलस्वरूप यह भी निकला है कि मुँह में तम्बाकू रखकर आनन्द लेने वालों के मुँह में गाल के पीछे कैंसर हो जाता है।

इतना पढ़ने से आपके मस्तिष्क में यह विचार उठ सकता है कि इतनी विषाक्त वस्तुओं के रहने पर भी इसे पीने पर आदमी क्यों नहीं मरता? इसका उत्तर यही है कि केवल ४% ही विषाक्त वस्तुयें मनुष्य के शरीर में प्रविष्ठ हो पाती हैं। धीरे-धीरे इसे सहने का अभ्यास भी शरीर को हो जाता है।

—कृष्ण लाल

साँपों की दुनियाँ

लेखक—श्री० रमेश वेदी आयुर्वेदालंकार

"साँपों की दुनियाँ" श्री रामेश वेदी द्वारा रचित सर्पविज्ञान सम्बन्धी एक मौलिक रचना है। सापों का रहन-सहन, भोजन आदतें, आकस्मिक आक्रमण से बचाव सर्प-विष के प्रकार, उसका मनुष्य एवं अन्य प्राणियों पर प्रभाव, सर्पविष-चिकित्सा आदि विषयों पर लेखक ने अभी तक किये गये प्रयोगों एवं अनुसंधानों का सरल भाषा में सारांश दिया है।

भारतवर्ष में बहुतायत से पाये जाने वाले विषहीन एवं विषैले सापों का विस्तृत एवं सचित्र वर्णन भी दिया है तथा प्रत्येक जाति के सांप की शरीर-रचना, उसकी आदतें, रहन-सहन, भोजन, मनोविज्ञान इत्यादि का सुन्दर चित्र खींचा है। लेखक की भाषा रोचक है, और शैली सुन्दर। हमारे पूर्वजों का सर्प सम्बन्धी ज्ञान, प्राचीन संस्कृत साहित्य में विभिन्न जाति के सर्पों का उल्लेख, सर्पों का वर्गीकरण विषैले एवं निर्विष साँपों की पहिचान, साँपों के विष-दन्त एवं विष ग्रन्थियों की रचना, सर्प-विष का मनुष्य और दूसरे प्राणियों पर प्रभाव, सर्प-विष चिकित्सा और सापों की आर्थिक उपयोगिता इत्यादि पर लेखक ने विस्तृत प्रकाश डाला है।

"सापों की दुनियाँ" साँपों से सम्बन्धित वैज्ञानिक अनुसन्धान, अवैज्ञानिक किम्बदन्तियाँ एवं अन्ध विश्वास, प्राचीन साहित्य में सापों का उल्लेख एवं तत्सम्बन्धी ज्ञान का निचोड़ है।

मूल्य ४)

फसल के शत्रु

लेखक—श्री० शंकरराव जोशी

बहुत से कीट मानव-समाज का अहित करते हैं, कुछ कीट इन कीटों का ही संहार कर डालते हैं तथा कुछ कीट अन्य रूप से मनुष्य का हित करते हैं। सिद्धहस्त और अनुभवी लेखक ने इस पुस्तक में उन कीटों का वर्णन किया है जो फसलों को विशेष हानि पहुँचाते हैं। वैज्ञानिक कृषि तथा व्यापारिक प्रतियोगिता के इस युग में इन जंतुओं के करतब का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य ही है। फसलें बो लेना और प्रति एकड़ पैदावार बढ़ा लेना मात्र ही कृषि व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर लेना नहीं माना जा सकता। खेत में खड़ी फसलों और बगीचे के पौधों की शत्रु से रक्षा करना तथा गोदाम में रक्खी गई पैदावार को कीड़ों और रोगों से बचा लेना भी आवश्यक है।

इस पुस्तक में फसलों, लकड़ी, कोठरों में भरे नाज, साग, तरकारी आदि सभी वस्तुओं की इन शत्रुओं से सुलभ साधनों द्वारा प्रभावोत्पादक रूप से रक्षा पा लेने की विधियाँ तथा उन शत्रु रूपी कीटों तथा रोगों की पूरी पहचान भी दी गई है। डबल फुलसकेप सोलहपेजी आकार के लगभग ३५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ३॥)

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—*विज्ञान प्रवेशिका, भाग १*—विज्ञान की प्रारम्भिक बातों की उत्तम पुस्तक—ले० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम, एस, सी; ।=)

२—*चुम्बक*—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी; मू० ।।।=)

३—*मनोरंजन रसायन*—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी; २)

४—*सूर्य सिद्धान्त*—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सब से सुलभ उपाय—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; छः भाग मूल्य ८)। इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—*वैज्ञानिक परिमाण*—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; १)

६—*समीकरण मीमांसा*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—*निर्णायक (डिटमिनैंट्स)*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपालकृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी; ।।।)

८—*बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित*—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले०—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—*वर्षा और वनस्पति*—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—*सुवर्णकारी*—ले० श्री० गंगाशंकर पचौली; ।=)

११—*विज्ञान का रजत जयन्ती अंक*—विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का ईतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह १)

१२—*व्यङ्ग-चित्रण*—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम ए०; १७५ पृ , सैकड़ों चित्र, सजिल्द २)

१३—*मिट्टी के बरतन*—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द २) (अप्राप्य)

१४—*वायुमंडल*—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले०—डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द, २)

१५—*लकड़ी पर पालिश*—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का ब्योरेवार वर्णन। ले०-डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन-भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; ५) (अप्राप्य)

१६—*कलम पेवंद*—लेखक श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; २० चित्र; मालियों मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी, सजिल्द; २)

१७—*जिल्दसाजी*—इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम ए० सजिल्द, २)

१८—*तैरना*—तैरना सीखने की रीति अच्छी तरह समझाई गई है। ले०—डा० गोरखप्रसाद, मूल्य १)

१९—*सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग*—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जन्तुओं के विचित्र संसार, पेड़ों पौधों की अचरज-भरी दुनिया सूर्य, चन्द्र, और तारों की जीवन-कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। सजिल्द मूल्य ६) (अप्राप्य)

२०—*वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ*—ले०—डा० संतप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२१—*खाद्य और स्वास्थ्य*—ले०—डा०—ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२२—*फोटोग्राफी*—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), फोटोग्राफी सिद्धान्त और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, सजिल्द मूल्य ४)

२३—*फल संरक्षण*—फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार, चटनी, सिरका, आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी० कृषि-विशारद, सजिल्द मूल्य २।।)

२४—*शिशु पालन*—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई। गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल, शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार-विहार आदि का वैज्ञानिक विवेचन। मूल्य ४)

२५—*मधुमक्खी पालन*—द्वितीय संस्करण। ले०—पंडित दयाराम जुगड़ान; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकों या जन-साधारण को इस पुस्तक का अधिकाँश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा, मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। २८५ पृष्ठ; अनेक चित्र, सजिल्द; ३)

२६—*घरेलू डाक्टर*—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी, घोष, एम० बी० बी० एस, डी० टी० एम०, प्रोफेसर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। १५० चित्र, सजिल्द, ४)

२७—*उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर*—संपादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। मूल्य ३॥)

नवीन पुस्तकें

२८—*फसल के शत्रु*—लेखक श्री शंकर राव जोशी मू० ३॥)

२९—*साँपों की दुनिया*—ले० श्री रामेश वेदी मू० ४)

३०—*पोर्सलीन उद्योग*—ले० प्रो० हीरेन्द नाथ बोस मू० ॥)

३१—*राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ*—मू० २)

३२—*गर्भस्थ शिशु की कहानी*—ले० मारग्रेट शी गिल्बर्ट (अनु० प्रो० नरेन्द्र) मू० २॥)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:-

१—*साबुन विज्ञान*—विद्यार्थियों और व्यवसाइयों के लिये एक सरल और सुबोध पुस्तक, जिनमें साबुन तैयार करने की विभिन्न विधियाँ और नाना प्रकार के साबुन तैयार करने की रीतियां हैं, विवरण के साथ-साथ सैकड़ों के साथ-साथ अनुभूत और प्रमाणित नुसखे भी दिये गये हैं। लेखक श्री श्याम नारायण कपूर बी० एस-सी, ए० एच० बी० टी० आई०, फेलो, आयल टेकनोलोजिस्ट एसोसिएशन मूल्य ६)

२—*भारतीय वैज्ञानिक*—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियां—ले०—श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ६८० पृष्ठ, सजिल्द; मूल्य ३)

३—*वैक्युमब्रेक*—ले०—श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राईवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २)

४—*यांत्रिक चित्रकारी*—ले० ओंकारनाथ शर्मा, मूल्य २॥)

५—*विज्ञान के महारथी*—लेखक श्री जगपति चतुर्वेदी। संसार भर के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के जीवन व खोजपूर्ण कार्यों का विस्तृत वर्णन है। मूल्य २)

६—*पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ*—ले० श्री जगपति चतुर्वेदी। जितने प्रमुख भौगोलिक अन्वेषण हुए हैं उन सबका रोचक वर्णन है। मूल्य १॥)

७—*विज्ञान जगत की झाँकी*—ले० प्रो० नारायण सिंह परिहार। सामान्य ज्ञान तथा विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। मूल्य २)

८—*खोज के पथ पर*—ले० श्री शुकदेव दुबे—जान को हथेली पर रखकर दुर्गम स्थानों एवं पर्वतों के खोज करने वालों का रोमांचकारी वर्णन। मूल्य ॥)

पता—विज्ञान परिषद, प्रयाग

विज्ञान-सेवा

हम एक अस्थायी विज्ञप्ति वैज्ञानिक साहित्य के संबंध में नीचे प्रयोगार्थ दे रहे हैं। जो विद्वान इस संबंध में कुछ उत्तर या विचार प्रेषित करें उन से लाभ उठाने का प्रयत्न किया जायगा। हमारा उद्देश्य विद्वान लेखकों, विज्ञान-सेवियों आदि का प्रकाशकों से सम्पर्क स्थापित कराने का है। बहुत से विद्वान या लेखक कुछ लोकप्रिय विज्ञान का साहित्य प्रस्तुत करने के इच्छुक हो सकते हैं, या उनके पास कुछ लिखा हुआ साहित्य किसी प्रकाशन संबंधी व्यवस्था के अभाव में अप्रकाशित ही बड़ा रह सकता है। अथवा वे हमारी इस उत्प्रेरणा से ही कदाचित कुछ लिखने को प्रस्तुत हों अतएव हम कुछ ऐसे विद्वानों या लेखकों के उत्साहपूर्ण संवाद पाकर कुछ प्रकाशकों से इन संबंध में विचार-विनिमय करना प्रारंभ करेंगे। यह स्वीकार करने योग्य बात ही है कि इस समय हिन्दी-प्रकाशन में यह संधि काल ही है। हम पूर्ण उत्साही तथा पुष्कल पुरस्कार प्रदान करने वाले प्रकाशकों को पाने में कठिनाई अनुभव कर सकते हैं। अथवा प्रकाशकों को भी यथेष्ट विक्रय के साधन तथा क्षेत्र ढूँढ़ने में अड़चन होने की बात सुन सकते हैं परन्तु प्रत्येक दशा में कुछ कार्य हो ही सकता है। हमारा उद्देश्य किसी भी प्रकार लेखकों का अधिकार दबा कर सस्ते मूल्य में प्रकाशन की बात उठाना नहीं है और न हम प्रकाशकों से ही कुछ लेखकों के पारिश्रमिक के संबंध में अनुनय-विनय करेंगे। हम इन दोनों पक्षों के मध्य केवल सम्पर्क स्थापित करेंगे। प्रकाशन-क्षमता को हम ज्ञात करना चाहेंगे यथा लेखकों के वैज्ञानिक (विशेषतया लोकप्रिय) साहित्य-सृजन सम्बंधी प्रयत्न, पुरस्कार की निश्चित माँग अथवा प्रकाशन संबंधी अन्य ज्ञातव्य बातों का संकलन करेंगे। हम किसी भी पक्ष की बात उचित निर्देश न मिलने तक गुप्त रखने के लिए बाध्य ही हैं जिस के संबंध में अपने कर्त्तव्य का उचित पालन करने का हम प्रयत्न करेंगे। कृपया नीचे लिखी सूचनाएँ दें कर अनुगृहीत करें। उत्तर बंद लिफाफे में दें।

—सम्पादक, विज्ञान

लेखक—सूचना-पत्रक

नाम, उपाधि तथा पूरा पता ________________________

पूर्व प्रकाशित सरल वैज्ञानिक साहित्य ________________________

क्या कुछ अप्रकाशित वैज्ञानिक साहित्य है? ________________________

आयोजित साहित्य की सूचना, पृष्ठ संख्या—प्रारम्भ या समाप्ति तिथि ________________________

प्रकाशन की शर्तें ________________________

पुरस्कार एकमुष्टि या रायल्टी स्वीकार्य होगी ________________________

क्या परिषद् को अन्य उदार शर्तें दी जा सकती हैं अथवा मध्यस्थ के नाते परिषद् को पारिश्रमिक का कुछ अंश देना स्वीकार्य है ________________________

अन्य आवश्यक सूचना ________________________

पूरा पता ________________________ हस्ताक्षर ________________________

Reg. No. 372

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—सन् १९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादि बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम

सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद् बैंक रोड, इलाहाबाद

जनवरी, १९५३ मकर २००९

भाग ७६ संख्या ४

वार्षिक मूल्य तीन रुपए

प्रति अंक पाँच आने

जनवरी अक्टूबर	फरवरी मार्च नवम्बर	अप्रैल जुलाई	❋ १९५३ ❋					मई	जून	अगस्त	सितम्बर दिसम्बर
वृह	रवि	बुध	१	८	१५	२२	२९	शुक्र	सोम	शनि	मंगल
शुक्र	सोम	वृह	२	९	१६	२३	३०	शनि	मंगल	रवि	बुध
शनि	मंगल	शुक्र	३	१०	१७	२४	३१	रवि	बुध	सोम	वृह
रवि	बुध	शनि	४	११	१८	२५	❋	सोम	वृह	मंगल	शुक्र
सोम	वृह	रवि	५	१२	१९	२६	❋	मंगल	शुक्र	बुध	शनि
मंगल	शुक्र	सोम	६	१३	२०	२७	❋	बुध	शनि	वृह	रवि
बुध	शनि	मंगल	७	१४	२१	२८	❋	वृह	रवि	शुक्र	सोम

* माह के नीचे दिन है, उसी की सिधाई पर तारीख देखें। *

[श्री बाबूलाल शुक्ल के अनुग्रह से]

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५

भाग ७६ | मकर २००६; जनवरी १९५३ | संख्या ४

भारतीय कोयला-क्षेत्र की शिलाएँ

एक समय था जब भारत खण्ड की रूपरेखा आज से बिल्कुल ही भिन्न थी। उत्तर दिशा में हिमालय का जन्म नहीं हुआ था, उसके स्थान पर कभी जल खण्ड और कभी समतल भूमि ही दिखलाई पड़ सकती थी। जिस खण्ड को हम कभी-कभी दक्षिणी भारत रूप में द्रविड़ देश नाम से पुकारे जाते पाते हैं, उसकी स्थिति कुछ अधिक समय से ही चली आ रही थी। कदाचित् वह आदि काल से स्थल रूप में ही रहा हो। उसी के उत्तरी छोर पर विशाल क्षेत्र में फैले उथले जल-खण्ड में पर्वत-माला निर्मायक शक्तियों ने तलछट जमाकर धरातलीय समता-विषमता, तल-उत्थान तथा पतन का खेल रचते हुए विन्ध्य पर्वतमाला की रचना की थी। आज से कितने अधिक पहले की वह घटना होगी, इसे गिनती के वर्षों में बताना एक कठिन समस्या ही हो सकती है, परन्तु विन्ध्य पर्वतमाला उठ खड़ी होने के पश्चात् के किसी युग में नूतन हलचल का दृश्य देखा गया। उसके परिणाम-स्वरूप धरातल पर खण्ड प्रलय-सा दृश्य उपस्थित होते देखा गया। घोर शीत के प्रभाव से श्वेत हिमराशि का इस भूखण्ड में इतना अधिक प्रसार हुआ कि उसकी भीषण नदियाँ सी बहकर अपने प्रवाह से धरातल पर बेलन के घुमाने की भाँति संघर्षण कर भारी-भारी पथरीले टुकड़ों को घसीट ले चल सकीं और चौड़े पेटे की भाँति अपने मार्ग से स्थल-स्थल पर मार्गचिन्ह या घाटियों-सी बना सकीं। उन हिम-प्रवाहों में घर्षित होने से अधगढ़ी सी बनी रूपरेखा के प्रस्तर पिंडों तथा उनके घसीटे जाने से बने चिन्ह तथा चौड़े पेटे की निर्मित घाटियों के उदाहरण आश्चर्य की बात नहीं हैं। इन गोल-मटोल टुकड़ों (प्रस्तर-पिंडों), की भारी मात्रा में एकत्रित राशि की ही आधार-शिला या नींव के किन्हीं अन्य परिवर्तनों से धँसे तलों पर जल-प्रसार द्वारा तलछट जमने का अवसर मिला जिससे तलछटीय शिलाओं की नवीन तहें निर्मित हुईं। ये शिलाएँ ही भारतीय कोयले क्षेत्र की जननी हैं जिन्हें निम्न गोंडवाना शिलामंडल नाम दिया जाता है।

विदेशों में कार्बनजनक तथा परमियन कालों के समकक्ष ही निम्न गोंडवाना शिलामंडल को समझा जाता है तथा परमियन काल के पश्चात् के ट्रयासिक, जुरासिक तथा क्रिटेशश काल भारतीय भौगर्भिक काल-विभाजन में उच्च गोंडवाना काल का निर्माण करते हैं। इस प्रकार

मध्यजंतुक युग नाम के इन तीनों कालों का भारतीय दृष्टि से एक नाम उच्च गोंडवाना काल प्रसिद्ध है। भारतीय भूगर्भ विज्ञान के अध्ययन में गोंडवाना काल या युग के इन दो विभागों के पुनः अन्य उपविभाजन किए गए हैं। इनके द्योतन के लिए शिलाएँ स्थान-स्थान पर पाई गई हैं अतएव उन स्थानों के नाम पर इन उपविभागों या उनके भी अन्य छोटे संविभागों के पृथक्-पृथक् नाम ज्ञात हैं।

गोंडवाना नाम क्यों पड़ा, इस पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। प्रस्तर-पिंडों या प्राकृतिक रूप से अधगढ़े तथा तुषारातिक्रमण के प्रत्यक्ष प्रमाणों से समन्वित स्तर या शिला से जिन नवीन शिलाक्रमों रूप में नई सृष्टि सी होने का प्रमाण भारत में प्राप्त होता है, उसी प्रकार के शिला-क्रम कुछ अन्य महादेशों में भी प्राप्त होते हैं जहाँ घोर तुषारातिक्रमण के प्रभाव की आधार-भित्ति पर ही अन्य शिलाएँ स्थापित पाई जाती हैं। इन पश्चातवर्ती शिलाओं के अन्दर भी यथाक्रम एक सदृश वानस्पतिक तथा जीव-जन्तुक प्रस्तरावशेष ही इन महादेशों में भारत के समान ही सुलभ होते हैं। समुद्र के अथाह जल-खण्ड से ये स्थल-खण्ड आज दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा अंटारकटिका नाम से पृथक् हैं, परन्तु शिलाक्रमों तथा उनके अंतर्गत अवशेषों की रचना तथा उनके आधार में तुषार-जनित प्रभावों की समता देखकर इनको कभी इस प्रकार जुटा होने का अनुमान होता है जिससे जंतुओं तथा वनस्पतियों का इन सब स्थल खण्डों में सहज ही आवागमन हो सकना सम्भव रहा हो।

इन समानताओं की स्थिति वाले शिला-क्रम का अध्ययन भारत में अंग्रेज वैज्ञानिकों ने प्रारम्भ किया था। सन् १८७२ ई० में श्री० मेडलिकाट ने अपना हस्तलिखित शोधप्रलेख प्रस्तुत कर गोंडवाना शब्द का प्रयोग पहले-पहल किया था। परन्तु मुद्रित रूप में इस शब्द के आने का अवसर सन् १८७६ ई० में ओ० फीस्टमैंटेल नामक वैज्ञानिक के प्रकाशित शोधपत्र में मिला। मध्य प्रदेश में किसी समय गोंडों का राज्य विस्तृत था। उसी क्षेत्र में पहले-पहल मेडलिकाट ने शिलाओं का अध्ययन किया था किन्तु इन शिला-क्रमों की समरूपता दक्षिणी कटिबंधीय की उपर्युक्त महादेशों में पाई गई तो गोंडवाना भूखंड नाम से इन सभी क्षेत्रों को संबोधित किया जाने लगा। अतएव पुराजंतुक युग के अवसान काल तथा मध्यजंतुक युग की अधिकांश अवधि तक इन सभी भूखंडों के परस्पर सम्बद्ध करने की धारणा के कारण इन भूभागों की तत्कालीन निर्मित शिलाओं को गोंडवाना कालीन शिलाएँ कहा जाता है तथा इस सम्पूर्ण अवधि को गोंडवाना युग नाम दिया जाता है। उसी के पूर्वार्द्ध भाग को निम्न गोंडवाना काल तथा उत्तरार्द्ध भाग को उच्च गोंडवाना काल नाम दिया जाता है।

शिलाक्रमों की कुछ भ्रामक स्थिति में कुछ वैज्ञानिकों ने इन सब कालों की अवधि या पूर्ण गोंडवाना युग को पहले तीन भागों में विभाजित करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों के अध्ययन ने इस युग को स्पष्टतया दो मुख्य विभागों में विभाजित होने की घोषणा की। उसके लिए प्रस्तरावशेष विज्ञान ने अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत कर अपनी महत्ता सिद्ध की।

निम्न गोंडवाना शिलाओं में सर्वत्र ही पहली शिला हिम-प्रलय के पश्चात् ही प्रस्तरपिंड के जमाव से बनी होने से कोई भी प्रस्तरावशेष नहीं प्रकट करतीं, किन्तु उसकी अन्य ऊपरी शिलाओं में जन्तुओं और वनस्पतियों के प्रस्तरावशेष प्राप्त होते हैं। गोंडवाना नाम से ज्ञात सभी भूखंडों में भारत में तथा अन्य महादेशों में इन प्रस्तरावशेषों में वनस्पति की एक समान जाति ही पाई जाती है जिसके ग्लोसोप्टेरिस, गंगमोप्टेरिस, न्यूरोप्टेरिडियम आदि नाम हैं। इन सब वनस्पतियों को ग्लोसोप्टेरिस वंशी वनस्पति नाम दिया जाता है। विदेशी विद्वानों, फीस्टमेंटल, ई० ब्रेडेनबर्ग आदि ने अपने देशीय भौगर्भिक विभाजन के अनुसार भारतीय भौगर्भिक काल विभाजन भी परमियन, ट्रयासिक, जुरासिक आदि रूप में करना प्रारम्भ किया था, अतएव गोंडवाना काल के तीन विभाग प्रसिद्ध हो चले। उसका कुछ आधार भी मिलता। इन शिला-क्रमों में ट्रयासिक काल की भाँति शुष्क वातावरण तथा उसमें पनपने वाले सरीसृपों का प्रसार मध्य भाग की शिलाओं में पाया जाता। किंतु इस मध्य भाग के ऊपर तथा नीचे दोनों ही भागों में अपेक्षाकृत आर्द्रता का प्रसार देखा जाता और केवल शुष्क वातावरण

में रह सकने वाले सरीसृपों के पर उभयजीवी रूप के जन्तुओं को पाया जाता जो भूमि और पानी एक सा कर आर्द्र वातावरण में जीवित रहने वाले प्राणी थे। किन्तु इन स्थितियों की उपेक्षा कर वानस्पतिक अवशेषों में, मध्य गोंडवाना भाग कहे जाने वाले कुछ अंश को सम्मिलित कर पूर्व रूप के ज्ञात निम्न गोंडवाना के सम्पूर्ण शिला-क्रमों में जहाँ ग्लोसोप्टेरिस का प्रसार देखा जाता, वहाँ इसके ऊपर के समस्त शिला-क्रमों में दूसरी जाति के वनस्पति का प्रकार देखा जाता जो राजमहलीय वनस्पति (टिलोफाइलम) नाम से ज्ञात हैं। इन दो स्पष्ट विभाजनों की विभाजक रेखा पांचेत नाम की शिला का ऊपरी तल माना गया। ये ही दोनों विभाजन अब निम्न तथा ऊर्ध्व गोंडवाना नाम से ज्ञात हो सके हैं।

गोंडवाना शिलाओं के दो मुख्य विभाजनों, निम्न और ऊर्ध्व के भी पुनः विभाजन किए गए हैं। निम्न गोंडवाना में तालचिर, दामूदा तथा पांचेत वर्ग हैं तथा ऊर्ध्व गोंडवाना में महादेव, राजमहल तथा जबलपुर वर्ग हैं। इन वर्गों की शिलाएँ विभिन्न स्थानों में मिलने से उनके भी पुनः संविभाग किए पाए जाते हैं जो उन स्थानीय नामों से प्रसिद्ध हैं जहाँ उन्हें धरातल पर पाया जा सका है। इन सब शिलामंडलों, विभागों, उपविभागों आदि का अध्ययन भारतीय भूगर्भ विज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है।

शिलाओं के क्रम तथा नामकरण आदि के सम्बन्ध में कुछ बातें जान लेना मनोरंजन हो सकता है। किस शिलामंडल में कौन-सा विभागी-संविभागीय स्तर पहले बना तथा कौन बाद में बना, इसे जान सकने के लिए सभी विभागीय संविभागीय स्तर एक स्थान पर ही मकान की दीवाल की भाँति रद्दे बनाकर पूर्ण आकार प्रस्तुत करते नहीं दिखाई पड़ सकते हैं! यथार्थ में पूर्ण स्तरक्रमों के होने पर तो हम नीचे से ऊपर तक इतनी मोटी तह बनी पाते कि हमें केवल ऊपरी कतिपय भागों या क्रमों का ज्ञान हो पाता। परन्तु सृष्टि में वैचित्र्य एक साधारण घटना है। शिलास्तरों के तोड़-मरोड़, क्रम भंग, खण्डन मण्डन तथा भ्रष्टता के साथ ही तलनिर्माण और ध्वस्तता के इतने अधिक नमूने हमारे सम्मुख वसुंधरा के ऊपरी तल पर ही विद्यमान हैं कि केवल कौशल तथा बुद्धि के प्रयोग से उनकी पूर्व-स्थिति तथा क्रम-व्यवस्था का अध्ययन कर सकना सम्भव है। मान लीजिए क, ख, ग, घ, आदि अनेक उपस्तर एक विभागीय स्तर या शिला का निर्माण करते हैं जो अनुक्रमिक रद्दे हों। हम क के ऊपर ख को अकेला ही अन्य स्तरों के साथ पाते हैं। कहीं केवल ख पर ही ग है और नीचे के क तथा ऊपर के घ का अभाव है या कहीं ग के ऊपर घ पाते हैं और अन्य स्तरों का अभाव है, परन्तु कुछ उदाहरणों के एकाकी पुनरावृत्त रूप में अपने अनुक्रम प्रकट करने से हम पूर्ण क्रम का ज्ञान प्राप्त करते हैं इधर इन विशेष उपस्तरों में अपने ही अनुक्रम के अनुकूल विशेष वानस्पतिक या जीव-जंतुक प्रस्तरावशेष प्राप्त होते हैं। अतएव इनका रूप और क्रम निश्चित कर कहीं भी एकाकी उपस्तरों को उनकी रचना, प्रस्तरावशेष आदि के लक्षणों से नाम तथा निर्दिष्ट क्रम कह सकना सम्भव हो सकता है। इन रूपों में कहीं तो लम्बी पंक्तियों तथा अनुक्रमिक रूप में अनेक उपस्तरों तथा स्तरों का संघट्ट पाया जाता है, उसे पूर्ण रूप की क्रम-व्यवस्था के अधिक निकट समझा जा सकता है। वे साधारण ढंग या रूप की शिलाएँ कही जा सकती हैं। उनका अध्ययन कुछ सरल हो सकता है, परन्तु बहुत सी शिलाएँ अपने स्तर या अनुस्तर का क्रम नष्टकर धरातल पर खुले रूप में एकाकी विद्यमान पड़ी रह सकती हैं जिनके नीचे की सभी शिलाएँ उसके ठीक अनुक्रम के अनुरूप न हों। पूर्व क्रमिक शिलास्तरों की प्रकृति की तलभंजक शक्तियों ने अपने निरंतर संहार-कार्य से लोपकर दिया होता है; किंतु इनकी पहचान प्रस्तरावशेष या अन्य प्रमाणों से हो सकती है। ऐसी एकाकी क्रमअवस्थित शिला को एकाकी खंड-क्रमीय (आउटक्राप) शिला कह सकते हैं।

इन सब परिस्थितियों में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर धरातल के ऊपरी भाग, नदी-नालों के कगारे तथा कुछ खुदाई के कारण अनावृत स्तरों का रूप देखकर वैज्ञानिकों ने बड़े ही यत्न तथा कौशल से उनके क्रमकि रूप निश्चित करने का प्रयत्न किया है। अतएव कोयलाक्षेत्रीय या गोंडवाना शिला के साधारण विवरण में भिन्न-भिन्न स्तरों अनुस्तरों आदि के नाम सुनकर यह समझ लेना उचित नहीं

हो सकता कि वे सदा ही पूर्ण अनुक्रम का उदाहरण उपस्थित करती होंगी।

निम्न गोंडवाना के स्तरों में पहली तह तालचिर नाम से ज्ञात है। उड़ीसा में इसी नाम का एक देशी राज्य था जहाँ इस स्तर का पहले-पहल अध्ययन किया जा सका, अतएव इसे सबसे निचले क्रम में पाने से इस स्थिति या क्रम के अनुरूप सभी अन्य शिलाओं को भी तालचिर वर्ग की शिला कहते हैं। यह स्तर प्रस्तरपिंडीय तह के ऊपर पंकशिला तथा बालुकाशिला के ऊपर बना पाया जाता है। इन कुल उपस्तरों की मोटाई ५०० से ८०० फीट तक होगी। इसके ऊपरी खंड में ही वनस्पतियों के प्रस्तरावशेष विद्यमान पाए जाते हैं जिससे हम इनकी रचना के अवसान काल आते-आते उष्ण जलवायु का अनुमान कर सकते हैं जब नए वनस्पति उगने लगे। इसके पूर्व हिम प्रसार तथा शीत का प्रभाव रह चुका था।

दक्षिणी भारत के जिन क्षेत्रों को वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों के प्रमाणों से समन्वित रहकर तलछटीय शिलाएँ निर्मित करने का अवसर गोंडवाना काल में मिला उसे एक त्रिभुज की दो भुजाओं के निकटवर्ती क्षेत्रों के रूप में पाया जा सकता है। इनमें से एक भुजा पूर्व-पश्चिमाभिमुख बनी रेखा मानी जा सकती है जिसका निर्माण दामोदर, सोन तथा नर्मदा की घाटियाँ करती हैं तथा दूसरी भुजा पश्चिमोत्तर तथा दक्षिण-पूर्व दिशा में प्रसारित रहकर मुख्य रूप से गोदावरी की घाटी घेरे समझी जा सकती है। इन दोनों भुजाओं को मिला कर त्रिभुज सा बनाने वाली रेखा दक्षिण भारत के पूर्वी तट के उत्तर खंड अर्थात् गोदावरी घाटी से लेकर राजमहल की पहाड़ियों तक फैली मानी जा सकती है। इस त्रिभुज आकार सा बनाने वाले भूखंड की एक भुजा को छोड़कर जिन दो भुजाओं के आस पास ही कोयले के क्षेत्रों को फैला पाया जाता है वे आज पूर्णतया स्थलखंड का आंतरिक प्रदेश निर्मित करते हैं, परन्तु आधार भुजा या आज समुद्रतटीय रूप में दिखाई पड़ने वाली भुजा कोयला-स्तर से सर्वथा शून्य ही है। एक शाखा रेखा रूप में भी कोयला क्षेत्र इस त्रिभुज के अन्दर बना हुआ पाया जाता है जिसे महानदी की घाटी का क्षेत्र कहते हैं। इस प्रकार हम इतने विस्तृत आकार के क्षेत्र में लम्बे और सँकरे-भूखंड की पट्टियों में ही गोंडवाना शिलामंडलों का प्रसार पाते हैं। जिस प्रकार कहीं निम्न भाग में कुछ आर्द्रता या खुदाई का प्रभाव ऊपर के भारी बोझ से तल को धँसाता पाया जा सकता है उसी प्रकार ऐसे धँसान को उत्पन्न करने वाले दरारों की भाँति धरती की शिलाओं के स्तर में फटान होने से दो भारी फटानों या स्तर-भ्रष्टता के मध्य की कोई विस्तृत भूमि का भाग भी धँसकर धरातल की स्थिति में विषमता पैदा कर सकता है। ऐसे स्थल को स्तर-भ्रष्टीय धँसान नाम दिया जा सकता है। इनमें तल की निचाई होने से जलराशि का संचय होने, नदियों के बहकर आने या जलाशयों के निर्माण का अवसर हो सकता है।

ज्ञात होता है कि गोंडवाना क्षेत्रीय शिलाओं के तलछटीय रूप में निर्माण के लिए ऐसे स्तर-भ्रष्टीय धँसानों के विस्तृत क्षेत्रों में विशाल नदियों के प्रवाह तथा विशालकाय जलाशयों के निर्माण के अवसर आए इसलिए उनके ही प्रभाव से उच्च भूखंडों की मिट्टी कटकर इन स्थानों के उथले जल-प्रसार को पाट-पाटकर नदीय तथा सरोवरीय तलछट-शिलाओं का निर्माण करती रही। उन पर घोर जङ्गलों के उगने से तलछटों के भारी जमाव में काठ-कवाड़ की भारी मात्रा भी अकस्मात् ही समाधिस्थ हो जाने का अवसर पा जाती और कालांतर में वह कोयले का रूप धारण करती। कदाचित् ऐसे अवसर थे कि तलछट जमती, साथ में जंगलों की समाधि दी जाती। फिर काल-क्रम से धरती के धँसकर छिछला जल प्रसार करने तथा पुनः तलछट जमाकर उन्हीं क्रियाओं को पुनः-पुनः दुहराने का अवसर मिलता।

गोंडवाना क्षेत्र की सबसे निचली तह रूप की शिलाओं के नमूने के अनुरूप शिलाओं का प्रसार हिमालय के आज के प्रसार-क्षेत्र की कितनी ही जगहों तक होने का अनुमान किया जाता है और वैज्ञानिकों का विश्वास है कि नेपाल, भूटान तथा काश्मीर और अफगानिस्तान में भी इनका निर्माण होने का अवसर प्राप्त हुआ था। शिमला पहाड़ियों में ब्लैनी, काश्मीर और पाकिस्तान में तेनाकी नाम से ज्ञात प्रस्तर-पिंडों (अधगढ़े पथरीले ढोकों) से निर्मित तह तथा टेहरी-गढ़वाल में मंधाली नाम की तह को गोंडवाना

के तालचिर स्तर के अनुकूल ही माना जाता है। प्रस्तरपिंडमय तह के आधार के कुछ फीटों ऊपर ही गोंडवाना बनस्पतियों के प्रस्तरावशेश यह प्रकट करते हैं कि यह गोंडवाना स्थल खंड के उत्तरदेशीय समुद्रतटीय छोर रहे होंगे। अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिए कि सुदूर भागों के भूखंडों में बनस्पति तथा उभयजीवी तथा सरीसृपों के प्रस्तरावशेष समानता दिखाकर उन्हें एक युग में एक समान स्थिति में उत्पन्न सिद्ध करते हैं। प्रो० वान ह्वेन ने गोंडवाना भूखंड के प्रस्तरावशेषों का साम्य मडागास्कर, ब्राजील, उरुग्वायी तथा अर्जेंटाइना में भी पुनरावृत्ति देखकर एक अखंड विस्तृत दक्षिणी भूखंड का अनुभव किया था।

हिमनदी को अपने पेटे में पथरीले ढोके, बालुका, मिट्टी आदि के कूड़ा-कबाड़ आदि घसीटकर ले जाते देखा जाता है, किंतु जब उनका वेग अन्तकाल देखता है, हिमखंड कहीं गल पचकर जलराशि बहा देता है तो ये बेचारे प्रस्तरपिंड तथा कूड़ा-कबाड़ शेष रह कर हिमनद के अन्तकाल तथा प्रवाह की अन्तिम पहुँच का प्रमाण देते हैं। हम इनको हिमनदवाही कर्दमीय ढेरी (मोरेन) कह सकते हैं। अनुमान है कि भारी-भारी हिमनदों ने अपना प्रसार करने का अवसर पाकर जब गोंडवाना युग में अपनी क्रिया समाप्त की तो उसके द्वारा घसीटकर लाए कर्दम भंडारों, प्रस्तर-पिंडों आदि ने अंतिम छोर पर कोई बाँध सा बनाकर स्थल-स्थल पर कितने ही जलाशयों का निर्माण कर दिया हो। तालचिर काल की अनेक झीलें परस्पर सम्बद्ध रहकर अपने आगे वाले काल की भित्ति खड़ी करने के लिए तलछट जमाने का अवसर पा सकीं। तालचिर के पश्चात् की बनी शिला दामूदा या दामोदर शिलास्तरों का निर्माण करती है जिसका नमूना दामोदर की घाटी में प्राप्त किया जा सका है। किंतु एक दूसरी विचित्र घटना भी देखी जाती है। किसी प्रकार समुद्र का विस्तृत भाग काश्मीर के निकट स्थित नमक की खानों के स्थान पर विद्यमान रहकर अपना अंचल किसी दिशा से मध्य प्रदेश के भाग तक फैलाए था। अतएव उसके अतिक्रमण से कोई समुद्री पट्टी बननी सम्भव हुई। उमरिया नाम के स्थान में मध्य प्रदेश में ऐसी चार समुद्री पट्टियाँ मिलती हैं जो तालचिर शिला के भग्नतल पर असंमत रूप से स्थिर पाई जाती हैं तथा अखंड हुए बिना ही दामोदर वर्ग की शिलाओं पर सीधे फैल कर जमी मिलती हैं। उनके प्रस्तरावशेष विचित्र तथा नवीन रूपों के ही हैं। यह एक भूगर्भ वैज्ञानिकों के लिए खोज का ही विषय है, परन्तु इन समयों में समुद्र का इन क्षेत्रों में प्रभाव हो सका, इस बात में तो कोई सन्देह ही नहीं पाया जाता।

तालचिर काल के प्रस्तरावशेषों का प्रसार देखकर वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया है कि निम्न गोंडवाना के क्षेत्र में प्रारम्भ में अधिकांश स्थलों में इन समरूपों के प्रस्तराव-शेष उत्पन्न करने वाली स्थिति रही होगी। उसमें बाद में कुछ परिवर्तन हो सके होंगे। हम तालचिर प्रस्तरावशेषों को निम्न स्थानों में मुख्य रूप में स्थित पाते हैं:—देवघर कोयला खान में करौंव, करनपुरा में रिकबा, बिहिया, बड़ा गाँव में सोहागपुर (मध्य प्रदेश के अनुकपुर नामक स्थान से १६ मील दूर), रीवाँ में गोरेरियाँ नामक स्थान तथा अन्य कई स्थान।

भारतीय भौगर्भिक अनुसंधान विभाग के भूतपूर्व संचालक डा० सी० एस० फाक्स ने दामोदर या दामूदा स्तरवर्ग को एक अनुमंडल के समान महत्ता दी। इसे चार सोपानों में विभक्त किया गया है। पहला सोपान गिरिडी की कोयले की खानो में कढ़ारबारी नामक स्थान में देखने तथा अध्ययन करने का अवसर मिला था। अतएव इसे कढ़ारबारी स्तर सोपान नाम से प्रसिद्ध किया गया। दूसरा सोपान बाराकर नदी की घाटी में रानीगंज की कोयला की खानों के क्षेत्र में अध्ययन किया गया अतएव वह बाराकार स्तर सोपान नाम से प्रसिद्ध है। तीसरा सोपान कोयला से सर्वथा रहित स्तर है इसलिए उसे कोयलाहीन या बंजर स्तर-सोपान कहा जाता है। चौथा सोपान रानीगंज के कोयला-क्षेत्र में भली-भाँति विकसित मिलता है। इसलिए उसे रानीगंज सोपान कहते हैं।

दामोदर नदी की घाटी में इन चारों सोपानों को विशेष विकसित पाकर इन्हें दामूदा या दामोदर स्तर वर्ग नाम दिया जा सका है। यह नदी हुगली (गंगा) नदी की एक प्रधान सहायक नदी है जो रानीगंज, झरिया तथा बोकारो कोयला क्षेत्र में होकर बहती है। इसके ही क्षेत्र में जल-

विद्युत की प्रसिद्ध योजना कार्यान्वित होने जा रही है। इस कोयले क्षेत्र के सोपानों को गोंडवाना स्तर-मंडलों में सर्वाधिक विकसित विभाग कहा जा सकता है। पहले सोपान (कढ़ारबारी) का प्रस्तर तालचिर शिलाक्रम के ध्वस्त भाग के ऊपर असंगत रूप से बैठा हुआ रूप गिरिडी की खानों में पाया जाता है। असंगति का अर्थ यही होता है कि तलछटीय स्तर का निर्माण कुछ समय स्थगित सा रहने से शुष्क स्थलीय भाग तलभंजन की क्रियाओं से ध्वस्त होने को विवश होता रहा। अतएव तलछटीय क्रम का नया निर्माण कभी होने का अवसर होने पर उस ध्वस्त भाग के बचे भाग पर के अव्यवस्थित तल पर नई तह जमी जिससे इन दोनों नए-पुराने तहों का मेल ठीक न बैठा होता। ऐसी घटना स्थल तथा जल खंडों की परिवर्तनशील दशा प्रकट करती हैं। तालचिर स्तर के ऊपर बेमेल या असंगत रूप से बैठी कढ़ारबारी तह का दृश्य प्रकट करता है कि स्तर निर्माण के लिए धरती के धँसान ने कालांतर में जल खंड का प्रसार कर तलछट जमने का अवसर दिया।

कढ़ारबारी स्तर में पहले २०० से ४०० फीट तक मोटी बालुका शिला तथा कंकड़-पत्थरों की शिला है जिसमें बीच-बीच में कोयला की तहें हैं। इन तहों में से दो में खुदाई हो रही है। करनपुरा, हूटर डाल्टनगंज, उमरिया, मोहपानी और शाहपुर की कोयला की खानों में इसे पाया जाता है। बाराकर सोपान के स्तर में २००० फीट तक मोटा श्वेत या रंगीन बालुका-शिला तथा कंकड़ीली शिला है। झरिया की खान में बाराकर सोपान के स्तर में २४ तहें हैं जिनमें प्रत्येक ४ फीट से अधिक मोटी है। इस प्रकार २००० फीट कुल मोटी शिला में लगभग २०० फीट कुल मुटाई का कोयला होगा। भारत में व्यावहारिक रूप से यही सोपान निम्न गोंडवाना की सबसे मुख्य कोयला उत्पादक है। झरिया की खान में बाराकर सोपान सबसे अधिक सम्पन्न है। अन्य क्षेत्रों में इससे पतली तहें भी मिल जाती हैं जैसे उदाहरणार्थ बोकारो की करगली नामक तह तथा हरदो घाटी की कोरबा नामक कोयले की तह १०० फीट मोटी पाई जाती है। बाराकर सोपान के कोयले को बन्द पानी के विस्तृत खंड में जमे होने का अनुमान किया जाता है। कोयले का प्रसार इस सोपान में अधिक तो है किन्तु प्रस्तरावशेष थोड़े ही भागों में मिलते हैं। जन्तु प्रस्तरावशेष का सर्वथा अभाव ही पाया जाता है। बंजर सोपान (तीसरे सोपान) को बाराकर तथा रानीगंज सोपान के मध्य स्थित पाया जाता है। इसमें केवल बालुका शिला मिलती है। रानीगंज कोयला क्षेत्र में इसकी १४०० फीट मोटी तह मिलती है जिसमें लोहा मिश्रित पंकशिला मिलती है। इनमें लौहप्रस्तर-कन्द प्राप्त होते हैं जहाँ से कच्चा लोहा प्राप्त किया जाता है। झरिया करनपुरा क्षेत्र में यह सोपान है किन्तु पश्चिम की ओर बढ़ने पर इसकी तह लुप्त होकर ऊपर वाली रानीगंज सोपान की कोयले की तह में मिल सी जाती है। बंजर सोपान को सतपुड़ा क्षेत्र में मोट्टुर सोपान कहते हैं। दक्षिण रीवां में भी इसे बाराकर तथा रानीगंज की समकालीन पाली और दहिगाँवाँ शिलाओं के मध्य पाया जाता है।

रानीगंज सोपान की शिला इस नाम के खदान क्षेत्र में विकसित है तथा उसे २०७ फीट तक मोटा पाया जाता है। सतपुड़ा क्षेत्र में इसकी समरूपी शिला में इतनी ही मोटी तहें हैं। उसे बिजोरी स्तर सोपान नाम दिया जाता है। झरिया में इसे पतला पाया जाता है। रानीगंज में ही इसकी महत्वपूर्ण कोयला की तहें हैं। इसके ऊपरी भाग में रानीगंज तथा झरिया दोनों ही स्थलों पर काष्ठ प्रस्तरावशेष प्राप्त होते हैं। रानीगंज तथा बिजोरी की भाँति नागपुर के पास कामटी की स्तरपट्टियाँ तथा बाँदा जिले में बर्धा घाटी, दक्षिणी रीवाँ में पाली की तह, महानदी तथा ब्राह्मणी घाटी में हिमगिरि तह तथा पचमढ़ी के दक्षिण अलमोड नाम की स्तरपट्टी तथा गोदावरी की घाटी में चिंतलपुड़ी बालुकाशिला रानीगंज सोपान की समवर्गी हैं। कामटी की स्तर पट्टी वर्धा गोदावरी घाटी तक घुसी तथा सम्मिलित है जहाँ उसका क्रम निर्धारण करना कठिन है। पाली की स्तरपट्टी रीवाँ में कटनी-बिलासपुर रेलवे लाइन पर बीरसिंहपुर रेलवे स्टेशन के पास पाली नाम के स्थान में है। हिमगिरि स्तरपट्टी रायगढ़ तथा हिमगिरि कोयला क्षेत्र में है। बिजोरी स्तरपट्टी छिंदवाड़ा जिले में है।

पांचेत स्तर-वर्ग रानीगंज सोपान की शिला पर स्थित

[शेष पृ० १०४ पर]

पृथ्वी की आयु

महाराज नारायण मेहरोत्रा एम. एस-सी., भूगर्भ-विज्ञान विभाग, का० वि० वि०

पृथ्वी की आयु जानने का वैज्ञानिक प्रयास १६ वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। परन्तु इसके पहले भी भारतीय ज्योतिषियों ने नक्षत्रों के अध्ययन व गणना करके पृथ्वी की आयु लगभग २०००,०००,००० वर्ष बतलाई थी। 'सूर्य सिद्धान्त' में कल्प से अब तक का समय १,६७,२६,४६ ०२३ सौर वर्ष लिखा है। इसीलिए भारतीय शास्त्रों में पृथ्वी को अनादि कह कर संबोधित किया गया है।

हां तो पहला वैज्ञानिक प्रयास जेम्स हटन (James Hutton) के इस सिद्धान्त को लेकर हुआ कि 'जो क्रियायें पृथ्वी पर प्राचीन काल में कार्य कर रही थीं, आज भी वह उसी प्रकार अपने कार्य में संलग्न हैं।'

भूशास्त्रियों ने विचार किया कि पृथ्वी पर हम जितनी भी वस्तुएं देखते हैं जैसे पर्वत मालाएं, नदी नाले, घाटियां (Gorges) आदि, यह सब सदैव इसी रूप में नहीं थी। यह सब पृथ्वी से संबद्ध अगणित शक्तियों की कार्यवाही का परिणाम हैं। उन्होंने यह नापने की चेष्टा की कि नदियां अपनी घाटियों को किस गति से काटती हैं। अपरदन (Erosion) की गति समान मानकर उन्होंने अनुमान लगाया कि कुछ नदियों को अपनी घाटियां काटने में दस लाख वर्ष से अधिक लगे होंगे। और यह नदियां पृथ्वी की उत्पत्ति के कुछ काल बाद ही अपने रूप में आई थीं। इस प्रकार पृथ्वी की आयु दस लाख वर्ष से अधिक निर्धारित हुई।

परन्तु इस गणना से संतुष्ट न होकर भूशास्त्री जौली (Joly) ने कहा कि पृथ्वी की आयु जानने का सरल और उचित उपाय होगा—समुद्र के खारेपन का नापना। सर्वप्रथम समुद्र का पानी खारी नहीं था। यह खारापन तो समुद्र को नदियों की देन है जो अपने साथ भांति २ के खार (salts) ले जाती हैं।

यदि समुद्र में विद्यमान नमक की मात्रा ज्ञात हो, और यह भी पता लगाया जाये कि नदियाँ किस मात्रा में नमक समुद्र में ले जाती हैं, तो समुद्र की आयु का अनुमान किया जा सकता है। दुनियाँ की बड़ी-बड़ी नदियों का अध्ययन कर जौली ने यह मालूम किया कि नदियाँ प्रतिवर्ष लगभग १५६,०००,०००, टन सोडियम(Sodium) भिन्न-भिन्न खारों के रूप में ले जाती हैं। समुद्र में विद्यमान सोडियम की मात्रा लगभग १२६, ००, ००० टन है। इस प्रकार समुद्र को खारा होने में लगभग आठ करोड़ वर्ष लगे। इसलिये यह पृथ्वी जिसके गहरे गड्ढों में ही समुद्र की नीव पड़ी, आठ करोड़ वर्ष से कहीं अधिक बूढ़ी है।

वैज्ञानिकों ने इस गणना पर भी आपत्ति की। उन्होंने कहा कि नदी की खार ले जाने की गति घट बढ़ भी सकती है। दूसरे हिमकाल (Ice age) के समय, जब कि बर्फ की चादर पृथ्वी के एक बड़े भाग को ढके थी, नदियों का कार्यक्रम भी बन्द था। इन्हीं कारणों से पृथ्वी की आयु जानने का यह प्रयास भी, सत्य के अधिक निकट न ले जा सका।

इधर सन् १८९६ में विज्ञान के इतिहास में एक नया पन्ना लिखा गया। बैकरल (Becquerel) महाशय ने देखा कि यूरेनियम (Uranium) नामक पदार्थ से ऐसी तेज किरणें निकलती है जो कि काले कागज से ढके फोटोग्राफिक प्लेट पर भी अपना असर दिखलाती हैं। इसी परिवृत्ति (Phenomena) को आगे चलकर मेरी क्यूरी ने तेजोद्गिरण (Radioactivity) नाम दिया। मेरी क्यूरी ने रेडियम नामक तत्व का पता लगाया। यह रेडियम उन रासायनिक तत्वों के समुदाय में एक है जिसके प्रायः सभी तत्व तेजोद्गर (Radioactive) हैं। परन्तु रेडियम समुदाय का अन्तिम तत्व सीसा (Lead) है जो तेजोद्गर नहीं है।

लार्ड रैले ने बतलाया कि तेजोद्गर तत्व पृथ्वी की प्रायः सभी शिलाओं में विद्यमान हैं। इधर वैज्ञानिकों ने यह भी ज्ञात किया कि तेजोद्गर पदार्थ यूरेनियम (Uranium) का एक अणु विघटित होने पर एक अणु सीसे का और आठ अणु हीलियम (Helium)गैस के देता है। यदि हमें युरेनियम की विघटन की गति ज्ञात हो जाये, तो हम शिलाओं की आयु जान सकते हैं।

अनुसन्धानशाला में 'गाइजर काउन्टर (Gieger Counter') नामक सुग्राही (Sensitive) यन्त्र की सहायता से युरेनियम की विघटन गति निकाली गई और यह भी ज्ञात किया गया कि युरेनियम के विघटन की गति समान रहती है, दबाव तथा तापक्रम का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

पृथ्वी की आयु जानने के लिए पृथ्वी पर सबसे पहली बनी चट्टानों की उम्र जाननी होगी। किसी भी शिला की आयु उसमें विद्यमान 'सीसे' को नापने से जानी जा सकती है, क्योंकि ज्यों ही शिलाएँ बनी, तभी से सीसा शिलाओं के अन्दर विद्यमान तेजोद्गर पदार्थों के चारों तरफ जमा होने लगा। इस प्रकार सीसे की मात्रा ज्ञात होने पर तथा तेजोद्गर पदार्थों की विघटन गति जान लेने पर वैज्ञानिकों ने बहुत सी शिलाओं की आयु निकाली और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्राचीन से प्राचीन शिलाएँ आज से लगभग २०००, ०००, ००० वर्ष पहले बनीं।

इसलिए हमारी पृथ्वी की आयु २०००, ०००, ००० वर्ष से भी कहीं अधिक हुई। क्योंकि हमारी पृथ्वी पहले आग के गोले की भांति गरम, एक तरल अग्निमय पदार्थ का पिंड थी। धीरे २ इसी तरल पिंड के ठन्डा होने से ही शिलाओं का जन्म हुआ। अनुमान है कि पृथ्वी को इस अवस्था में पहुँचने में लगभग दस या बीस हजार वर्ष अवश्य लगे होंगे। इसी कारण पृथ्वी की आयु २०००, ०००, ००० वर्ष से अधिक निर्धारित की गई। हर्ष की बात है कि वैज्ञानिक निष्कर्ष और सूर्य सिद्धान्त में लिखित कल्प की आयु एक दूसरे के बहुत निकट है।

इधर वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ तेजोद्गर पदार्थों के हमारे ज्ञान में भी वृद्धि हुई। सन् १९४६ में प्रोफेसर नीयर (Nier) की गवेषणा ने हमारे 'सीसे' सम्बन्धी ज्ञान को बहुत आगे बढ़ाया। आपने बतलाया कि 'प्राथमिक सीसा (Primal lead) से तेजोद्गर सीसा द्वारा दूषित होने के पश्चात ही साधारण सीसा बना।' प्रोफेसर आर्थर होम्स (Arthur Holmes) ने नीयर की खोज को ध्यान में रखकर पृथ्वी की आयु मालूम की। उनके विचार में पृथ्वी लगभग ३०००, ०००, ००० वर्ष पहले बनी। प्रोफेसर होम्स की यह गणना वैज्ञानिक क्षेत्र में आज सर्वमाननीय है।

भारतीय कोयला-क्षेत्र की शिलाएँ

(पृष्ठ १०२ का शेषांश)

पाया जाता है। इस वर्ग की शिला को बाराकर सोपान पर भी सीधे अवस्थित कहीं पाया जा सकता है। पांचेत स्तरवर्ग की शिलाओं की कुल मोटाई डेढ़ सहस्र से दो सहस्र फीट तक होगी। ये रानीगंज कोयले क्षेत्र में रानीगंज सोपान की शिला पर अवस्थित हैं तथा पांचेत की पहाड़ी नाम से ज्ञात हैं। इनमें कोयला कहीं नहीं पाया जाता। झरिया कोयला क्षेत्र में इस शिला-वर्ग का सर्वथा अभाव है किन्तु अन्य कई स्थलों पर इसके समकालीन या समरूपी स्तर मिलते हैं। वर्धाघाटी में मांगली स्तरपट्टी लाल पीली बालुकाशिला से निर्मित है। उसे प्रस्तरावशेष के प्रमाणों पर पांचेत स्तरवर्ग की शिला कहा जा सकता है। आसनसोल के उत्तर-पश्चिम मैटूर के पास पांचेत की निचली पट्टी में वानस्पतिक अवशेष प्रचुर मात्रा में पाए गए हैं। *

[जगपति चतुर्वेदी]

* "कोयले की कहानी" से

सौर जगत की उत्पत्ति

पुष्कर सिंह बी० एस-सी० (आनर्स)

जगदोत्पत्ति—सौर जगत की उत्पत्ति का विज्ञान माया वादिक गौरव के विषय को उठाता और सुलझाता है। इसी के फलस्वरूप सृष्टि क्रम शताब्दियों तक अनात्मवाद और विज्ञानवाद के बीच विवादजनक रहता आया है और रहेगा। वह समय व्यतीत हो गया जब गियारडेनो ब्रूनो को बात की बात में जला दिया गया था फिर भी मध्यम श्रेणी के वर्तमान वैज्ञानिक, विज्ञान को क्रियावाद के अंधकार में रखना चाहते हैं।

प्राचीन महर्षियों ने अपने अनुभावानुकूल सृष्टि-निर्माता को किसी विशेष सर्वव्यापी अनन्त चैतन्य शक्ति के रूप में माना है। उस आदि शक्ति को ईश्वर और मनुष्य की चेतना शक्ति को आत्मा कहा गया। उपनिषद में यह स्पष्टतः लिखा है—"बहु स्यां प्रजायेय"—मैं अनेक बन जाऊँ; मैं अपने को अनेक रूपों में व्यक्त करूँ। ईश्वर के अस्तित्व को शंकाप्रद न रखते हुए यह भी कहा गया है—"सदेव सोम्य इदमग्र आसीत"—पहले केवल सत (अर्थात ईश्वर) ही था। सुखसागर में इसे विशद रूप में लिखा है—"माया के स्वामी परमात्मा ने अपने अनेक रूप होने की इच्छा की (एकोहं बहुस्याम०) और अपनी माया से अपने स्वरूप में प्राप्त हुए काल, कर्म, स्वभाव को ग्रहण किया। उन्हीं के द्वारा आकाश, वायु, जल, पृथ्वी और तेज उत्पन्न हुआ जिनके गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि हैं। इनके उपरान्त आत्मा, दश देव, दश इन्द्रिय, मन बुद्धि, प्राण आदि हुए। पंच महाभूत इन्द्रिय मन और सत, रज, तम तीनों गुणों और सब पदार्थ जब मिले हुए नहीं थे तब सुख भोग के साधन रूप शरीर को रचने में समर्थ नहीं हुए। पीछे भगवान की शक्ति की प्रेरणा से पंच महाभूत आदि पदार्थ एक में परस्पर मिल और कार्य कारण रूप अंश को ग्रहण कर समूह रूप और अवयव रूप, दो प्रकार के पिन्ड ब्रह्मांड रूप शरीर को रचने में समर्थ हुए। उस पिन्ड को हजारों वर्ष जल में निर्जीव पड़े रहने के बाद परमात्मा ने काल, कर्म स्वभाव में प्रवेश कर उस निर्जीव पिन्ड को सजीव किया।"

उसी के आगे विवरण में दिया है 'एक समय यह पृथ्वी प्रलयकाल में जल में डूब गई। उस समय पृथ्वी के उद्धारक बाराह रूप भगवान भयंकर दाढ़ निकाले अपने नासिका से पृथ्वी का पता लगाने के लिये सूंघते-सूंघते जल में घुसे। पाताल में पहुँच, बाराह जी ने अपने तीखे दाँतों से उस पृथ्वी को उभाड़ कर दाढ़ पर धरा और इस प्रकार दाढ़ पर उसे लेकर जल से बाहर निकले। तब भगवान बाराह ने पृथ्वी को ऊपर लाकर उसे अपने आधार पर स्थापन किया।

बाइबिल के उत्पत्ति-प्रकरण (Genesis) नामक प्रथम खंड के प्रथम अध्याय का पहला वाक्य "आरम्भ में ईश्वर ने स्वर्ग और मृत्युलोक को रचा" से शुरू होता है और सृष्टि की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए यहाँ यह दिखलाया गया है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सत्य संकल्प है; क्योंकि वहीं यह लिखा है कि ईश्वर ने कहा "प्रकाश हो जाय" और प्रकाश हो गया। इसी के सोलहवें वाक्य में लिखा है "ईश्वर ने दो बड़े प्रकाश रचे जिसमें से बड़ा प्रकाश दिन में और छोटा प्रकाश रात में उजाला करता है। उन्होंने सितारे भी रचे।"

मुसलमानों में केवल सूफियों ने इन आध्यात्मिक प्रश्नों पर विचार किया है और वे पूर्णतः अद्वैतवादी हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों की चेष्टा भौतिक पदार्थ संबंधी खोज की ओर अधिक रही है जिससे विकासवाद का उदय हुआ। यह विकासवाद सिर्फ अनुमानों और उपकल्पनाओं तक ही सीमित न रहा। रूसी वैज्ञानिक पश्चिम के वैज्ञानिकों पर एकामत का आरोप लगाते हैं। उनका कथन है कि "कोई भी विज्ञान बिना वादाविवाद और तर्क के उन्नति नहीं कर सकता है।"

वैज्ञानिक लोग संसार निर्माण का श्रेय शक्ति (Energy) को देते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि कालचक्र के अनुसार शक्ति के प्रभाव से क्रमशः परमाणुओं के आदि-स्वरूप में परिवर्तित हो जाने पर विश्व-निर्माण में असंख्य वर्ष लगे होंगे।

पृथ्वी, सौर जगत का, और सौर जगत ब्रह्मांड का एक अंश है। सौर मंडल में इस समय, सूर्य, नौ बड़े ग्रह, करीब १५०० से अधिक छोटे ग्रह, बड़े ग्रहों के चारों ओर भ्रमण करने वाले ३० उपग्रह तथा असंख्य धूमकेतुओं का समावेश है। चित्र नं० १ में सौर जगत के बड़े ग्रहों को दिखलाया गया है तथा उन्हीं ग्रहों के नीचे उपग्रहों का भी नम्बर दर्शाया गया है।

संघर्ष के कारण एक चपटे मंडल के आकार में हो गये। ये मंडल लिप्तकिरण द्वारा बहुत से अलग-अलग नीहारिकाओं में परिणत हो गये। इन नीहारिकाओं के घनीभवन से ग्रहों का निर्माण हुआ या उपग्रह सहित ग्रह बन गये। कान्ट का यह अनुमान है कि जितना ही बड़ा ग्रह होगा उतने ही अधिक उसके उपग्रह होंगे तथा उनकी केन्द्राकर्षण शक्ति भी उतनी ही बढ़ती जावगी। ग्रह सूर्य की ही दिशा में चक्कर लगावेंगे और उनका पथ सूर्य के निरद्द समक्षेत्र में होगा। अतः ये सौर जगत के क्रम को निश्चित करते हैं।

लापलास का नीहारिकावाद (Nebular Theory of Laplace):—ब्रह्मांड वाद के समान
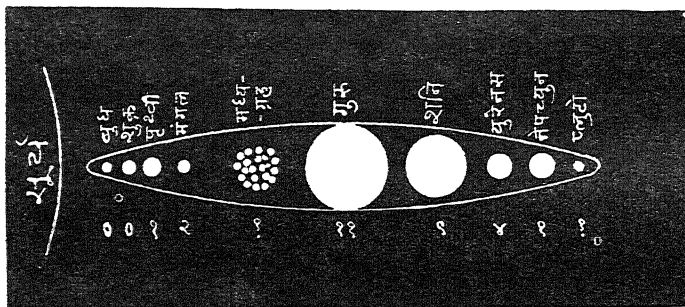
सौर मंडल के निर्माण में वैज्ञानिकों में मतभेद है। विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत किये गये वादों को हम दो श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं—(१) वे जो सौर मंडल का निर्माण आदि पिन्ड वायव्य (गैस) या नीहारिका से उद्भव की प्राकृतिक क्रिया से मानते हैं।

(२) दूसरे वे जो खगोलीय पदार्थ (Celestial body) का महासूर्य के संघर्षण से विप्लव के कारण सौर जगत का निर्माण मानते हैं। इन्हें हम यहाँ सुलभ रूप में समझाने की कोशिश करते हैं।

कान्ट और स्वीडनवर्ग का ब्रह्मांडवाद—(Theory of Universe by Kant) १७५५ ई० में कान्ट और स्वीडनवर्ग ने यह अनुमान किया कि सूर्य अपनी प्राथमिक दशा में नीहारिका के मध्य में था। ये नीहारिका केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण सूर्य के चारों तरफ चक्कर लगाते थे। नीहारिका में उपस्थित छोटे-छोटे कण परस्पर

१७९६ ई० में एक प्रसिद्ध गणितज्ञ लापलास ने अपनी पुस्तक एक्सपोजिशन डू सिस्टम डू मोन्डे (Exposition du Systeme bu Monde) में एक नीहारिका से सौर मंडल की उत्पत्ति का विवरण दिया है। इस समय लापलास, कान्ट के सिद्धांत से अनभिज्ञ था। लापलास ने नीहारिका को घूमता हुआ गर्म गैस कहा है। ये कुम्हार के चाक के समान एक ही धुरी पर घूमते हैं। अब प्रश्न उठता है कि ये नीहारिका क्या हैं। नीहारिका गैस तथा रज मिश्रित एक वृहदाकार अग्निमंडल है जो एक सीमा में घूमता है। ये नीहारिका तीन प्रकार के होते हैं—हरा नीहारिका, सर्पिल नीहारिका और श्वेत नीहारिका इनकी रश्मियों को वर्णपट पर जाँच करने के बाद इन्हें अलग अलग भागों में विभाजित किया गया है। सर्पिल नीहारिका से पृथ्वी की उत्पत्ति माना गया है। ये नीहारिका सूर्य से कई गुना बड़े तथा अरबों मील की दूरी पर हैं। इनकी दूरी का अनुमान

इनकी रश्मियों से ज्ञात होता है। रश्मियाँ एक सेकंड में १८६००० मील की गति से चलने पर भी पृथ्वी तल पर कई वर्षों में पहुँचती हैं।

ये नीहारिका धीरे-धीरे संकीर्ण होते जाते हैं। जैसे-जैसे ये पिन्ड ठंडे होकर छोटे होते जाते हैं, वैसे-वैसे इनकी परिभ्रमण गति बढ़ती जाती है। अत्यधिक वृहदाकार होने एवं परिभ्रमण गति की तीव्रता बढ़ने से नीहारिका का अकस्मात विस्फोटन होकर उसके कई अंशों में विभक्त होने का अनुमान किया गया है। कालान्तर में नीहारिका के समान उन विभिन्न अंशों की भी आकार-वृद्धि होती रही। इसके बाद नीहरिका के समान उनमें भी विस्फोटन होना अनिवार्य रहा जिस से विश्व के असंख्य तारों का निर्माण हुआ। विभिन्न स्थानों में प्राप्त उन टूटे अंशों में भी परिभ्रमण-गति पूर्ववत बनी रही। परिभ्रमण गति विशेष तीव्र होने के कारण उन वृहदाकार अग्निमंडलों में इतनी आकर्षण शक्ति नहीं थी कि वे उन टूटे अशों को अपने आकर्षण में रख सकें। इसलिये विभिन्न अंश विभिन्न स्थानों को प्राप्त हुए। अंशों में विभाजित होने पर हरएक अश की परिभ्रमण गति कुछ मन्द होना स्वाभाविक था। गति मन्द होने से उनकी आकर्षण-शक्ति में वृद्धि हुई। आकर्षण-शक्ति बढ़ने पर विभिन्न तारे एक दूसरे पर अपने आकर्षण का प्रभाव डालने में समर्थ हुए। इस प्रकार आकर्षण से प्रभावित हो एक दूसरे का निश्चित स्थान को प्राप्त होना निश्चित हुआ जो एक दूसरे के संबंध से स्थायी हो चला। इस प्रकार वैज्ञानिक आधार पर किये गये अनुमान से यह प्रतीत होता है कि सुदीर्घ काल में असंख्य तारों का निर्माण हुआ जिनका स्थान एक दूसरे के संबंध से निश्चित है। महापिन्ड का भाग संकीर्ण हो कर (चित्र नं० २) सूर्य के रूप में घनीभूत हो गया। सूर्य निर्माण का समय लगभग ७,०००,०००,००० वर्ष पूर्व बताया जाता है। अनुमान किया जाता है कि प्रति सेकंड ताप रूप में परिवर्तित होकर सूर्य की गुरुता ४,६००,००० टन कम होती रहती है फिर भी सूर्य का अस्तित्व १५,०००,०००,०००,००० वर्षों तक कायम रहना निश्चित है।

उपरोक्त वादों में कई कठिनाईयाँ हैं जैसे—**कोणीय गति का वितरण**—जब किसी कार्य ब्यूह को किसी बाह्य पदार्थ से विरोध न हो तब कुल कोणीय गति संचित रहना चाहिये परन्तु सौर मंडल में ९८ प्रतिशत कोणीय गति ग्रहों के ग्रहपथ पर हैं जिनकी मात्रा कुल मात्रा का १/७०० वाँ अंश है लेकिन सूर्य में कुछ मात्रा होते हुए भी उसकी कोणीय गति सिर्फ दो प्रतिशत है। यह एक समस्या है।

इन कठिनाइयों को हल करने के लिये लाकीयर और लिगान्डीस ने **उल्कापात उपकल्पना** दी। इसके अनुसार मूल नीहारिका को इन्होंने तारों का पुन्ज माना है। ये पुन्ज धीरे-धीरे संघर्षण के कारण ग्रहों में परिणत हो गये। उदाहरणार्थ आकाश-गंगा (Milky Way) अभी नीहारिका-पुन्ज के ही रूप में हैं जो कालान्तर में तारागण बन जायेंगे।

डा० लेटिमर ने हाल ही में (१९५०) ठंडे ब्रह्मांड रज से पृथ्वी तथा सौर मंडल का निर्माण बताया है। यह कान्ट के वाद से मिलता जुलता है। ब्रह्मांड रज से भरे बादल छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित थे। यह लिप्तकिरण का प्रथम चरण था।

उस समय में ब्रह्मांड रज जिससे कि पृथ्वी बनी है वर्तमान समय से १०,००० गुना अधिक था और वे रज भिन्न-भिन्न भार के थे। केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण यह रज ठोस रूप में इकट्ठा होने लगा तथा गैस उसमें से निकलकर बाहर छितर गया। चूंकि रजों के भार भिन्न-भिन्न थे, वे अलग-अलग गति से गिरने लगे। धातुमिश्रित रज अधिक भार-स्वरूप होने के कारण पृथ्वी के अन्तरिक्ष भाग में बैठ गया तथा कम भार वाले सैकित रज और बसाल्ट (Basalt) रज ने पृथ्वी की उपरी पपड़ी का निर्माण किया। इस दशा में पृथ्वी क्षिति, जल और पावक से शून्य थी।

परन्तु इस ब्रह्मांड रज में बहुत से पोटेशियम, यूरेनियम तथा अन्य रेडियमधर्मा तत्व मिले थे। इन रेडियम-धर्मा तत्वों से ताप का वियोजन हुआ। इस ताप की मात्रा, बादलों के लिप्तकिरण के १५००,००० साल के उपरान्त २००० डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुँच गई। इस वियोजित ताप के कारण रसायनिक प्रक्रिया शुरू हुई तथा उसमें से शक्ति उत्पन्न हुई। इन्हीं क्रियाओं के कारण पृथ्वी में जल, थल, क्षिति, पावक और पहाड़ का निर्माण हुआ।

डा० लेटिमर का कथन है कि करीब आधे ब्रह्मांड रज के घनीभूत होने से ग्रह और तारों का निर्माण हुआ है और करीब आधे ब्रह्मांड रज अभी मौजूद हैं जिससे कि नये निर्माण जारी हैं।

रूसी वैज्ञानिक ओ० वाय० स्मिट (O. Y. Schmidt) ने १९४४ ई० में सौर जगत की उत्पत्ति के बारे में एक उपकल्पना दी। अप्रेल १९५१ में रूसी वैज्ञानिकों ने इस उपकल्पना पर बहस किया जिसका एक सार रूप यहाँ पर दर्शाया जाता है। ग्रहों के निर्माण के पूर्व बादलों के बारे में बतलाया कि ये बादल गैस और रज से भरे हुए हैं। सूर्य ने एक विरला नीहारिका से गुजरते समय इन बादलों को पकड़ा। ये नीहारिका तारामध्यावकाश में उपस्थित हैं जो काली रात में सितारों के सदृश दिखते हैं। ये नीहारिका भीमकाय आकार के हैं लेकिन इनका घनत्व कम है। इनका व्यास अरबों मील है और इनके गैस का घनत्व इतना है कि एक वर्ग से० मी० आयतन में कई परमाणु हैं (एक घन से० मी० हवा में परमाणु का नम्बर अंक के साथ १९ शून्य सहित रहता है) नीहारिका में सूक्ष्मदर्शीय रजकण कई किलोमीटर (सहस्रमान) की दूरी पर रहते हैं।

ये वृहदाकार बादल सूर्य के चारों तरफ एक आवरण बनाये रहे। कुछ समय पश्चात यह रज और गैस बन मिश्रण अलग होने लगा। राज-कण वजनी होने के कारण मध्य में इकट्ठा होने लगा। इसके फलस्वरूप एक चपटा गोलाकार पिन्ड बन गया। यह वृत्ताकार पिन्ड, अपनी गति शक्ति खो रहा था और उसे ताप में परिणत कर रहा था। यह वृत्ताकार पिन्ड धीरे-धीरे क्षीणकाय होने लगा और अंत में अरबों केन्द्रक में विभाजित हो गया। केन्द्रकों में लिप्त किरण द्वारा वृद्धि होने लगी तथा धीरे धीरे ठोस होने लगे। ये फिर एक दूसरे से मिलने लगे और लिप्तकिरण के अंत में दस बड़े ग्रह और उपग्रह बन गये।

छोटे पिन्ड घनीभवन के पहले अंडाकार पथ पर भ्रमण किया करते थे, परन्तु जब ये पिन्ड एक दूसरे में मिलने लगे और ग्रह के रूप में बन गये तब उनकी औसत गति अंडाकार से वृत्ताकार पथ में बदल गई। छोटे पिन्ड अभी तक अन्डाकार पथ पर ही घूमते हैं।

इस वाद से स्मिट ने ग्रहों के दो भाग बाह्य और अन्तरीय को भी सिद्ध किया। अन्तरीय ग्रह (बुध, शुक्र पृथ्वी और मंगल) छोटे छोटे ठोस तत्वों से बने हैं और इसीलिये इन ग्रहों में हम हाइड्रोजन, हिलियम, नाइट्रोजन गैस कम तादाद में पाते हैं। पृथ्वी पर पानी में जो हाइड्रोजन हैं वह नहीं के बराबर हैं। इसके विपरीत बाह्य ग्रह (वृहस्पति शनि, यूरेनस, नेपच्यून) ब्रह्मांड रज से निर्मित हैं। इनका ताप सूर्य से बहुत दूर होने के कारण परम शून्यांक पर था। इसके कारण गैस उनमें जम गया और इसीलिये अत्यधिक गैस होने के कारण इन ग्रहों का घनत्व अन्तरीय ग्रहों के घनत्व से कम है।

चेम्बरलेन की ग्रहाणु-उपकल्पना (Planetesimal Hypothesis of Chamberlain and Moulton):—१९०४ ई० में चेम्बरलेन और मोल्टन ने इस उपकल्पना के अनुसार सौर जगत का निर्माण एक उपकल्पना से माना है जो या तो बहुत ही महीन शिलापिन्डों से निर्मित है या तरल पदार्थ से रचा है। ऐसा अनुमान है कि जिस समय सूर्य का अस्तित्व निश्चित हुआ, उस समय उसकी अवस्था दृढ़ नहीं थी। उसी समय में, जब कि सूर्य छिन्न भिन्न अवस्था में था, उसके समीप से एक दूसरे तारे की गति की सम्भावना निश्चित प्रतीत होती है। इस दूसरे तारे के आकर्षण-प्रभाव से प्रभावित हो, सूर्य तथा आक्रमणकारी तारे में विस्फोटन हुआ (चित्र नं० ३)। इस विस्फोटन के फल स्वरूप सूर्य कई अंशों में विभक्त हुआ जिससे इस सौर मंडल का निर्माण हुआ उसके समीप से चलने वाला तारा जब बहुत दूर निकल गया, तब सूर्य अपने इन भग्न अंशों को अपनी ओर आकृष्ट रखने में समर्थ हुआ जो इस परिवर्तन के समय में विभिन्न स्थानों को प्राप्त हो चुके थे। उन्हीं अंशों को ग्रह कहा जाता है। सूर्य के आकर्षण से प्रभावित होने के कारण विभिन्न ग्रहों का स्थान निश्चित हुआ और उनकी परिभ्रमण गति उसी आकर्षण द्वारा संचालित होती रही।

जीन्स और जेफरी का ज्वार-भाटा सिद्धांत (Tidal Theory of Jeans and Jeffreys)

जेफरी और जीन्स का कथन है कि सूर्य पहले बहुत ही वृहदाकार था। उसके समीप से एक दूसरे तारे की गति से सिगार के रूप में विस्फोटन हुआ। चित्र नं० ४ में तारे का पथ बिन्दु लकीर से दर्शाया गया है तथा सूर्य में तीन अवस्थाओं में परिवर्तन दिखाया गया है। इस सिगार रूपी ज्वार भाटा का मध्य भाग बहुत मोटा था। यह ज्वार भाटा अस्थिर होने के कारण विभिन्न अंशों में विभक्त हो गया। अंशों में विभाजित होने पर हरएक अंश की परिभ्रमण गति कुछ मन्द होना स्वाभाविक था। उन्हीं भग्न अंशों को ग्रह कहा जाता है। इनमें मध्यवाला ग्रह बड़ा, तथा इसके दोनों पार्श्व के ग्रह छोटे होते जायेंगें जैसा कि सौर जगत के चित्र में दर्शाया गया है। इन्हीं ग्रहों से, जब ये आंशिक लिप्तकिरण की हालत में थे, सूर्य के इर्द गिर्द पहुँचने पर, विस्फोटन हुआ जिससे उपग्रहों का निर्माण हुआ। इसके बाद जेफरी ने फिर इसमें बाद में कुछ रद्दोबदल की और उसे संघर्षण-वाद नाम दिया। लेकिन यह वाद कोणीय-गति की नित्यता (Conservation of angular momentum) को साबित नहीं कर सकता।

इसको सुलझाने के लिये रसल (Russell ने बतलाया कि सूर्य पहले एक द्विक तारा (Binary star) था परन्तु मित्र तारा सूर्य से छोटा था तथा सूर्य का चक्कर लगाता था। दूसरे तारे ने सूर्य से घर्षण करने के बजाय, मित्र तारे से संघर्षण किया। इस दूसरे तारे के संघर्षण से मित्र-तारा में विस्फोटन हुआ। इस विस्फोटन के फल स्वरूप मित्र तारा कई अंशों में विभक्त हुआ, जिससे इस सौर मंडल का निर्माण हुआ।

लिटलन (Lyttleton) ने इन सबसे एक अद्भुत वाद प्रस्तुत किया। सूर्य पहले एक त्रिगुण नक्षत्र से बना था जिसके दो मित्र तारे बहुत ही समीप थे। इनकी मात्रा तारामध्य पदार्थ के संयोग से बढ़ने लगी। अंत में दोनों समीपवर्ती तारे एक ही में मिल गये। परन्तु दोनों तारों की कोणीय-गति अधिक होने के कारण उनमें इतनी आकर्षण शक्ति नहीं थी कि वे अपने अंशों को अपने आकर्षण में रख सकें। इसीलिये ये दो स्वतंत्र भागों में विभक्त हो गये। कुछ दैविक परामर्श के कारण दोनों भग्न अंश एक "शेष" (Splash) छोड़कर सुदूर दिशा को चले गये। इस "शेष" से ग्रह और उपग्रहों का निर्माण हुआ।

सन् १९४४ ई० में एक आंग्ल देशीय ज्योतिषी होयल (Hoyle) ने एक वाद का अन्वेषण किया जिसे सुपरनोव्हा विस्फोटवाद कहते हैं। उनका कथन है, "हम नीले आकाश में रात को बिना किसी यंत्र की सहायता से करीब करीब २००० तारों को एक साथ देख सकते हैं। इन तारों के समूह को आकाश-गंगा कहते हैं। इसका आकार एक मंडल के समान होता है। जब हम आकाश-गंगा की तरफ टेलीसकोप या दूरबीन से देखते हैं तो हमें उन तारों के बीच खाली जगह दिखलाई पड़ती है। वास्तव में यह जगह खाली नहीं हैं वरन हाइड्रोजन गैस- और रजकण से भरी है। यह खाली जगह तारामध्यावकाश (Inter-stellar space) कहलाती है।

ज्योतिषियों का अनुमान है कि ये आकाश-गंगा सबसे पहले गैस का एक घूमता हुआ मंडल था और उसमें कोई तारे नहीं थे। इस तरह के मंडल को गणिताचार्य अस्थिर गुरुत्वाकर्षण कहते हैं याने केन्द्राकर्षण खिंचाव की ताकत उनमें असमानता ला देती है। इस अस्थायीपन के फलस्वरूप, गैस बहुत से असमान बादलों में विभक्त हो गया। केन्द्राकर्षण के कारण लिप्तकिरण भी असमान होती है। इस घनीभवन किया के अनेकों बार होने से अंत में एक प्रगाढ़ घनीभवन होता है जिसे हम तारा कहते हैं।

जैसे जैसे घनीभवन संकीर्ण होता जाता है वैसे वैसे उसका अन्तरीय ताप बढ़ते जाता है और जब ताप बहुत बढ़ जाता है, तब अन्तरिक्ष में शक्ति उत्पन्न होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि हाइड्रोजन परमाणु-परिवर्तन के कारण हिलियम में बदल जाता है। इस परमाणु-परिवर्तन में चार हाइड्रोजन मिलकर एक हिलियम परमाणु बनाते हैं तथा परमाणु की अधिकता (०'०२९ ग्राम) ताप रूप में परिणत होती है। इसी ताप के कारण तारे चमकते हैं। एक ऐसी स्थिति आती है जब यह संचित शक्ति तारे से निकलने वाले विकिरण रश्मि को बराबर कर लेती है, तब तारों की संकीर्णता बंद हो जाती है और हम सूर्य के समान धधकता हुआ तारा पाते हैं।

इस तारामध्य गैस में अधिकतर ज्वार भाटा और तरंगें उठने के कारण, तारा गैस में घूमने लगता है परन्तु तारा और गैस की इस तरह की आपेक्षिक गति, आकाश-गंगा में चारों ओर की भ्रमण-गति से कम होती है, इसीलिये तारा गैस में घूमने के बजाय उसमें से बाहर भागता है। भागते समय, वह तारा अपने साथ और अन्य तारों को भी ले भागता है। तारा के केन्द्राकर्षण क्षेत्र वृहत होने के कारण उसमें गैस दूर दूर से आकर मिल जाते हैं और गैस में एक बड़ा सुरंग बन जाता है। सुरंग की चौड़ाई तारे के आकार से कहीं बड़ी होती है। सुरंग का व्यास, तारा की गति पर निर्भर है। जितनी कम गति होगी उतनी बड़ी सुरंग होगी और जितनी अधिक गति होगी उतनी छोटी सुरंग होगी। इसलिये तारा कम गति पर अधिक से अधिक गैस इकट्ठा करता है। इस सुरंग बनाने की क्रिया से तारों में बहुत से गैस इकट्ठा हो जाते हैं और कम से कम गति, करीब ५००० मील प्रति घंटा पर बड़ा से बड़ा तारा बनेगा।

ये आकाश-गंगा, हमारी दृष्टि से ओझल होते जाते हैं। कालान्तर में ऐसे कई प्रकाश-गंगा ओझल हो गये, हो रहे हैं, और होते रहेंगे। इस ओझल होने में करीब १०,०००,०००,००० वर्ष लग जाते हैं। नये आकाश गंगा का फिर से निर्माण होता है और यह क्रिया इसी तरह चक्रित में चलता रहता है।

आकाश गंगा में गैस के संयोग से एक वृहदाकार तारा निर्मित होता है जिसे सुपरनोव्हा या महान विस्फोटन तारा (King-size exploding Star) कहते हैं। इस सुपरनोव्हा के विस्फोट होने से इसकी अप्रतिम प्रतिमा बढ़ जाती है। इस तरह का विस्फोटन यदि लाखों परमाणु-बम और हाड्रोजन बम से किया जाय, तो न होगा क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण केलिफोर्निया की प्रयोगशाला द्वारा किया गया है। पिछले तीन सुपरनोव्हा विस्फोटन १०५०, १५६२ और १६०४ ई० में हुए थे और चौथा अब होने वाला है। १०५४ ई० के सुपरनोव्हा विस्फोटन से कर्कट नीहारिका (Crab Nebula) का निर्माण हुआ है। (चित्र ५) इस सुपरनोव्हा का विस्फोट इतना विशाल है कि १५०४ ई० में विस्फोटित सुपरनोव्हा—करीब ६ शताब्दी पहले जिसे एक चीनी ज्योतिषी ने देखा था—को हम केलीफोर्निया के माउन्ट पैलोमर के २००" व्यास वाले दूरबीन से अवलोकन कर सकते हैं। इस सुपरनोव्हा का गैस करीब ८०० मील प्रति सैकड़े की चाल से लोप हो रहा है और एक समय आयगा जब यह शून्य आकाश में विलीन हो जायगा और अंत में सिर्फ एक टिमटिमाता हुआ तारा रह जायगा।

अब प्रश्न उठता है सुपरनोव्हा का विस्फोटन क्यों हुआ। कुछ ज्योतिषियों का ख्याल है कि ये विस्फोटन, परमाणु बम के समान एक केन्द्रीय प्रक्रिया (Nuclear-Chain-Reaction) है।"

हॉयल के इस पूरे लेख को पढ़ जाने के बाद, पाठक के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या आकाश-गंगा के निर्माण करने वाले हाड्रोजन गैस का कभी अन्त नहीं होता है। हायल के अनुसार यह गैस अनन्त है।

परन्तु १९४६ में हेलेन और मिलने (Milne) नामक वैज्ञानिकों ने क्वान्टम-वाद के अनुसार अन्तहीन हाइड्रोजन गैस को उद्जन कहा है। उन्होंने यह मत प्रतिपादित किया कि शक्ति का अपशोषण या विकिरण कवान्टा या "गठरियों" के रूप में होता है। विश्व-निर्माण एक शून्य अर्धव्यास से शुरू हुआ जब कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड का व्यास एक्स-किरण (X-Ray) या गामा-किरण की तरंग-लम्बाई से छोटा था। इस समय विकिरण या अपशोषण वृहत क्वान्टा या गठरियों के छोटे तरंगों से होता था। इनमें से एक क्वान्टा की शक्ति इतनी होती है कि वह सूर्य से एक या एक से अधिक ग्रह छीन सके। इसके पूर्ववत, इन तरंगों से छोटे तरंगों में इतनी शक्ति रही होगी कि वे तारे छीन सकें और इससे भी पहले वे आकाश गंगा और आदि मूल तत्व हाइड्रोजन छीन सकने में समर्थ रहे होंगे।

अल्फफेन का वैद्युत-चुम्बकीय वाद (Electro-Magnetic Theory of Alfven)—१९४२ में अल्फफेन ने एक बहुत ही रोचक सिद्धान्त विद्वानों के सम्मुख रखा जो सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र पर निर्भर है। अल्फफेन यह अनुमान करते हैं कि वैद्युत-चुम्बकीय शक्ति ने सौर-जगत के निर्माण में अधिक सहायता दी है। वे यह बतलाते हैं कि सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र का दबाव एक

वैद्युत आवेश कण पर सूर्य के गुरुत्वाकर्षण शक्ति की अपेक्षा अधिक होता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि एक प्रोटीन या धन कण पृथ्वी के भ्रमण-पथ पर उसी गति से घूम रहा है जिस गति से कि पृथ्वी घूम रही है। सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र से उत्पन्न (४० गास के करीब) विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र, केन्द्राकर्षण शक्ति से करीब ६०,००० गुना अधिक है यहाँ तक कि प्लुटो में २५० गुना अधिक है। अल्फफेन यह अनुमान करते हैं कि सूर्य अपने परिभ्रमण समय में एक नीहारिका या तारामध्य गैस के बीच से गुजरता है और उससे चारों तरफ से आच्छादित हो जाता है। नीहारिका इस समय उदासीन परमाणुओं से भरा है। सूर्य की केन्द्राकर्षण शक्ति के फलस्वरूप परमाणु सूर्य की ओर तेज गति से चलते हैं जिससे कि सूर्य के आस-पास ताप की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। जब परमाणु-शक्ति, आयनीकरण शक्ति के बराबर हो जाती है तब परमाणु आयनीकृत हो जाते हैं। आयनीकरण हो जाने के पश्चात् हमें ऋण-आवेश इलेक्ट्रन और धन-आवेश आयन का मिश्रण प्राप्त होता है। ऐसी हालत में सारे कार्य-व्यूह में परिवर्तन हो जाता है क्योंकि यही विद्युत-चुम्बकीय शक्ति प्रचुर मात्रा में रहती है। (चित्र न० ६)

सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र आयनीकृत बादल में विद्युत-प्रवाह उत्पन्न करते हैं इसका असर वही होता है जो चुम्बक के दोनों छोर पर एक धातु की पट्टी दमन का काम करती है। बादल सूर्य के रुकावट के बदौलत अपने परिभ्रमण की दिशा में त्वरित होता है। कोणीय वेग सूर्य से बादल में संचार करते हैं। अल्फफेन के अनुसार करीब १००,००० साल में कोणीय वेग सूर्य से बादल में १० प्रतिशत संचार करता है। वे यह भी बतलाते हैं कि सूर्य के वृहत विस्तार पर वियोग का असर अधिक होता है क्योंकि यह स्वतः सिद्ध है कि सूर्य अपने निरक्ष से ध्रुवों पर कम गति से चक्कर खाता है।

जब एक परमाणु आयनीकृत हो जाता है, तब सूर्य की तरफ उसकी गति रुक जाती है। धन-आवेश आयन विवश होकर चुम्बकीय बल रेखा के साथ चलते हैं जब तक कि वे सूर्य के निरक्ष क्षेत्र पर समतुल्य न हो जांय। अल्फफेन यह दिखलाने में समर्थ हुए हैं कि युक्त अनुमान के परमाणु-भार और आयनीकरण शक्ति वाले परमाणु निरक्ष मंडल में किस तरह बँट जावेंगें। उन्होंने यह भी दिखलाया कि सूर्य से जुपिटर या बृहस्पति की जितनी दूरी है उतनी दूरी पर पिन्ड की मात्रा सबसे अधिक एकाग्र रहेगी। पिन्ड वितरण करीब-करीब चार बड़े-बड़े ग्रहों के पिन्ड वितरण से मिलता जुलता है। उनका अनुमान है कि इस तरह निरक्ष क्षेत्र पर पहुँचने के उपरान्त धन-कण और ऋण कण मिल जाते हैं और घनीभवन की क्रिया शुरू होती है। पहले ग्रहाणुओं में, फिर ग्रहों में बदलते हैं।

यह विचार युक्त प्रतीत होता है कि ग्रहों के इस तरह निर्माण होने के बाद वे स्वंय चुम्बकीय गुण प्राप्त कर लेंगें और शेष परमाणुओं में फिर से वही मूल क्रिया शुरू होती है जिससे कि उपग्रहों का निर्माण होता है। यह क्रिया बृहस्पति के लिये उतनी ही दूरी पर होती है जितनी दूरी पर कि उनके चार बड़े-बड़े उपग्रह हैं। शनि के विषय में यह क्रिया ऐसी सीमा (Roche's limit) से कम दूरी पर होती है जिससे कि कोई घनीभवन क्रिया नहीं होती। इसी से उसके वलय का निर्माण प्रतीत होता है। यूरेनस और नेपच्यून के लिये विवेचनात्मक दूरी उतनी ही है जितनी की उनके अर्धव्यास की लम्बाई। इसलिये उनमें कोई उपग्रह नहीं हो सकते हैं। अल्फफेन के इस अनुमानित मूल क्रिया से सौर-मंडल का निर्माण तथा उनके उपग्रहों का अस्तित्व सिद्ध होता है।

पार्थिव ग्रह और बड़े ग्रहों के बाह्य उपग्रहों के लिये दूसरी विधि का अनुमान किया गया है। सत्याभासक अनुमान यह है कि नीहारिका सिर्फ गैस से नहीं बल्कि टूटे हुए तारों के रज कण के स्वरूप ठोस तत्वों से भी बना है। अल्फफेन का अनुमान है कि ये ठोस तत्व अपने भार के कारण, परमाणुओं की अपेक्षा, चुम्बकीय क्षेत्र में शीघ्र ही प्रवेश करते हैं। ये सूर्य के बहुत ही निकट पहुँच जाते हैं उस समय सूर्य की गर्मी के कारण ये वाष्प रूप में परिणत हो जाते हैं। वाष्प रूप में परिणित होने के बाद ये वाष्प आयनीकृत हो जाते हैं और वैद्युत-आवेश कण अन्तरीय बल रेखाओं के साथ बहिष्कार किये जाते हैं। इनमें से कुछ तत्व पार्थिव ग्रह बनाने में और

कुछ बाह्य-ग्रहों के बाहरी उपग्रह बनाने में समर्थ होते हैं। यह सिद्धान्त देखने में सत्य प्रतीत होता है लेकिन वह कहाँ तक सफल हो सकेगा यह भविष्य के वैज्ञानिकों की खोजों पर निर्भर है।

फ़ान वायजेकर का जल गति वाद (Hydro-dynamical theory of Von Weizsacker)–यह वाद ब्रह्मांड-वाद का सुधार है। इस अनुमान को फान वायजेकर का जलगति शक्तिवाद कहते हैं। इसके पहले कि हम इस वाद को आप के समक्ष रखें, इसे प्रयोग के रूप में समझाना ठीक समझते हैं। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि बाल्टी में आधा पानी है। इसमें आप चार पाँच बूँद तेल डालिये। आप देखेंगे कि तेल हल्का होने के कारण, पानी की सतह के ऊपर गोल-गोल बुल-बुले बनाता है। अब उस बालटी के पानी को खूब जोर से मथिये। आप अवलोकन करेंगे कि ये तेल के बुलबुले कुछ समय के लिये अंडाकार हो जाते हैं और उसमें से छोटे-छोटे कण निकलते हैं। इसका कारण यह है कि परिभ्रमण गति तेज होने से कोणीय भरवेग बढ़ जाता है जिसके कारण ये अंश विलग होते हैं। गौर से देखने से विदित होगा कि ये अंश उस मध्य वाले बुलबुले का चक्कर लगा रहे हैं, साथ ही साथ ये अंश अपने कक्ष पर भी परिभ्रमण करते हैं। इस समय आप अभिवर्द्धक लैन्स से सूक्ष्म अवलोकन करिये तो आप देखेंगे कि इन छोटे अंशों से भी और छोटे-छोटे अंश विभक्त हो रहे हैं। ये अंश अपने मध्य वाले अंश के चारों तरफ चक्कर लगा रहे हैं, साथ ही अपने कक्ष पर परिभ्रमण कर रहे हैं। इसी प्रयोग के सहारे फ़ान वायजेकर सौर-जगत की उत्पत्ति को सुलझाने में सफल हुए हैं। (चित्र नं० ७]

यह अनुमान किया जाता है कि सूर्य अपने ग्रह निर्माण के पहले एक गाढ़े तारामध्य -बादल के बीच से गुजरता है। इस स्थानीय बादल का रसायनिक संगठन वही है जो कि सूर्य का याने हाइड्रोजन और हीलियम। सूर्य. पथ में गुजरते समय, परमाणु पुंज और रज-कण का आवरण बना लेता है। ये सब केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण सूर्य के चारों ओर स्वतन्त्र पथ पर भ्रमण करते हैं परन्तु इन ग्रह पथों का क्षेत्र बिखरे तरीके में वितरित है। इस आवरण की मात्रा करीब-करीब सूर्य का $\frac{1}{10}$ अंश है।

आवरण के अन्दर अन्तरीय संघर्षण के कारण, कणों के पथ का आकार और स्थिति बदलकर सूर्य के निरक्ष क्षेत्र के आसपास वृत्ताकार में हो जाता है। इस परिवर्तन के फल स्वरूप एक मंडल का निर्माण होता है, जिसका व्यास सौर मंगल के व्यास से तुलनात्मक है तथा उसकी मुटाई व्यास का $\frac{1}{10}$ अंश है। तत्वों का ताप सूर्य की विकिरण राशि पर निर्भर रहता है इसलिये समान दूरी वाले ग्रहों और तत्वों का ताप एक ही रहता है।

मंडल के उद्भव के इस चरण में भी कण अपने केन्द्राकर्षण पथ पर स्वतन्त्रता पूर्वक विचरते हैं इसलिये सूर्य के नजदीकवाले हिस्से की कोणीय गति दूर वाले हिस्से से अधिक होगी। इस समय गाढ़ा-बल (Viscous-force) के फलस्वरूप दूर वाले भाग और नजदीक वाले भाग की परिभ्रमण गति समान हो जाती है। इस क्रिया से कोणीय भरवेग धीरे धीरे अन्तरिक्ष से बाहर आता है। इसका सचित असर यह होता है कि आवरण धीरे धीरे तारा-मध्यावकाश में परिवर्तित हो जाता है। इसके फलस्वरूप वह अंश जिसका कोणीय भरवेग औसत से अधिक होता है, लोप हो जाता है और मध्य में सिर्फ एक घूमता हुआ महापिन्ड बच जाता है जो तीव्र गति से घूमने वाले गैस के बादलों से घिरा रहता है जिसकी भ्रमण गति महापिन्ड की मात्रा से जानी जा सकती है तथा जो केपलर के तीसरे गति-नियम का अनुगामी है। इस तरह से फान वायजेकर ने कोणीय गति की कठिनाई को दूर किया।

परन्तु इसी समय एक रोचक परिवर्तन होने का अनुमान किया जाता है। यह सिद्ध किया जाता है कि इसी समय विप्लव शुरू होता है और समान गति वाले कण जलभंवर के रूप में इकट्ठा हो जाते हैं। ये जलभंवर समान गति से चलने के लिये एक वृत्ताकार में बन जाते हैं जिससे कि प्रणाली में स्थिरता रहे। सबसे स्थिर बनाव वह होगा जिसमें कि अयुग्म जलभंवर होंगे। वायजेकर के अनुसार एक वृत्ताकार में पाँच जलभंवर सबसे स्थिर रहेंगे। जल-भंवरों के इस बनावट से वृत्तों का अर्धव्यास एक ही रहेगा ताकि बोड के नियम का पालन होगा।
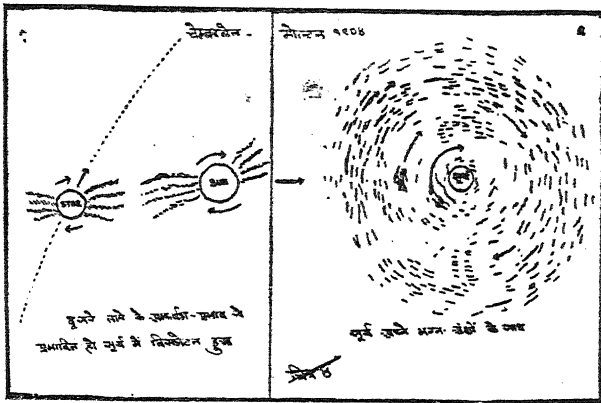
चित्र ३
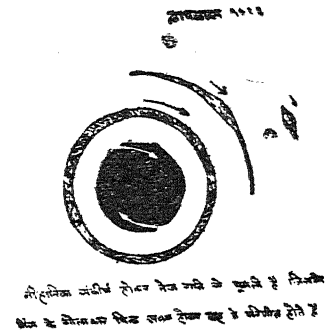
चित्र २
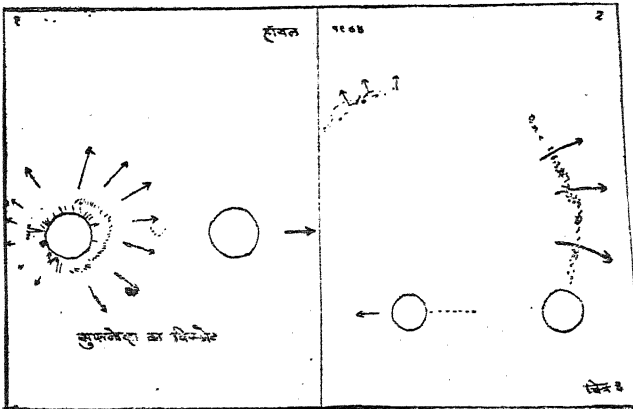
चित्र ५

चित्र ४
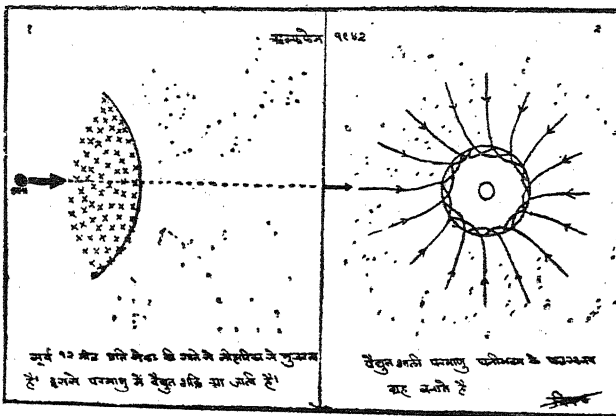
चित्र ६

चित्र ७

जल-भंवरों की इस तरह वृत्ताकार बनावट से, आसपास के जलभंवर वृत्तों में तेजगति-ढलाव होगा जिससे कि बृहत गाढ़ा वल पैदा होगा तथा विप्लव बढ़ेगा। फिर इनमें सहायक भंवर उत्पन्न होंगें जिनकी भ्रमण-दिशा जलभंवरों की भ्रमण दिशा के विपरीत होगी। वायजेकर का कथन है कि जलभंवर की अपेक्षा सहायक भंवर में घनीभवन सुलभ होगा। यह विवाद विभिन्न कणों के औसत स्वाधीन पथ पर निर्भर रहेगा। जलभंवरों का औसत स्वाधीन पथ सहायक भंवरों के औसत स्वाधीन पथ से बड़ा होगा ताकि जलभंवर और सहायक भंवरों के बीच ले जाये जाने वाले कणों के आकार की एक सारिणी होगी। इसलिये घनीभवन पहले सहायक भंवर में शुरू होगा। पहले घनीभवन के कारण केन्द्रक बनेगा जो परमाणुओं के चिपकने से वृहदाकार होगा और फिर बाद में केन्द्राकर्षण खिंचाव के कारण पिन्ड की वृद्धि होगी। ये सब सहायक भंवरों का वृत्त अंत में एक ग्रह बनावेंगें।

ग्रहों के निर्माण के बाद, वे एक वृहत वातावरण से घिर जावेंगें। इन वातावरणों में उपरोक्त घटित कथन फिर से शुरू होगा जिससे कि उपग्रह बनेंगें।

टेर हार (Ter Haar) ने इस ग्रह निर्माण की विधि का और भी सुलभ रूप में विश्लेषण किया है। घनीभवन केन्द्रक बनाने के लिये यह जरूरी है कि बड़े कणों के वाष्प-दबाव, गैस के दबाव से कम हों जिससे कि वाष्पीकरण की अपेक्षा घनीभवन अधिक हो। यह क्रिया वर्षा की बून्दों के बनावट के समान है। वे यह दिखलाते हैं कि घनीभवन ताप पर निर्भर है। सूर्य के विकिरण से तत्वों का आयनीकरण नहीं होगा, फलस्वरूप बादलों में ताप का वितरण सूर्य के विकिरण से संचालित होता है। ताप, सूर्य से बाहर की ओर कम होता जायगा। बाहरी भाग में पानी, अमोनिया, कार्बनद्विओषिद इत्यादि घनीभूत होंगें परन्तु अन्तरीय भाग में सिर्फ वजनी धातु के ओषिद तथा अन्य अकार्बनिक संयोग घनीभूत होंगे। इस तरह संहनन के प्रथम चरण में वजनी पिन्ड अन्तरीय भाग में और हल्के पिन्ड बाहरी भाग में घनीभूत होंगें। संहनन का दूसरा चरण परमाणुओं के टकराने से केन्द्रक में चिपकना है तथा तृतीय चरण में पिन्ड केन्द्राकर्षण खिंचाव के कारण बढ़ता है। अतः अन्तरीय संहनन अधिक घनत्व से शुरू होता है और हल्के तत्वों को केन्द्राकर्षण शक्ति से खिंचता है।

उपरोक्त कल्पना से सौर मंडल का नग्न चित्रण सम्मुख आता है। इसी तरह उपग्रहों का भी समान और असमान दो श्रेणियों में विभाजन होता है तथा उनके बनावट की क्रिया ग्रहों के ही समान होती है।

ये उपरोक्त उपकल्पनायें, सिद्धान्त और वाद अतिशयोक्ति नहीं हैं फिर भी हमें कहाँ तक सत्य भासित होता है इसका भी हम अनुमान नहीं कर सकते हैं। वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने हमें सौर जगत में विचरने का अधिक मौका दिया है। इस समय हमारे सामने माउन्ट पैलोमार के २००" व्यास वाली दूरबीन है जिसकी सहायता से हम सौर जगत के अन्य रहस्यों का भी पता लगा सकते हैं।

एक रूसी वैज्ञानिक लोमोन्शोव्ह (Lomonosov) अपनी पुस्तक "आन दी लेयर्स एन्ड इनर स्ट्रक्चर आफ दी अर्थ" में लिखते हैं कि जब मनुष्य की तर्कशील बुद्धि थक जाती है तब वे हरएक बीमारी की रामबाण दवा "ईश्वर ने इसी तरह रचा" (God Created Thus) कहकर संतोष कर लेते हैं। इस वैज्ञानिक के कथन को सत्य साबित करने के लिये हम गीता का एक श्लोक देते हैं जिसमें भगवान कृष्ण, अर्जुन से कहते हैं—

"सर्व भूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।७।। अध्याय ६।।

और हे अर्जुन! कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लय होते हैं और कल्प के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ।

रसायन-विज्ञान : एक सिंहावलोकन

नंदलाल जैन, एम० एस-सी० टीकमगढ़

[१.] विज्ञान की उत्पत्ति

इस पृथ्वी पर मनुष्य का अस्तित्व लगभग पाँच लाख वर्षों से बताया जाता है, पर मनुष्य के सभ्य होने का उल्लेख पाँच या छः हजार वर्ष पूर्व ही इतिहासिक विद्वान मानते हैं। इसमें यह फलितार्थ हुआ कि इसके पूर्व मनुष्य आदिम और असभ्य था। असभ्य होने पर भी जीवन-निर्वाह की क्रियाओं को उसने अवश्य ही ज्ञात किया होगा। कल्पना कीजिये उस समय की जब मानव इस भू पर पहले पहल अवतरित हुआ होगा और उसे अन्य वन्य प्राणियों से भयंकर संघर्ष व रक्षा करनी पड़ी होगी। यद्यपि इस अवस्था को हम असभ्य कह लें, फिर भी उसमें बुद्धि का प्रकर्ष तो मानना ही पड़ेगा। जीवन-निर्वाह व रक्षा के लिए आवश्यक साधनों के नितान्त अभाव से तद्विषयिणी जिज्ञासा और प्रवृत्ति आदिम मानव को अवश्य हुई होगी। और इसी प्रवृत्ति के अभ्युदय के साथ इस भूतल पर विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ और जैसे जैसे आवश्यकताओं की वृद्धि के साथ इन वृत्तियों का अधिकाधिक विकास होता गया, विज्ञान भी प्रगति करता गया।

[२.] परिभाषा : भेदोपभेद

विज्ञान की यों तो बहुत सी परिभाषायें हैं। श्री रेमंड ने कहा है कि "कुछ सिद्धान्तों के द्वारा आगमनात्मक विधि से परिज्ञात तर्कपूर्ण और संबद्ध ज्ञान प्रणाली का नाम विज्ञान है।" एक दूसरे लेखक श्री जे० जी० क्रउथर ने "विद्यमान वातावरण पर स्वामित्व प्राप्त करने वाली क्रिया-प्रणाली" को विज्ञान कहा है। अदृश्य को दृश्य बनाने वाली विधि परम्पराओं का नाम विज्ञान हैं, ऐसा भी एक स्थल पर उल्लेख है। ये परिभाषायें गूढ़ हैं और इनमें उद्देश्य विषयक अस्पष्टता की भी झलक दिखाई देती है। विशिष्ट ज्ञान को, जिसकी दिशा संबद्ध और बुद्धिग्राह्य हो और जिससे निरीक्षण, प्रयोग और परिभाषा द्वारा परिणाम की एक समता प्रतीत हो, विज्ञान कहते हैं। विज्ञान की सर्वोत्कृष्ट परिभाषा, उसका क्षेत्र भी बताते हुए, 'विज्ञान' पत्र के उद्देश्य के रूप में उल्लिखित तैत्तिरीयोपनिषद् के छन्द में मिलती है। मेरी दृष्टि में तो वह अपने में पूर्ण व्याख्या है। इस व्याख्या के अनुसार जीवन, प्रकृति (भूत) और अध्यात्म सभी विज्ञान के अंतर्गत आते हैं। मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओं की वृद्धि ने उसे बहुत सी दिशाओं में अपनी बुद्धि को दौड़ाने का अवसर दिया है; पर उसने देखा कि प्रत्येक ओर रहस्य ही रहस्य भरा हुआ है, और वह एक साथ सब का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, और न ही उन्हें परस्पर संबन्धित कर सकता है। फलस्वरूप जिधर भी वह देखने को मुड़ा, उसे ज्ञान की नई दीक्षा मिली, और इस प्रकार अनन्त ज्ञान युक्त विभिन्न शाखायें ज्ञात हुईं, जिन्हें अब विज्ञान की शाखायें कहा जाता है। साधारणतया हम उन्हें दो भागों में विभक्त करते हैं, (१) प्राकृतिक विज्ञान, जिसमें भौतिक, रसायन, उद्भिज, जीव, भूगर्भ, धातुशोधन, खनन, भूगोल, शिल्प, आयुर्वेद, कृषि आदि सम्मिलित हैं (२) पूर्ण विज्ञान, जिसमें तर्क शास्त्र, अर्थ शास्त्र, राजनीतिशास्त्र, निरुक्त, गणित, ज्योतिष आदि सम्मिलित हैं। एक तीसरा भेद भी है जिसमें अध्यात्म विज्ञान के ब्रह्म, मन, योग, भक्ति आदि शास्त्र आते हैं। मेरा क्षेत्र (१) के अंतर्गत रसायन विज्ञान है।

[३.१] रसायन-विज्ञान : परिभाषा और उद्गम

रसायन विज्ञान से तात्पर्य है विज्ञान की वह शाखा, जिसके द्वारा वस्तु, उसकी रचना, गुण, उसके भेद प्रभेद, तुलना व उसकी स्वयं या अन्य वस्तुओं के साथ घटित होने वाली क्रियाओं, पतिक्रियाओं का निरीक्षण, अध्ययन

और फलस्वरूप नये पदार्थों का निर्माण और प्राकृतिक पदार्थों की विश्लेषण और संश्लेषण आदि विधियों की जाँच [ज्ञान प्राप्त किया] की जाती है। 'रसायन' यह नाम ही [रस या रसं प्रति अयनं प्रापणं गमनं वा] इसलिए पड़ा कि जहाँ भी ऐसे कार्य या विधि प्रयुक्त की जाती हैं, वहाँ नयी वस्तु, नया ज्ञान (रस) मिले। वास्तव में भारतवर्ष में पहले अष्ट महारस और उपरसों व पारद रसों के गुणों की खोज ने रसायन शब्द का उद्गम किया है। पारद-रस के नाम से तो भारत में रसेश्वर दर्शन ही चल पड़ा था। पर रसायन-विज्ञान के उद्गम के विषयों में कोई निर्णय नहीं हो सका है। लेकिन इतना अवश्य सब लोग मानने लगे हैं, कि इसका प्रादुर्भाव मध्यपूर्व के देशों में सबसे पहले हुआ था। मिश्र, भारत, चीन तथा चाल्डेन देश इसके उद्गम क्षेत्र हैं, क्योंकि ये ही देश ईसा के हजारों वर्ष पूर्व सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँचे हुए थे। समय की तुलना में सभी देश प्राचीन हैं और इनमें समान समय में ही रसायनिक क्रियाओं और पदार्थों की जानकारी का उल्लेख पाया जाता है।

[३.२] भारतवर्ष

सिंध घाटी की सभ्यता में प्रायः विभिन्न धातुओं के सामान, आभूषण, कीमती पत्थर, चीनी मिट्टी के जार एवं पकी ईंटें पायी गई हैं जिससे यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि भारत के आदिवासी, जिन्हें आज लगभग ४००० वर्ष ईसा पूर्व का माना जाता है, इन बातों से परिचित थे। तत्कालीन विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं का आयात निर्यात होता था जिसमें रुई के बने कपड़े भी थे। इसके अनंतर जब आर्य भारतवर्ष में आये तो उन्हें इन आदिम वासियों की कला-कुशलता देख आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसे तिरस्कृत कर अपना नया रूप दिखाने की चेष्टा की, जिससे उन्होंने विभिन्न कलाओं में कौशल दिखाया। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में, चरक व सुश्रुत में आयुर्वेद के अष्ट अंगों (तंत्रों) में रसायन का भी स्पष्ट उल्लेख है जिसकी परिभाषा सुश्रुत में इस प्रकार है :—

. रसायन तन्त्रं नाम वयः स्थापन आयुर्मेधाबलकरं रोगापहरण समर्थं च ॥ १, ८, ७ ॥

यद्यपि यह परिभाषा आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार ही है। फिर भी इसके अंतर्गत भिन्न विषयों का वर्णन किया जाता है, वे आधुनिक रसायन-विज्ञान के अनुरूप ही हैं, जैसे धातुशोधन, जारण, मारण, अगदतंत्र (विष-परीक्षा), इत्यादि। जितनी भी रसायन क्रिया में वर्णित हैं, वे प्रयोग-जन्य ही हैं, उनका व्यवस्थित रूप, बहुत समयों बाद, इन ग्रन्थों में प्रकट हुआ। आर्य लोग लगभग १५००-२५०० वर्ष ईसा पूर्व भारत में आये, और ज्यों ज्यों वे अपनी स्थिति यहाँ बनाते गये, वेदों [१५०० ई० पू०] और रामायण [१४०० ई० पू०], महाभारत [१००० ई० पू०] और उपनिषदों [८००-६०० ई० पू०] आदि द्वारा अपने जीवन का विकासक्रम व्यक्त करते गये जिनके आधार पर उनके रेशम, ऊन तैयार करने, रंगाई (रंजन), धातुओं के अस्त्र शस्त्र, टिकाऊपत्थर, मूर्त्ति का निर्माण, सुगन्धित तेल, इत्र और शृंगार प्रसाधन, विभिन्न औषधियों, आसव (सोम) वगैरह, व शरीर को सुरक्षित रखने का मसाला बनाने की रसायनिक विधियों का पता लगाया जा सकता है। इसके प्रमाण स्वरूप चरक, वाग्भट सुश्रुत एवं कौटलीय अर्थशास्त्र लिए जा सकते हैं, जिनका समय लगभग ४००-१०० वर्ष ईसापूर्व माना जाता है [सिकन्दर के आक्रमण के पहले से कनिष्क के शासन तक] इसके आधार पर हमें विभिन्न धातुओं, खनिजों की परीक्षा, विषों की परीक्षा, उपचार आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। अम्ल और क्षार व उनके संतुलन (Neutralisation) का भी सुश्रुत में उल्लेख है—

क्षरणात् क्षणनाद्वा क्षारः। उष्णः तीक्ष्ण स्तंभन [acting as a precipitating agent for blood as $Fe\ Cl_3$], कृम्यामकफकुष्ठ विषमेद-सामुपहंता [Destroys the defects due to acidity in body] श्लक्ष्णः [oily in solutions]

औषधि योग्य जो क्षार नहीं उनकी भी चर्चा है। आसवों में ८४ प्रकार के आसवों का वर्णन हैं जिनमें २६ फलासव, ११ वृक्ष-मूल व कन्दकों से बने, २० वृक्षा के

सार, सत्व, गोंद आदि से बने ६ धान्यनिर्मित, ४१ वनस्पति व पत्र पुष्पों से बने] जिससे तो यह प्रकट होता है कि आज जिस लकड़ी से शर्करायें और अलकोहल बनाने की विधि को नया आविष्कार माना जाता हैं, वह इतने प्राचीन काल में भारतीयों को ज्ञात थीं। स्रावण द्वारा [नाड़ी यंत्र, वकयंत्र] तीव्र आसवों से आसव उड़ाना और उनको परिश्रुत करना भी उल्लिखित है। यही नहीं ऐतिरियोपनिषद में तो बिना किण्वीकरण के भी सोम के बदले [Substitute] आसव [कृत्रिम अलकोहल] बनाने की विधि दी गई है। [१, २८, ५-८] तात्पर्य यह है कि भारतीय ऋषि और आचार्य ईसा से कई सदियों पूर्व विभिन्न रासायनिक पदार्थों, धातुओं, खनिजों, मणिमुक्तादि, आसवों सोमादि] रंजन (Dyeing) एवं कपड़ों विषयक चातुर्य को जानते थे। इसी आयुर्वेदिक प्रगति के काल में सिर्फ बनस्पति, औषधियाँ ही परीक्षित थीं, ऐसा श्री पार्टिंगटन का मत है। इसके विपरीत पुष्ट प्रमाण तो यह हैं कि उसी काल में कणाद ने भी अपने दार्शनिक परमाणुवाद का निरूपण किया, जो प्रयोग का रूप न धारण करने के कारण सोलहवीं सदी तक कोई महत्व न पा सका पर अब वही आधुनिक रसायन विज्ञान का प्रमुख आधार बना हुआ है। लगभग ८५० ईस्वी में नागार्जुन के उदय ने तांत्रिक स्कूल की स्थापना की और पारे का उपयोग सिखाया। इसी काल में [१६०६] वृन्द और चक्रपाणि [१०५०] और माधव [१०८०] ने तो पारे के यौगिकों के विषय में अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। इसके बाद अन्य आचार्यों ने भी संग्रह-ग्रन्थ बनाये, जिनमें उर्ध्वपातन भट्टियों में तपाने, विश्लेषण, और टाल्क [Talc] के जोड़ने के विषय में उल्लेख है। यद्यपि हिन्दुस्तान में कीमियागिरी ज्यादा नहीं रही, फिर भी धातुओं के स्वर्ण में बदलने के प्रयोग कई ग्रन्थों में पाये जाते हैं। विभिन्न विधियों और प्रयुक्तयंत्रों का भी निरूपण पाया जाता है जैसे बालुका यंत्र [Sand bath] अधःपातन यंत्र, ढोलायंत्र, मूषायंत्र [Crucible] आदि। बारूद बनाने का आविष्कार सब से पहले भारत में हुआ जो शुक्रनीति में द्रष्टव्य है।

[३.३] चीन

चीन देश में रसायन विज्ञान का सब से पहला रिकार्ड शूकिंग [Shu king] (७२०० ई० पू०) और यी किंग (Yi kings ११०० ई० पू०) नामक पुस्तकों में मिला है, जिसमें पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि) लकड़ी, और धातु पांच तत्वों के निरन्तर अन्त परिवर्तन चक्र का, तथा कुछ विश्व-शक्तियों का प्रकाश व अंधकार, गर्मी-ठंड, पुरुष-स्त्री सम-विषम आदि का उल्लेख है। इन्हें किण्वीकरण [चावल से शकर बनाना] ज्ञात था। चीन वासियों का मिश्र, भारत से ईसा पूर्व सदियों में धार्मिक और व्यापारिक खूब संबंध था। ईसापूर्व पहली शताब्दी में एक मनोरंजक विधि से जस्ता प्राप्त कर पीतल बनाने की क्रिया ज्ञात थी। वे पारद के गंधेत से पारा भी बहुत पहले निकालना जानते थे। पोरसीलेन का सर्वोत्तम रूप ६०० ई० के लगभग इसी देश में विकसित हुआ था, इसीलिए इसे चीनी पोरसीलेन भी कहा जाता है। कीमियागिरी का उदय यहाँ ताओवाद (Tuoism. ५०० ई० पू०) से शुरू हुआ, पश्चात् जादू और अमृत के प्रदर्शनों (१४०-८६ ई० पू०) से बदल गया। इन अमृत (Elexir of life) से मृत्यु निषेध, स्वर्गप्राप्ति और विक्रियायें सिद्ध होती मानी जाती थीं। लगभग ३०० ४०० ई० में यह वाद भारत के योग दर्शन के स्तर पर पहुँचा गया जिसमें निरोध से अमृत प्राप्त होने की बातें सोची जाने लगीं। पारे को साने में परिवर्तित करने की भी चेष्टाऐं हुईं।

[३.४.] मिश्र

रसायन (Chemistry) का उद्भव कहीं भी हुआ हो पर बहुत से लोग (Chemia) शब्द का प्रथम प्रयोग मिश्र में ही बताते हैं। मिश्र में एक खास प्रकार की मिट्टी के लिए (Chemia) शब्द का उलेख है। [१०० ई०] अलेक्जेन्ड्रिया में भी (Chemia) की पुस्तकों को जलाने का विवरण २९६ ई० के लगभग उल्लिखित है इस शब्द में मिश्र की कला का बोध होता हैं और वास्तव में मिश्र उस समय सभ्यता के शिखर था। [ईसा से २०० वर्ष पूर्व] और वहाँ धातुशोधन,

शीशा-निर्माण, रंजन-विधि, रोगन व विष-निर्माण, साबुन और औषधि प्राप्ति संबन्धी कला में निपुणता थीं। श्री हर्मस ट्रिस्मेजिस्टोस और जोसीसस की प्रथम शताब्दी की पुस्तकों में इनका उल्लेख है। यदि पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य शोध और खोज की जाय तो पता चलता है कि लगभग ४००० वर्ष ईसा पूर्व मिश्र वासी पत्थर, हड्डी, हस्तिदंत, फ्लिंट (Flint) क्वार्ट्ज (Quartz) हैमेटाइट (Haimatite. $Fe\ O_3$), अंबर (गेरूमिट्टी), विचित्र कीमती पत्थर, सोना, चाँदी, ताम्र,सीसा, वंग (Tin) लोह, ऐंटीमनी, प्लाटिनम, जेलेना (Gelena) और मेलेचाइट (Malachite) का उपयोग करते थे। २६८०-२४७५ ई० पू० के एक लोहार की दूकान की पेंटिंग प्राप्त हुई है जिसमें भट्टी में फूंकना (फुकनी से), काटना, हथौड़ा मारना, और तोलना (भुजावान तुलाओं से) स्पष्ट अंकित हैं। वे यह जानते थे कि काँसे में १२% से ज्यादा वंग (Tin) होना उसके गुणों को न्यून कर देता है। बार्लो से शराब बनाना (किण्वीकरण) भी उन्हें ज्ञात था। इस प्रकार विभिन्न कलाओं में निष्णात् होने पर भी व्यवस्थित ज्ञान का रूप नहीं था, जिसे सिद्धान्तों के रूप में अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा यूनानी दार्शनिकों ने व्यक्त किया। श्री बी० फारिंग्टनने यही एक जगह लिखा है:—

'Chemical practice was very far advanced before 1500 B.C., chemical theory lagged behind.'

श्री थ्योफ्रेस्टस (३१५ ई० पू०) ने सफेदा [Basic leadcarbonate] बनाने की विधि का पूरा विवरण दिया है। बड़े प्लाइनी [Pliny, the elder २३-७६ ईस्वी] ने सिंदूर से पारा बनाने की विधि सविस्तार उद्धृत की है। इसी प्रकार कीमियागिरी व अन्य रासायनिक पदार्थों की निर्माण विधि को बताने वाली ३०० ईस्वी की पुस्तक (Papyrus of lyden) मिली है जिससे पुराने मिश्र वासियों की विधियों का जिसमें नकली सोना, चाँदी, मिश्र धातुयें, मणि, रंग वगैरह का वर्णन हैं। श्री जोसीमस (Zocimus) ने अपने रसायन की पुस्तकों में बहुत सी भौतिक विधियों—जैसे गलना (Fusion) रक्तापन Calcination) घोल, छानना, मणिभीकरण, ऊर्ध्वपातन एवं स्रावण का सचित्र वर्णन किया है। छोटी धातु को कीमती धातु में बदलने का भी उल्लेख है। इसी प्रकार की प्रगति मिश्र में चल रही थी कि अरबों ने ६४० ई० में मिश्र को जीत लिया। इसके बाद का विकास अरबों का ही विकास है जो आगे दिया गया है।

[३·५] यूनान

मिश्र जब इस प्रकार की प्रयोगिक और सूचनात्मक विधियों में व्यस्त था, यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिकों ने विश्व के पदार्थों के मूल तत्व की छानबीन में विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये। सबसे पहले एक-तात्विक सिद्धान्त बने जैसे सब वस्तुयें पानी [रीथेल्स, २४० ई० पू०], हवा [श्री अनाक्जीमेनिस, ५६०ई० पू०] या अग्नि [श्री हेराक्लीटस, ५३६ ई० पू०] की बनी है। श्री पैथागोरस ने मात्र अंकों [Numbers] को मूल बताया। इसके पश्चात् की एम्पीडोक्लसन ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु (चतुस्तत्व) को मूलभूत बताया। साथ ही आकर्षण और विकर्षण शक्तियों का भी संयोग-में साथ बताया। श्री परमेनिडस ने सब वस्तुओं को नित्य [Not Changing] बताया और कहा कि जो परिवर्तन हमें दिखाई देता है, वह हमारी इन्द्रियों का धोखा है। इस बहुतात्विक मूल सिद्धान्त ने परिवर्तन और गतिशीलता की स्थिति स्पष्ट कर दी। श्री ऐनाक्सेगोरस ने भी [५०० ई० पू०] इसी प्रकार की रचना का अनुमान किया था। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ रचना का मूल बताया श्री डेमेक्रिटस [४२० ई० पू०] ने अपने परमाणुओं के सिद्धान्त द्वारा जो आधुनिक विज्ञान के अन्वेषणों में पुनः स्थापित हो चुका है। इस परमाणुवाद का सार था—जगत में दो मुख्य वस्तुयें हैं, परमाणु और शून्य। शून्य का विस्तार अनन्त है, परमाणुओं की संख्या अनन्त है। सभी परमाणु तत्वतः [In. substance] एक हैं [आज के अनुसार भी Proton and Electron का पिंड] पर आकार, प्रकार, स्थिति, व्यवस्था की दृष्टि से भिन्न हैं। परमाणु अनादि और अनन्त है, ठोस और सम [Granuler] हैं, स्वयं अपरिवर्तित रहते हैं, परन्तु

शून्य में अपने विभिन्न-वियोग द्वारा गतिशील रहते हैं। [आज भी Brownian movement के नाम से यह तथ्य ज्ञात हैं] और इस प्रकार के परिवर्तनशील जगत के सेवक 'Pageant' हैं। परमाणु को अखंड और प्रवेशनीय एवं शून्य को प्रवेश्य माना जाता है। डेमोक्रिटस के परमाणु सिद्धान्त ने जगत रचना की भौतिक इकाई बताकर उसे अविभाज्य और स्थानिक दृष्टि से विभाज्य [Spatilly divisible] बताया और श्री ऐनाक्सेगोरस की पाचन सम्बन्धी क्रिया को नये परमाणु निर्माण के रूप में सहल किया। इससे इन्द्रियग्राह्यता की भी वर्तमान समस्त परिभाषा मिली कि रंग आदि गुण वस्तुओं के नहीं अपितु उन वस्तुओं के (किरणों का) हमारे ऊपर पड़ने वाले प्रभाव के द्योतक हैं। भारत के सांख्यवाद [सतः सदुत्पत्तिः] एवं वस्तु का अविनाशत्व तथा एक विश्वजनीय वस्तु-अवयव का स्थापन इस सिद्धान्त ने अच्छी तरह किया। Nothing is created out of nothing अब तक के सिद्धान्तिक परिणामों के बाद औषधि युग के श्री हिपोक्रीटस [४०० ई पू०] ने प्रयोगात्मक दिशा की ओर कदम बढ़ाया। एवं प्रयोग और निरीक्षण दृष्टि को साथ लेकर श्री अरस्तू [३८४-३२२ ई० पू०] ने पदार्थ के मूलतत्व [Primry matter] के साथ श्री एम्पीडोक्लस के चतुस्तत्वीमत के अनुरूप पंच तत्वी चर्चा प्रकट की [पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और अमूर्त (immaterial)] ये मूलतत्व, चित्रकार के संग-मरमर पर विभिन्न मूर्ति-रचना-कार्य के समान विभिन्न आकृति धारण कर सकते हैं। और जब ऐसी बात है, तो एक तत्व भी नये तत्व के द्वारा दूसरे में परिणत हो सकता है, ऐसी सम्भावना ने और तूतिया के घोल में लौहपत्र के डालने पर लौह के ताम्री-भवन आदि प्रयोगों ने तुच्छ धातुओं को कीमती धातुओ में परिवर्तित करने की संभावना को और भी स्पष्ट कर दिया, [जिसका मूर्तरूप अन्य देशों में प्रकट हुआ]। यूनान का उपयुक्त वैज्ञानिक विचार-प्रतिपादन। अरस्तू के बाद लुप्तप्राय हो गया, क्योंकि उसके बाद कोई खास रासायनिक चर्चाओं पर हमें ग्रन्थ नहीं मिलते।

[३-६] अरब

रसायनिक प्रगति का जोर तब और बढ़ा जब सन् ६४० में अरबों ने मिश्र को जीत कर व वहाँ के ज्ञान भंडार विभिन्न कला कौशल और रसायन का पता चला कर स्वयं उन कलाओं में पारंगत होना चाहा। उन्होंने खलीफों से मिश्री, यूनानी ग्रन्थों के सीरियन या अरबी भाषा में अनुवाद कराये। इसके फलस्वरूप अरबों ने यूनान की सैद्धान्तिकता और मिश्र की प्रयोगशीलता के मिश्रण से रसायन शास्त्र को एक प्रगट नींव पर रख दिया और इसीलिए आज हमें रसायन शास्त्र के कई शब्दों में अरबों की पुट स्पष्ट प्रतिभाषित होती है, जो Alchemy [Al-the Chemy-Chemisry], alemluc, aludel (आयोडीन तैयार करने के लिए पात्र विशेष), Alkhul (Alcohol) जिसे बाल सफेद करने के काम में प्रयुक्त किया जाता था, और जिससे (पारासेल्सस के अनुसार) Methyl Alcohol बनता था। अरबों के बहुत से रसायन शास्त्रियों में तीन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं (i) श्री जबीर-इब्न हयान (श्री जीवर, ७४०-८१३ ई०) (ii) श्री अलरजी (९३५ ई०) और (iii) श्री इब्न-सिना (९८० ई०) जबीर ने लगभग ५०० पुस्तकें रसायन शास्त्र पर लिखीं; इब्नसिना ने अपनी कुछ पुस्तकों में धातुपरिवर्तनीयता में अविश्वास दिखाया है। इब्न अरफारा ने रसायनिक कविता लिखी है। स्वर्ण कण [Particles of gold], श्री कासिम अल-इराकी ने 'अलमुखासिब' में तत्कालीन प्रचलित सभी रसायन सिद्धान्तों और स्वयंकृत प्रयोगों का खासा निरूपण किया है। लगभग ९५० ई० के एक 'एन्साइक्लोपीडिया' में इनके द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त का पता चला है कि ये धातुओं को पारा और गंधक से बना मानते थे और उन्हें पृथ्वी के अन्दर के दबाव से निर्मित मानते थे। इस अरबी रसायन में चीनी रसायन का मूल भी थोड़ा बहुत है। परन्तु मुख्यतया यह मिश्र का ही अग्रिम संस्करण रहा है।

[३·७] यूरोप

मध्य युग तक रसायन शास्त्र सम्बन्धी किसी भी पुस्तक का योरुप में पता नहीं था, लेकिन अरबों से स्पेन के माध्यम से लेटिन में अनूदित होकर यहाँ पहुँची। इस समय कीमियागिरी (अरब में) खूब चल रहीं थी और उसी सम्बन्धी पुस्तकें भी अधिकतर। अतएव यूरोपियन इस विद्या में

उत्साह लेने लगे, पर श्री अल्बर्ट समागनस (११६३-१२८० ई०) ने अपनी एक पुस्तक में स्पष्ट किया कि यह एक छल-विज्ञान है, और कीमियागिरी से बनाया गया सोना ६-७ बार अग्नि में तपाने पर चूर्ण-सा बन जाता है। इसके बावजूद भी श्री रोजरबेकन (१२१४-१२६२ ई०) इस विद्या के हामी थे। सन् १२५०-१५०० तक इस विषय पर बहुत पुस्तकें लिखी गईं, परन्तु सभी गूढ़ हैं। अँग्रेजी में श्री चौसर [१४१० ई०] सबसे पहला लेखक है। इसकी कीमियागिरी से भी कच्ची धातुओं के प्राकृतिक यौगिकों [जैसे PbS (जिलीना) या FeS_2 [पायराइट्स] को गरम करके [और कच्ची धातुओं की शुद्धिकरण विधि के अंतर्गत प्राप्त] से स्वर्ण-रजत प्राप्त होते हैं, परन्तु उस समय यह पता नहीं था कि ये धातुएँ उसी में पहले से ही अशुद्धि के रूप में विद्यमान हैं। फिर भी लोगों ने खूब चेष्टा की कि वे पारस पत्थर [Philosopher's Stone] प्राप्तकर लें या जीवनामृत बना लें। इस ओर तो वे सफल प्रयत्न न हो सके, परन्तु दूसरी दिशाओं में विज्ञान का असली रूप प्रकट होने लगा। धर्म-सुधार युग के बाद यूरोप में जब यूनानी विज्ञान की पुस्तकें अनूदित हुईं, तो विचार और प्रयोगों का तांता सा बँध पड़ा, और रसायन शास्त्र विगत दो-तीन सदियों में जिस अवस्था में पहुँच गया, वह सभी को ज्ञात है। श्री होमयार्ड ने एक बात बड़ी ही विचित्र इस संबंध में लिखी है :—

"When Chemistry became thoroughly established in Europe, rapid advance took place, largely due to the more systematic mind of Europeans as compared with that of the Asiatics.' यह तो स्पष्ट है कि कई सदियों बाद रसायन-विज्ञान यूरोपीय प्रयत्नों से व्यवस्थित रूप लेने लगा, पर उपर्युक्त वक्तव्य में तथ्य कितना है, यह ऐतिहासिक जन ही निर्णय करें। आगे १३ और १४ वीं सदी में जो पुस्तकें मिलती हैं, उसमें इस रूप का प्रतिभास मिलने लगता है। जब कीमियागिरी की कलई खुल गई, तो रसायन शास्त्र औषधि विज्ञों का सेवक बन गया। और लगभग २००, वर्ष [१५०८-१७०० ई०] का काल औषधि-रसायन युग कहलाता है जिसने विभिन्न औषधियों की खोज और निर्माण किया गया है। इस युग के आदि व्यक्ति के रूप में ही पारासेल्सस [१४९३-१५४१] को माना जाता है, जो पारस पत्थर और जीवनामृत में विश्वास करता था। पारासेल्सस ने तीन मूल तत्व [पारा, गंधक और लवण] बताये, उसके शिष्य श्री वॉनहाल्मेंर [१५७७-१६४४] भी विश्वघोलक की तलाश में रहे। पहले तो वह श्री थेल्स के अनुरूप जल को ही मूलतत्व मानता था, जिसे उसने एक नये वृक्ष की बुद्धिजन्य प्रयोगों द्वारा स्थापित किया, परन्तु यह एक बड़ी विचित्र बात थी कि आगे चलकर उन्होंने 'gas' शब्द [जिसे Chaos wildly moving particles] रसायन शास्त्र को दिया और कार्बन द्विओषिद का अस्तित्व बताया [gas Sylvester by Corking a bottle of limestone with acid which was burst by the gas] एवं gas Ringne जो ज्वलनशील है, तथा किण्वीकरण क्रिया में उत्पन्न होता है, नामक गैस का भी उल्लेख किया था, परन्तु प्रारम्भ में उन्हें ही पौधों के द्वारा कार्बन द्विओषिद के शोषण का पता नहीं था।

[—शेष अगले अंक में]

कणिका-सिद्धांत के पक्ष में

विपिन कुमार अग्रवाल, एम० एस-सी०

किसी भी विषय के समालोचनात्मक पहलू की मीमांसा करने के प्रथम उस विषय की मूल-मान्यताओं से भिज्ञ एवं उनके प्रति भ्रमरहित होना आवश्यक होता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए आरंभ में मेरा प्रयास कणिका-सिद्धांत (Quantum-theory) के मूल-नियमों का विवरण और इन नियमों तथा प्राचीन-सिद्धांत के नियमों के परस्पर सम्बन्ध का विवेचन करना होगा। प्राचीन-धारणा के अनुसार १—विश्व का विश्लेषण सही परिभाषित तत्वों में किया जा सकता है।

२—प्रत्येक तत्व की स्थिति का विवरण प्रवैगिक चल (dynamical variable) के टर्म्स में बहुत सही तौर पर दिया जा सकता है।

३—प्रवैगिक-चलों का समय के साथ परिवर्त्तन, हेतुक-नियमों (Casual laws) की सहायता से, चलों की आरम्भिक अर्हा के टर्म्स में, परिभाष्य है।

इतिहास के अनुसार, कणिका-सिद्धांत का प्रादुर्भाव, खोखले विवर में विकीर्ण-ऊर्जा (Radiant energy) के साम्य-विभाजन को श्री प्लैंक द्वारा व्यक्त करने के प्रयत्न में हुआ था। आज का कणिका-सिद्धान्त, वृहत् क्षेत्र में फैले हुए प्रयोगों के फलों को समझने के लिए किए गए, लम्बे एवं सफल प्रयत्नों का निचोड़ है। मेरे विचार में इसने वैज्ञानिक-ज्ञान के धन को ही नहीं वरन् उसकी इकाई को भी बदल दिया है। इस कथन का कुछ कुछ अनुमान कणिका- सिद्धांत की निम्नलिखित विचारधारा से हो जाएगा :—

कणिका गुणों का सहचरण अपूर्ण परिभाषित संभावी-तत्वों (potentialilties) के साथ होता है। ये संभावी-तत्व, प्राचीन तौर पर विवर्णित प्रणाली (जैसे, माप-यन्त्र) के संग मिथः क्रिया (interaction) होने पर, अधिक-सही ज्ञात किए जा सकते हैं। क्योंकि, निजी-गुण (intrinsic-properties) भी, जैसे तरंग या लव, और प्रणालियों के संग मिथः क्रिया होने पर ही व्यक्त होते हैं; परार्थ के कणिका-गुणों की व्याख्या में मिथः क्रियात्मक प्रणालियों की अभाज्य एकता अन्तर्हित है। अतः प्राचीन-सिद्धान्त के १ और २ नियम अमान्य हैं यदि हम ध्यान में रक्खें कि कणिका-स्तर पर न तो सही परिभाषित तत्व हैं और न सही परिभाषित प्रवैगिक चल। धारणा ३ असंगत है क्योंकि सही-परिभाष्य-चलों के अभाव में हेतुक-नियम स्वतः अर्थहीन हो जाते हैं।

ऊपर लिखी हुई बातों की समीक्षा करते हुए और एक कदम आगे बढ़ते हुए हम इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं:—

प्राचीन सिद्धांत में हम अविरत-परिवर्त्तनशील राशियों को व्यवहार में लाते हैं। चलों का आपसी सम्बन्ध पूर्णतः हेतुक है। इसके विपरीत, कणिका-सिद्धांत में हमारा सहचरण अभाज्य क्रियायों से होता है। कणिका-नियम, भविष्य में होने वाली घटनाओं की भूत में दी गई हालतों के टर्म्स में, संभाविता (Probability) मालूम करते हैं।

यहाँ पर यह जान लेना उचित होगा कि अभाज्य-क्रियायों तथा भविष्य में होने वाली घटनाओं की संभाविता से हमारा क्या तात्पर्य है। यदि हम प्लैंक महोदय की उपकल्पना के साथ इस सत्य का भी ध्यान रक्खें कि आज तक कोई भी ऐसा प्रयोग नहीं कर पाया है जिसमें कि कणिका के एक भाग को उपलम्भ (detect) किया गया हो तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि कणिक ऊर्जा की एक अभाज्य इकाई है। इसके अलावा हम यह भी जानते हैं कि उर्जा-प्रवाह का तारतम्यात्मक तौर पर अनुसरण करने के सब प्रयत्न विफल हुए हैं। अतः कणिक का एक प्रणाली से दूसरी में स्थानान्तरण एक अभाज्य क्रिया है। ऊर्जाणु (quantum of energy) की अभाज्यता (indi-

visibility) और स्थानान्तर की क्रिया की अभाज्यता दोनों ही तार्किय अविरोध (logical consistency) के लिए अनिवार्य हैं। अतः हम सहज ही यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ऊर्जाणु के स्थानान्तरण में, एक प्रणाली बीच की क्रमानुसार स्थितियों से गुजरती हुई नहीं मानी जा सकती है, जिसमें की ऊर्जा का विनिमय (exchange) तारतम्यात्मक तरीके से होता है। इसके स्थान पर कणिका-क्रिया (Quantum-process) को असंतत (discontinuous) तथा अभाज्य इकाई मानना आवश्यक है। ऊर्जाणु का स्थानान्तर इस विश्व में एक मूल घटना है जो और क्रियायों के टर्म्स में नहीं व्यक्त की जा सकती है। इसे हम एक मूल-क्रिया कह सकते हैं जैसे कि विद्युदणु (electron) या प्राण (proton) को मूल-लव कहते हैं।

कुछ दार्शनिक एक विद्युच्चुम्बिक-तरंग-प्रभावित परमाणु (atom exposed to electromagnetic waves) का उदाहरण शकांस्वरूप प्रस्तुत करते हैं। उचित विद्युच्चुम्बिक तरंग विद्युदणु तरंग को अन्दरूनी वृत्त (orbit) से बाहरी वृत्त की ओर प्रवाहित होने के लिए बाध्य करती है। प्रयोगों से हमें मालूम है कि कुछ दशाओं में अल्प समयके उपरांत ही एक सम्पूर्ण ऊर्जाणु का स्थानान्तर परमाणु के पक्ष में हो जाता है। क्योंकि हर ऊर्जाणु-क्रिया में ऊर्जा-अविनाशिता (conservation of energy) उपस्थित है, विद्युदणु का एक प्रदीप्त-स्तर पर अत्यन्त अल्प-काल में पहुँचना आवश्यक है। दूसरी ओर, क्योंकि विद्युच्चुम्बिक तरंग का प्रवाह तारात्म्यात्मक है, इस अल्प-काल में उसका केवल एक लघु-भाग ही उस कक्ष्य तक पहुँच पाएगा जिसमें कि प्रदीप्तार्थ विद्युदणु है! इस विरोधात्मक स्थिति का निवारण करने के लिए हम इस सत्य का प्रयोग करते हैं कि परमाणु पर विद्युच्चुम्बिक तरंग का प्रभावकाल केवल ऊर्जाणु के स्थानान्तर की संभाविता का द्योतक है। यह स्पष्ट है कि इस क्रिया की संभाविता एवं बाह्य कक्ष्य में विद्युच्चुम्बिक-तरंग-चण्डता (e. m. intensity) दोनों ही एक ऐसी गति से बढ़ते हैं जो कि समय में आनुपातिक है। इसलिए हम कह सकते हैं कि बाहरी कक्ष्य में सतत बढ़ती हुई तरंग-चण्डता सतत बढ़ती हुई संभाविता के अनुरूपी है कि एक अभाज्य ऊर्जाणु का स्थानान्तरण हो गया है और परमाणु प्रदीप्त अवस्था में पाया जा सकता है। इसके अलावा, मान्य ऊर्ज अवस्थाएँ सही• तौर पर वर्णनात्मक होने के नाते, परमाणु किसी प्रकार ऊर्जाणु के एक भाग का अधिकारी नहीं हो सकता है; फलस्वरूप, स्थानान्तरण क्रिया का अभाज्य होना आवश्यक है यद्यपि तरंग दोलनांक (amplitude) और अणु को वरिमा (Space) में एक दिए गए एक विन्दु पर पाने की संभाविता तारतम्यात्मक रूप में परिवर्तनशील हैं अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कणिका-सिद्धांत में तरंग-श्रित (wave-function) का सम्बन्ध एक अवलोकनशील घटना से, जैसे कि एक अधिक ऊर्जा-अवस्था को स्थानान्तरण, केवल सांख्यिकीय (Statistical) है। भ्रम तभी पैदा हो सकता है जब कि 'संभाविता' शब्द का प्रयोग, बिना सांख्यिकीय अन्तर्हित माने को लगाए, आशा या विश्वास को प्रगट करने के लिए किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि हम इस शब्द के साधारण अर्थ और वैज्ञानिक अर्थ (जो एक अवलोकनशील मात्रा का प्रतीक है) की चित्रता को समझें। संभाविता की उक्ति से हमें यह समझना चाहिये कि एक सांख्यिकीय प्रयोग के फल को दृढ़ता पूर्वक व्यक्त किया जा रहा है, यद्यपि व्यक्त करने की शैली में यह एक घटना को ही इंगित करे। आज भौतिक-शास्त्र के मान्य नियमों की सम्पूर्ण प्रणाली का सम्बन्ध संभाविता से है। जहाँ तक भविष्य की संभाविताओं की गणना करने का सवाल है ये नियम एक पूर्ण निर्धारित प्रणाली की रचना करते हैं, पर नियमों की प्रणाली अनिश्चित हो जाती है जब भविष्य में अवलोकनशील ज्ञान की गणना का प्रश्न उठता है। इस स्थान पर कुछ लोग यह आपत्ति कर सकते हैं कि ऐसी सूचना हमें कोई ज्ञान प्रदान नहीं कर सकती है। ऐसे व्यक्ति यह कल्पना कर लेंगें कि 'ज्ञान' के माने हैं 'बिल्कुल निश्चित होना'। पर जो मनुष्य undogmatic रहना चाहते हैं उनके लिए ऐसा अर्थ कोई महत्व नहीं रखता। कणिका-सिद्धान्त का अनुयायी एक अधिक विस्तृत अर्थ को मानता है—कोई भी वस्तु

'ज्ञान' होगी अगर हमें उसकी सत्यता का विश्वास दिला दिया जाए और यह वस्तु ज्ञान मानी जाती है यदि हमें विश्वास न भी दिलाया जाए।

कुछ आदर्शवादी दार्शनिकों के मतानुसार, कणिका-क्रिया में संभाविता का प्रादुर्भाव प्रणाली के वर्णन में हमारी सही चलों को प्रयोग करने की अज्ञानता के कारणवश है। प्राचीन भौतिक-शास्त्र में संभाविता की उपस्थिति प्रायः इसी वजह से है। उदाहरणार्थ, ताप-प्रवैगिकी (thermodynamics) में हम एक दी हुई प्रणाली में दबाव, ताप और आयतन नापते हैं वरिमा के अत्यन्त लघु भागों में, विशेषकर चरम-बिन्दु के निकट, ये मात्राएँ अवस्था-समीकार equation of state) का एकदम सही पालन नहीं करतीं। इसके स्थान पर अवस्था-समीकार द्वारा इंगित औसत सभी के आसपास ये मात्राएँ विचरण प्रदर्शन करती पाई जाती हैं। इसलिए ताप-प्रवैगिकी के निश्चित नियम यहाँ पर शिथिल हो जाते हैं और संभाविता नियम की शरण लेनी पड़ती है। इसका कारण यही है कि ताप-प्रवैगिक चल प्रश्न के लिए उचित नहीं हैं। इनके स्थान पर हर अणु की स्थिति और गति चलों की आवश्यकता है जो कि ताप-प्रवैगिकी के दृष्टिकोण से छुपे-चल (hidden variables) हैं। तुरंत ही ऐसा लगता है कि हो न हो कणिका-क्रिया में संभाविता की उपस्थिति भी इसी कारणवश शायद उपस्थित है। हो सकता है कि छुपे-चल हैं जो कि वास्तव में ऊर्जा के स्थानान्तर का सही काल और समय निर्धारित एवं संचालित करते हैं और हमें अभी उनका ज्ञान नहीं है। यद्यपि इस आलोचना का पूर्ण निरोध नहीं है फिर भी मैं अब यह दिखलाने का प्रयत्न करूँगा कि ऐसी संभावना बहुत कम है।

पहली बात तो यही है कि अभी तक के प्रयोगों में कहीं भी छुपे-चलों के तनिक से चिन्ह का भी पता नहीं चला है। इसके प्रथम कि हम आगे बढ़ें यहाँ पर उचित होगा कि आइन्सटाइन, रीजन और प्रोडौल्सकी द्वारा प्रस्तुत पैरेडौक्स को समझ लें। १९३५ में इन विचारकों ने कणिका-सिद्धान्त के साधारणतः मान्य व्याख्यायों के विरोध में एक गंभीर आलोचना उठाई। उनकी आपत्ति ने एक पैरेडौक्स का रूप ग्रहण किया जिस पर वे एक उपकाल्पनिक प्रयोग का विश्लेषण करते-करते अंत में पहुँचे। इस प्रयोग का उल्लेख करने के पहिले उन्होंने एक पूर्ण भौतिक सिद्धान्त के लिए आवश्यक गुणों को इस प्रकार चुना—

१. भौतिक वास्तविकता की हर इकाई (element) का एक प्रतिभाग (counterpart) किसी भी सम्पूर्ण भौतिक सिद्धान्त में होना आवश्यक है।

२. यदि प्रणाली में बिला विघ्न डाले हम एक भौतिक मात्रा को निश्चित तौर पर (संभाविता = १) आगम आँक सकें, तब इस भौतिक मात्रा के अनुरूपी (corresponding) एक वास्तविक-इकाई (element of reality) अवश्य उपस्थित होती है।

इसके उपरांत उन्होंने ऐसी अवस्था में एक द्विपरमाणु को लिया जिसमें कि सम्पूर्ण आभ्राम (total spin) शून्य है और हर परमाणु का आभ्राम $t/२$ है। अब मान लीजिए कि द्विपरमाणु में वियोजन (disintegration) होता है और वियोजन-क्रिया ऐसी है कि पूर्ण-कोणीय-गमता (total angular momentum) में कोई भी परिवर्त्तन नहीं आता। दोनों परमाणु विलग होश आरंभ कर देगें और तुरंत ही उनकी मिथः क्रिया शांत हो जाएगी। उपकल्पना के अनुसार (byhypothesis) उनका मिला हुआ आभ्राम कोणीय-गमता अब भी शून्य है।

अब यदि आभ्राम एक प्राचीन (classical) कोणीय गमता-चल हो जो कि प्रसारक (vector) द्वारा प्रतिनिधानशील (capable of being represented) है, तब इस क्रिया की व्याख्या इस प्रकार होगी:—

जब कि दोनों परमाणु संयुक्त थे (द्विपरमाणु के रूप में) प्रत्येक परमाणु के कोणीय-गमता के हर अवयव (Counterpart) का एक ऐसा निश्चित मूल्य होगा जो कि हमेशा दूसरे के विपरीत है। 'इस प्रकार पूर्ण-कोणीय-गमता शून्य बनी रहेगी। जब परमाणु विलग होंगे, प्रत्येक परमाणु अपने हर कोणीय-गमता-अवयव को दूसरे के विपरीत बनाए रक्खेगा। हर आभ्राम-प्रसारक की गति की अलग-अलग निश्चित-समीकारों द्वारा अनुबन्धन

(correlation) बना रहता है और वे ही अलग-अलग आभ्राम-कोणीय-गमता प्रसारकों के प्रत्येक अवयव की अविनाशिता को बनाए रखती हैं।

मान लीजिए कि अब विलग परमाणुओं में से किसी एक की भी (१ का) आभ्राम-कोणीय-गमता नापी जाए। अनुबन्धन की उपस्थिति के कारणवश हम तुरंत निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि २ का कोणीय-गमता-प्रसारक क्या होगा। वह १ के बराबर और विपरीत होगा। इस प्रकार हम २ की कोणीय-गमता को अप्रत्यक्ष तौर पर (indirectly) नाप सकते हैं।

अब यह विचार करना है कि कणिका सिद्धान्त के अनुसार इस प्रयोग की व्याख्या क्या होगी। यहां पर अनुसन्धानकर्त्ता अणु १ के केवल x, y या z आभ्राम-अवयव को ही नाप सकता है। एक प्रयोग में वह इनमें से एक से ज्यादा अवयव को नहीं नाप सकता है। यह कथन अधिक स्पष्ट हो जाएगा यदि हम याद रक्खें कि ४—भुजाक्ष के समान्तर आभ्राम एवं चौम्बिक घूर्ण (magnetic moment) को नापने के लिए विद्युदणु को एक समदिश चौम्बिक-शक्ति के प्रभाव में लाना पड़ता है। फिर भी फलों में अनुसम्बन्ध है, दूसरे शब्दों में, परमाणु १ के आभ्राम के किसी भी अवयव का नाप, प्राचीन सिद्धान्त के समानुकूल, अप्रत्यक्ष रूप से परमाणु २ के आभ्राम के उसी अववय का नाप देता है। क्यों कि उपकल्पनानुसार दोनों परमाणु मिथः क्रिया से स्वतन्त्र हैं, हमें एक ऐसा साधन प्राप्त हो गया है जिसके सहारे हम परमाणु २ को बिना तंग किए उसके किसी स्वेच्छ (arbitrary) आभ्राम-अवयव को नाप सकते हैं। यदि हम वास्तविक-इकाई (element of reality) की परिभाषा के तात्पर्य से आ० रो० पो० द्वारा दी गई मान्यता (१) (postulate) को अपना लें तो अणु १ का L_z नापने के उपरांत हमें अणु २ के L_z को एक वास्तविक-इकाई मानना ही पड़ेगा। यदि यह सत्य है तब अणु १ के L_z को नापने की क्रिया होने के पहिले भी अणु २ में अवश्य इस वास्तविक-इकाई की उपस्थिति विद्यमान रही होगी। अब यह ध्यान देने योग युक्ति है कि अवलोकनकर्त्ता (observer) अपने यन्त्र को एकस्वेच्छ दिशा में घुमाने के लिए आजाद है जब तक कि परमाणु उड़ रहे हैं। अतः बिना परमाणु २ को तंग किए वह परमाणु १ का L_z जिस दिशा में वह चाहे नाप सकता है। फलस्वरूप, आ० रो० पो० की दूसरी मान्यता के अनुसार, परमाणु २ में, उसके तीनों आभ्राम-अवयवों की एक साथ परिभाषा के अनुरूपी, सही परिभाष्य वास्तविक इकाइयों की उपस्थिति अनिवार्य है। पर चूंकि, तरंग-कृत्य (wave-function) एक समय में अधिक से अधिक इनमें से एक अवयव को ही सही तौर पर निश्चित (Specify) कर सकता है, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तरंग-कृत्य परमाणु २ में उपस्थित सभी वास्तविक-इकाइयों का पूरा ब्यौरा देने में असमर्थ है। यदि हम इससे सहमत हैं तो हमें किसी नए सिद्धान्त की खोज करनी चाहिए जिसके अन्तर्गत अधिक पूर्ण-वर्णन मुमकिन है। खैर, तुरन्त ही होर महाशय ने आ० रो० पो० की उत्पत्ति में अन्तर्हित संदिग्धता (ambiguity) को खोज निकाला। उन्होंने कहा है कि पूर्ण भौतिक सिद्धांत के सम्बन्ध में आ० रो० पो० द्वारा दी गई आवश्यक-मान्यता निम्नलिखित धारणा पर आधारित है—

'विश्व का वास्तविक-इकाइयों में सही विश्लेषण किया जा सकता है जिनमें प्रत्येक एक संकर (Complex) सिद्धांत में उपस्थित सही परिभाष्य गणितराशि का प्रतिभाग (Counterpart) है।'

पदार्थ की मूल प्रकृति के बारे में ऐसी उपकल्पना देखने में आपत्तिविहीन ज्ञात होती है पर वह कणिका-यन्त्रिका में इस रूप में मान्य नहीं है। यहाँ पर व्होर-समपूरक-प्रनियम (Bohr's principle of Complementarity) लागू है जिसके अनुसार, 'कणिका-स्तर पर, प्रणाली के अत्यधिक सामान्य भौतिक गुणों का वर्णन समपूरकद्वय चलों (Complementay pair of variables) के टर्म्स में होना आवश्यक है। इन द्वय चलों में से प्रत्येक दूसरे की परिभाषा-कोटि (degree of definition) की क्षति के बदले अधिक परिभाष्य है।' इस प्रनियम का प्रसारित प्रयोग करने पर हम देखेंगे कि कणिका-स्तर पर, एक दी हुई प्रणाली के गुण जैसे, विद्युदणु की स्थिति और गमता चल, वास्तव में भलीभांति

परिभाषित राशियां नहीं हैं वरन् केवल संभावी शक्तियां (potentialities) हैं। इस संभावीशक्ति के कारण-वश उचित मापयन्त्र से मिथः क्रिया होने पर कोई एक चल दूसरे की क्षति के अनुरूप अधिक परिभाषित होने के योग्य है। अतः यह कथन कि ये गुण विद्युदणु के हैं मिथ्या हो गए क्यों कि इन संभावीशक्तियों का उदय (realisation) होना बहुत कुछ उस प्रणाली पर भी निर्भर है जिससे मिथःक्रिया होती है। दूसरे शब्दों में विद्युदणु के कोई सही परिभाषित 'वास्तविक-इकाइयाँ' नहीं हैं। इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कणिका-स्तर पर तरंग-कृत्य द्वारा दिया गया गणित-वर्णन प्रणाली की वास्तविक क्रिया से एक-से-एक अनुरूपिता (One to one Cosrrespondence) का संबंध नहीं स्थापित करता वरन् केवल सांख्यिकीय अनुरूपित करता है। वास्तव में विश्व एक अभाज्य पूर्ण है जिसमें कि हिस्से उपनयन (approximations) की तरह उदय (appear) होते हैं। इस कथन की सत्यता का अनुमान तुरंत हो जाएगा यदि हम याद रक्खें कि विद्युदणु को उसके अणु एवं तरंग समान अन्तर्हित गुणों के कारण एक तत्व (entity) नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार हम आ. रो. पो. द्वारा दी गई मान्यताओं का निवारण करने में सफल हैं।

अब हम इस स्थिति में हैं कि आ. रो. पो. उपपत्ति के फलों को यह साबित करने के लिए प्रयोग कर सकें कि कणिका-सिद्धान्त में छुपे-चलों की धारणा अमान्य है। आ. रो. पो. की धारणाओं से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यदि विश्व का सही परिभाषित तत्वों के टर्म्स में वर्णन दिया जा सकता है, तब दो अक्रमविनिमयशील (non commutative) चलों, जैसे स्थिति और गमता, की उचित व्याख्या यह होगी कि वे एक साथ विद्यमान वास्तविक-इकाइयों के अनुरूपी हैं। अनियतवाद-प्रनियम (Principle of Indeterminacy) को समझने के लिए तब हमें यह मान लेना पड़ेगा, कि छुपे-चलों की अज्ञानतावश जो कि राशियों का सबकाल में मूल्यांकन करते हैं, हम दोनों चलों को एक साथ सही नापने में असमर्थ हैं। परन्तु ऐसी कोई भी मान्यता कि दोनों अक्रमविनिमयशील चल एक साथ विद्यमान वास्तविक इकाइयों के अनुरूपी हैं और उनको नापना, हमारी असमर्थता ही है, कुछ उपकल्पित प्रयोगों का विश्लेषण करने के उपरांत एक ऐसे फल पर हमें ले जाएगी जो कि अनियतवार प्रनियम के फल के विपरीत होगा। पर अनियतवार-प्रनियम कणिका सिद्धांत के मूल नियमों में से है। अतः छुपे-चलों का कोई भी सिद्धान्त हमें कणिका-सिद्धान्त के सब फलों तक नहीं पहुँचा सकता है।

कुछ दार्शनिकों ने कणिका-सिद्धान्त में उपस्थित अणु-तरंग द्वैत (Wave-particle dualism) की आलोचना इस बात पर की है कि एक विद्युदणु की कल्पना एक साथ एक अणु और तरंग के रूप में करना अपनी बेवकूफी जाहिर करना है। इस भ्रम का उदय जल्दी-बाजी के कारण ही हुआ है। कणिका-सिद्धांत में विद्युदणु पूर्ण-रूप से न तो अणु समान है और नहीं तरंग समान, वरन् जैसा पहिले मैं कह चुका हूँ विद्युदणु कुछ एक ऐसी चीज है जो कि संभावीशक्तिवश इनमें से किसी भी दशा की, दूसरी दशा की क्षति के अनुरूपी, वृद्धि कर सकता है। कुछ विचारक तो अपनी कल्पना में इतनी दूर तक चले गए हैं कि उन्होंने विद्युदणु को एक संकर (complex) वस्तु माना है जो कि नरे भागों में बना हुआ है। अपने वातावरण में उपस्थित बलों (forces) के अनुसार ये भाग केवल अपने को नवीन रूप से शृंखलाबद्ध कर लेते हैं। इस तरह वे तरंग समान से अणु-समान पदार्थ में परिणित हो जाते हैं। परन्तु ऐसा कोई भी चित्र अपने तत्व (contents) में छुपे-चलों की धारणा के समान होगा (इस उदाहरण में—भिन्न-भिन्न भागों की स्थिति) जो कि वास्तव में पूर्ण विद्युदणु के भविष्य को मालूम करते हैं। इस प्रकार की धारणा आज के कणिका-सिद्धान्त में अमान्य हैं। भविष्य में कोई ऐसे अनजान प्रयोग का आविष्कार हो जाए जो कणिका-सिद्धान्त के फलों के विपरीत चला जाए तब हमें कणिका-सिद्धान्त में सुधार इस प्रकार से करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि नया सिद्धान्त आज के कणिका-सिद्धान्त की ओर सीमा (limit) की तरह उपगमन (approach) करता है, उसी प्रकार से जैसे कि कणिका-सिद्धान्त प्राचीन-सिद्धान्त की ओर उपगमन करता है।

विज्ञान-समाचार

अमेरिका के मध्य-पश्चिमी कृषि-क्षेत्र में अनुसन्धान-केन्द्र द्वारा उद्योगों के विकास में योग

दस वर्ष पूर्व अमेरिका के ६ मध्यपश्चिमी राज्यों— नेब्रास्का, कन्सास, ओक्लाहोमा, आयोवा, मिसूरी और आर्सन्सौ के नेताओं ने इस इलाके की आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन किया था। निरीक्षण के फलस्वरूप उनको जिन बातों का पता चला वे सन्तोषजनक नहीं थीं।

उक्त राज्यों की अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करने वालों को मालूम हुआ कि अमेरिका की कुल भूमि का १३ प्रतिशत तथा सबसे उच्च कोटि की उपजाऊ भूमि का ४६ प्रतिशत भाग इन्हीं राज्यों में है। लेकिन कठिनाई यह थी कि उपजाऊ प्रदेश होते हुए भी वहाँ की जन संख्या राष्ट्र की कुल जन संख्या का केवल १० प्रतिशत थी, राष्ट्रीय आय में से उसे केवल ८ प्रतिशत हिस्सा ही मिलता था तथा कारखानों में तैयार होने वाली वस्तुओं का केवल ६ प्रतिशत भाग ही वहाँ तैयार होता था।

इन राज्यों की अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करने के उपरान्त वे लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उद्योगों का विकास करके उन राज्यों की अर्थ-व्यवस्था को सन्तुलित किया जा सकता है।

उन्होंने यह निश्चय किया कि उद्योगों के विकास का सबसे अच्छा तरीका एक ऐसे औद्योगिक अनुसन्धान-केन्द्र की स्थापना करना है जहाँ नई वस्तुएँ तैयार की जायें और नवीन तथा उन्नत औद्योगिक विधियों की खोज की जाये। इस प्रकार १६४४ में इन राज्यों में लाभ न कमाने वाली 'मिडवेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट' की स्थापना की गई।

उस समय से यह अनुसन्धान संस्था खाद को पैक करके सुरक्षित रखने, हवाई जहाज के इंजिन के पुर्जों को साफ करने वाली सामग्री तैयार करने तथा कांच के रेशे तैयार करने की नई विधियों का विकास करने के कार्य में संलग्न रही है। इन अनुसंधानों के फलस्वरूप उन राज्यों में नये नये उद्योगों का विकास तेजी से हो रहा है।

'मिडवेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट' के प्रैसिडेन्ट डा० चार्ल्स एन किम्बाल का कथन है; इन्स्टिट्यूट में किये गये विकास-कार्यों और अनुसन्धानों के फलस्वरूप ही उक्त राज्यों में पिछले तीन वर्षों में १ करोड़ डालर की प्राइवेट पूँजी नये कारखानों को खोलने में लगाई गई है। इस पूँजी में से ५० लाख डालर ६ ऐसे कारखाने खोलने पर व्यय किये गये हैं, जिनमें गृह-निर्माण सामग्री, खाद्य-पदार्थ तथा पशुओं का दाना-चारा तैयार किया जाता है। इन कारखानों में लगभग ६०० व्यक्ति काम करते हैं तथा उनका लगभग ३ करोड़ डालर मूल्य का माल प्रति वर्ष बेचा जाता है।

अमेरिका के अन्य भागों में भी "मिडवेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट" की ही तरह के अनुसन्धान-केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इनमें प्रमुख अनुसन्धान केन्द्र हैं, 'सदर्न रिसर्च, इन्स्टिट्यूट बर्मिघम (अलाबामा) साउथ वेस्टरिसर्च इन्स्टिट्यूट (टैक्सास) स्टैनफोर्ड रिसर्च इन्स्टिट्यूट पाल्टो आल्टो (कैलिफोर्निया)।

'मिडवेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट' तो इस प्रकार की संस्थाओं का एक नमूना है। 'गस्टिन बेकन मैनुफैक्चरिंग कम्पनी' के वाइस प्रैसिडेन्ट जोजफ स्टीफेन्स ने यह बताया है कि 'मिडवेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट' ने उनकी कम्पनी की सहायता किस प्रकार की।

सबसे पहले तो उनकी कम्पनी को यह पता लगा कि अनुसन्धान-केन्द्र में उच्च वेतनभोगी १०५ वैज्ञानिक

विशेषज्ञ काम करते हैं। कोई छोटी या मध्यम श्रेणी की कम्पनी इतने वैज्ञानिक नहीं रख सकती।

स्टीफेन्स की कम्पनी ३५ लाख डालर की पूँजी से कांच के रेशे तैयार करने का उद्योग प्रारम्भ करना चाहती थी। इस उद्योग को प्रारम्भ करने से पहले कम्पनी ने इस अनुसन्धान-संस्था से वैज्ञानिक सहायता मांगी। अनुसन्धान केन्द्र के कुशल वैज्ञानिकों की सहायता से कम्पनी एक कारखाना खोलने में सफल हुई जिसमें आजकल ४०० कारीगर काम करते हैं।

इस अनुसन्धान-केन्द्र ने इसी प्रकार और बहुत सी कम्पनियों की भी सहायता की है। कुछ कम्पनियाँ तो अपनी परीक्षणताओं की कमी पूरी करने के लिये अनुसंधान-केन्द्र के यन्त्रों का भी उपयोग करती हैं।

१९४४ से लेकर अब तक 'मिडवैस्ट रिसर्च इन्स्टिटयूट' में ७६० योजनाओं पर अनुसन्धान-कार्य किया जा चुका है। इन योजनाओं पर किये गये अनुसन्धानों के लिये प्राइवेट कम्पनियों को २५ डालर से लेकर १ लाख डालर तक व्यय करने पड़े हैं। इसके अलावा रिसर्च इन्स्टिट्यूट में अपने कोष से भी विशिष्ट अनुसन्धान-कार्य किया जाता है, जैसे कैन्सर रोग तथा अनाज में कीडा न लगने देने सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य। तथापि मिडवेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट से प्रति वर्ष १० लाख डालर तक के प्राइवेट अनुसन्धान कार्य भी करायें जाते हैं।

यद्यपि 'मिडवेस्ट इन्स्टिट्यूट' का मुख्य उद्देश्य ६ राज्यों के प्रदेश में उद्योगों के विकास में योग देना है परन्तु यह अन्य क्षेत्रों तथा कभी-कभी विदेशों की प्राइवेट कम्पनियों की भी सहायता करती हैं। उदाहरणार्थ, 'स्टैन्डर्ड फ्रूट एण्ड स्टीमशिप' के तत्वावधान में 'रिसर्च इन्स्टिट्यूट' ने होन्डुरास (मध्य अमेरिका) में एक केन्द्रीय परीक्षणशाला की स्थापना की है जो केले के रोग के सम्बन्ध में अनुसन्धान करेगी।

'मिडवेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट' ने इतने अल्पकाल में आशा से कहीं अधिक सफलता प्राप्त की है। १९४४ में ४०० व्यक्तियों से ५ लाख डालर चन्दा एकत्र करके इसकी स्थापना की गई थी। १९४७ में इसके विस्तार के लिए उक्त राज्यों के होटलो, बैंकों, रेलवे कम्पनियों अखबारों, बीमा कम्पनियों, दूकानों व थियेटरों आदि सभी व्यावसायिक वर्गों से ७॥ लाख डालर चन्दा एकत्र किया गया था।

सिंचाई, बिजली और नौका-नयनकी विशेष व्यवस्था—नरमदा-घाटी की कई योजनाओं की जाँच-पड़ताल

अपने उपलब्ध साधनों को जुटाकर, भारत आज अनेक विशाल, योजनाओं द्वारा अधिक से अधिक भूमि के लिए सिंचाई की सुव्यवस्था करने का उद्योग कर रहा है। नदी-घाटी योजनाओं की विशेषता यह है कि नदियों पर बांध खड़े करके, उनका वह जल जो व्यर्थ में ही बह जाता है, विशाल जलाशयों के रूप में इकट्ठा किया जाय, और फिर, आवश्यकतानुसार, उस संचित जल-राशिको धीरे-धीरे निकाल कर, उसे सिंचाई, पन-बिजली के उत्पादन तथा नदियों में नौका-नयन के लिए काम में लाया जा सके।

भारत में कुल लगभग २,००० लाख भूमि में खेती होती है, जिसकी वार्षिक उपज लगभग ४२० लाख टन है। किन्तु खेती की इस भूमि में से केवल १९ प्रतिशत के लिए ही सिंचाई का प्रबंध है, और इस प्रकार देश के समस्त साधनों से प्राप्त हो सकने वाली कुल जल-राशि का केवल ६ प्रतिशत ही सिंचाई के काम आ पाता है। इसका दुष्परिणाम देश में अन्न का अभाव है, और प्रति वर्ष भारत को लगभग ४० लाख टन अन्न की कमी पड़ा करती है, जो वर्षा न होने पर कभी-कभी ६० लाख टन तक पहुँच जाती है।

यही कारण है कि भारत सरकार तथा योजना-कमीशन ने इस देश की प्रथम पंच-वर्षीय योजना में उक्त नदी-घाटी योजनाओं का औरों से पहले ध्यान रखा है। स्वाधीनता के बाद से इनमें से कई योजनाओं के बारे में जांच-पड़ताल की जा रही है तथा कई योजनाओं का निर्माण-कार्य चालू है। यह सब इस बात को दृष्टि में रख कर किया जा रहा है कि कम से कम समय के भीतर इन योजनाओं से देश को लाभ होने लगे। राज्य-सरकारों को भी इस दिशा में प्रोत्साहित किया गया है, और उनके

साधन कम होने पर, 'केन्द्रीय जल तथा शक्ति कमीशन' के द्वारा केन्द्र ने उनकी सहायता की है। आशा की जाती है कि इन सुविचारित योजनाओं के फलस्वरूप खेती की ३०० लाख एकड़ और भूमि में सिंचाई का विस्तार किया जा सके और विद्युत-शक्ति का उत्पादन बढ़ाकर ४०० लाख किलोवाट तक पहुँचाया जा सकेगा।

नर्मदा-घाटी योजना

उपर्युक्त नदी-घाटी योजनाओं में से एक योजना नरमदा-घाटी की भी है, जिसकी जांच-पड़ताल इन दिनों जारी है। नरमदा प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग ३७,००० वर्ग मील है। मध्य प्रदेश के मंडला, जबलपुर, छिंदवाड़ा, बेतूल, होशंगाबाद, तथा निमाड़ जिलें, भोपाल तथा मध्य-भारत के दक्षिणी क्षेत्र और बम्बई राज्य का बड़ौदा जिला इसी प्रदेश में है। नरमदा की कई सहायक नदियाँ इन जिलों से होकर बही हैं, जिनमें से उत्तर की ओर, हिराऊ, सिंधोर, तेंदोनी तथा बर्ना और दक्षिण की बड़नेर, बंजर, शेर, शाकर, दूधी तथा तावा मुख्य हैं।

नरमदा और उसकी सहायक नदियों पर संभवतः अनेक ऐसे स्थल उपलब्ध हो सकते थे, जहाँ बाँध खड़े करके जल का प्रवाह रोका और जल-राशि संचित की जा सकती। ऐसा करने से डेल्टा के क्षेत्र में बाढ़ों का भय दूर हो जाता, खेती की बहुत सी भूमि के लिए सिंचाई की व्यवस्था हो सकती, भारी परिमाण में पन-बिजली पैदा की जाती जिससे घाटी के खनिजों का सदुपयोग किया जा सकता और साथ ही काफी भीतर तक नदी द्वारा नौका-नयन सम्भव हो सकता। ये सारी बातें बहुत से बाँध बनाकर ही संभव हो सकती थीं, जिनमें से मुख्य बाँध इन स्थानों पर होने चाहिये थे—धुघरी, बिलघड़ा, बरगी, तावा, होशंगाबाद, पुनासा, हरिन-फल और राजपीपला।

सीमित कार्य

किन्तु धन, जन तथा साज-सामान की प्राप्ति में पड़ने वाली कठिनाइयों के कारण यह निर्णय किया गया कि पहले केवल उन बाँध-योजनाओं का ही काम हाथ में लिया जाय, जिन्हें कम से कम समय के भीतर पूरा किया जा सके। अतएव, सितम्बर, १९५८ में केवल बरगी, तावा, पुनासा और भड़ौच योजनाओं की ही जाँच-पड़ताल हाथ में ली गयी। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखा गया कि इन योजनाओं के काम को इस रूप में क्रियान्वित किया जाए कि सारे नरमदा-प्रदेश के विकास कार्य में कोई असुविधा न हो। इस जाँच-पड़ताल का काम अब धीरे-धीरे पूरा हो आया है।

बरगी-योजना के अंतर्गत मुख्य नदी पर बरगी तथा बिलघढ़ा में दो बाँध खड़े किये जायँगे और एक बाँध बड़-नेर नामक सहायक नदी पर धुघरी के पास खड़ा किया जायगा। इससे १८ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी और ८०,००० किलोवाट बिजली तैयार हो सकेगी। ...तावा-योजना के फलस्वरूप २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और २०,००० किलोवाट बिजली पैदा की जा सकेगी।...पुनासा-योजना के फलस्वरूप बाढ़ की रोकथाम होगी और ३ लाख किलोवाट बिजली पैदा की जा सकेगी। इससे सिंचाई केवल १॥ लाख एकड़ भूमि की ही होगी, पर जल की नियमित निकासी से, भड़ौच जिले में एक और बाँध खड़ा करने से वहाँ की उर्वर भूमि की सिंचाई बढ़ायी जा सकेगी।...भड़ौच योजना से ८ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जा सकेगी।

नरमदा नदी में अभी समुद्र से लेकर ७० मील भीतर तक ही नौका-नयन होता है, किन्तु प्रस्ताविक जल-कुण्डों के निर्माण, आदि से ५५० मील भीतर तक, अर्थात् जबलपुर तक नौका-नयन संभव हो सकेगा।...उपर्युक्त जाँच-पड़ताल के सिलसिले में, नरमदा की कई अन्य सहायक नदियों की योजनाओं की ओर भी ध्यान गया है, जिनकी पूरी जाँच-पड़ताल यथासमय करायी जा सकेगी।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—*विज्ञान प्रवेशिका, भाग १*—विज्ञान की प्रारम्भिक बातों की उत्तम पुस्तक—ले० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम, एस, सी; ।=)

२—*चुम्बक*—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी; मू० ।॥=)

३—*मनोरंजन रसायन*—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी; २)

४—*सूर्य सिद्धान्त*—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सब से सुलभ उपाय—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; छः भाग मूल्य ८)। इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—*वैज्ञानिक परिमाण*—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहाल-करण सेठी डी० एस-सी०; १)

६—*समीकरण मीमांसा*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥) द्वितीय भाग ॥=)

७—*निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपालकृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी; ॥)

८—*बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित*—इंटर-मीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले०—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—*वर्षा और वनस्पति*—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—*सुवर्णकारी*—ले० श्री० गंगाशंकर पचौली; ।=)

११—*विज्ञान का रजत जयन्ती अंक*—विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का ईतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह १)

१२—*व्यङ्ग-चित्रण*—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम ए०; १७५ पृ , सैकड़ों चित्र, सजिल्द २)

१३—*मिट्टी के बरतन*—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द २) (अप्राप्य)

१४—*वायुमंडल*—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले०—डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द, २)

१५—*लकड़ी पर पालिश*—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का ब्योरेवार वर्णन। ले०-डा० गोरख-प्रसाद और श्री रामरतन-भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; ५) (अप्राप्य)

१६—*कलम पेवंद*—लेखक श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; २० चित्र; मालियों मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी, सजिल्द; २)

१७—*जिल्दसाजी*—इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम ए० सजिल्द, २)

१८—*तैरना*—तैरना सीखने की रीति अच्छी तरह समझाई गई है। ले०—डा० गोरखप्रसाद, मूल्य १)

१९—*सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग*—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जन्तुओं के विचित्र संसार, पेड़ों पौधों की अचरज-भरी दुनिया सूर्य, चन्द्र, और तारों की जीवन-कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। सजिल्द मूल्य ६) (अप्राप्य)

२०—*वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ*—ले०—डा० संतप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ॥)

२१—*खाद्य और स्वास्थ्य*—ले०—डा०—ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ॥)

२२—*फोटोग्राफी*—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), फोटोग्राफी सिद्धान्त और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, सजिल्द मूल्य ४)

२३—*फल संरक्षण*—फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार, चटनी, सिरका, आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी० कृषि-विशारद, सजिल्द मूल्य २॥)

२४—*शिशु पालन*—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई। गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल, शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार-विहार आदि का वैज्ञानिक विवेचन। मूल्य ४)

२५—*मधुमक्खी पालन*—द्वितीय संस्करण। ले०—पंडित दयाराम जुगड़ान; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकों या जन-साधारण को इस पुस्तक का अधिकाँश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा, मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। २८५ पृष्ठ; अनेक चित्र, सजिल्द; ३)

२६—*घरेलू डाक्टर*—लेखक और सम्पादक-डाक्टर जी, घोष, एम० बी० बी० एस, डी० टी० एम०, प्रोफेसर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। १५० चित्र, सजिल्द, ४)

२७—*उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर*—संपादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। मूल्य ३॥)

नवीन पुस्तकें

२८—*फसल के शत्रु*—लेखक श्री शंकर राव जोशी मू० ३॥)

२९—*साँपों की दुनिया*—ले० श्री रामेश वेदी मू० ४)

३०—*पोर्सलीन उद्योग*—ले० प्रो० हीरेन्द नाथ बोस मू० ॥)

३१—*राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ*—मू० २)

३२—*गर्भस्थ शिशु की कहानी*—ले० मारग्रेट शी गिल्बर्ट (अनु० प्रो० नरेन्द्र) मू० २॥)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—*साबुन-विज्ञान*—विद्यार्थियों और व्यवसाइयों के लिये एक सरल और सुबोध पुस्तक, जिनमें साबुन तैयार करने की विभिन्न विधियाँ और नाना प्रकार के साबुन तैयार करने की रीतियां हैं, विवरण के साथ-साथ सैकड़ों के साथ-साथ अनुभूत और प्रमाणित नुसखे भी दिये गये हैं। लेखक श्री श्याम नारायण कपूर बी० एस-सी, ए० एच० बी० टी० आई०, फेलो, आयल टेकनोलोजिस्ट एसोसिएशन मूल्य ६)

२—*भारतीय वैज्ञानिक*—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियां—ले०—श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ६८० पृष्ठ, सजिल्द; मूल्य ३)

३—*वैक्युमब्रेक*—ले०—श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राईवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २)

४—*यांत्रिक चित्रकारी*—ले० ओंकारनाथ शर्मा, मूल्य २॥)

५—*विज्ञान के महारथी*—लेखक श्री जगपति चतुर्वेदी। संसार भर के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के जीवन व खोजपूर्ण कार्यों का विस्तृत वर्णन है। मूल्य २)

६—*पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ*—ले० श्री जगपति चतुर्वेदी। जितने प्रमुख भौगोलिक अन्वेषण हुए हैं उन सबका रोचक वर्णन है। मूल्य १॥)

७—*विज्ञान जगत की झाँकी*—ले० प्रो० नारायण सिंह परिहार। सामान्य ज्ञान तथा विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। मूल्य २)

८—*खोज के पथ पर*—ले० श्री शुकदेव दुबे—जान को हथेली पर रखकर दुर्गम स्थानों एवं पर्वतों के खोज करने वालों का रोमांचकारी वर्णन। मूल्य ॥)

पता—विज्ञान परिषद, प्रयाग

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh for use in Schools, Colleges and Libraries

विज्ञान के नियम

१—वार्षिक मूल्य ३) तथा प्रति अंक का ।=) है

२—प्रतिमास प्रथम सप्ताह में विज्ञान प्रकाशित होता है।

३—ग्राहक किसी भी मास से बनते हैं।

४—वार्षिक मूल्य सदा दो एक मास पूर्व अग्रिम भेजने से ।=) वी. पी. व्यय की बचत हो सकती है।

५—नमूने की प्रति माँगने पर या बिना मांगे भी ज्ञात पतों पर मुफ्त भेजी जाती है।

लेखकों से निवेदन

१—लेख किसी भी विषय के वैज्ञानिक पक्ष पर होना चाहिए।

२—लेख मनोरंजक और सुबोध होना चाहिए।

३—कागज पर एक ओर ही सुपाठ्य लिखना चाहिए।

४—चित्र सदा काली स्याही से बने होने चाहिए। हल्के या अन्यरंग में बने चित्रों का ब्लाक नहीं बन सकता।

५—लेख भेजने के दो मास पश्चात् भी न छपने पर स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य—तीन रुपये, एक संख्या का मूल्य—पाँच आने।

Reg. No. 3[illegible]

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादि बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम

सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद् बैंक रोड, इलाहाबाद

विज्ञान

भारतीय विज्ञान कांग्रेस विशेषांक

फरवरी, मार्च १९५३
कुंभ, मीन २००९

भाग ७६
संख्या ५, ६

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने
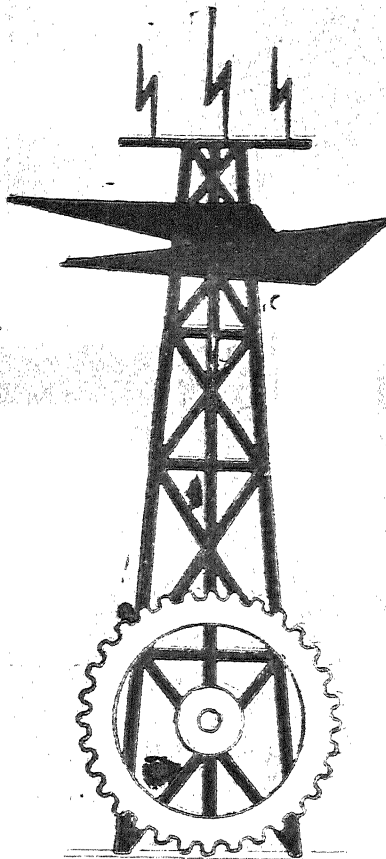
Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh for use in Schools, Colleges and Libraries

डा० देवेन्द्र मोहन बोस
प्रधान सभापति, भारतीय विज्ञान कांग्रेस

डा० बद्री नाथ प्रसाद
प्रधान मंत्री, भारतीय विज्ञान कांग्रेस एसोसिएशन

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५

भाग ७६ | कुम्भ २००९; फरवरी १९५३ | संख्या ५

परिषद का इतिहास

महामना स्वर्गीय पं० मदन मोहन मालवीय ने जिस समय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की स्थापना की उसी समय उनसे प्रेरणा पाकर म्योर सेंट्रल कालेज के कतिपय अध्यापकों ने—जिनमें महामहोपाध्याय पं० गंगा नाथ झा, प्रो० सालिग्राम भार्गव, प्रो० हमीदुद्दीन और प्रो० रामदास गौड़ प्रमुख थे—विज्ञान परिषद् की स्थापना करने का विचार दृढ़ किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह वह समय था जब स्कूलों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था, और हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की रचना का विचार भी करना दूर था। अनुकूल परिस्थितियों के न होते हुए भी कुछ व्यक्तियों ने, यथा महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र, तथा गुरुकुल कांगड़ी में श्री रामशरण दास एवं श्री महेशचरण सिंह ने कुछ पुस्तकें हिन्दी में अवश्य लिखी थीं। परिषद् की स्थापना १० मार्च १९१४ को म्योर सेंट्रल कालेज, प्रयाग में हुई, और इसका उद्देश्य यह था कि मातृभाषा द्वारा वैज्ञानिक साहित्य जनता तक पहुँचाया जाय। यह कहना अनुचित न होगा कि प्रयाग विश्वविद्यालय के वायस चासंलर एवं इस प्रदेश के सुविख्यात नेता श्री सुन्दर लाल आदि स्वनामधन्य व्यक्तियों की हमें सहानुभूति और सहयोग प्राप्त थे। विज्ञान परिषद् की उत्कृष्टता का प्रमाण इस परिषद् के सभापतियों की नामावली से स्पष्ट हो जायगा—

परिषद् के सभापति

१—डा० सर सुन्दर लाल	१९१३–१९१७
२—माननीय सर राजा राम पाल सिंह	१९१७–१९२०
३—श्रीमती डा० एनी बीसेन्ट	१९२०–१९२१
४—डा० सी० वाइ० चिन्तामणि	१९२२–१९२५
५—श्रद्धेय बाबू शिव प्रसाद गुप्त	१९२५–१९२७
६—महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा	१९२७–१९३०
७—डा० नीलरत्न धर	१९३०–१९३३
८—डा० गणेश प्रसाद	१९३३–१९३५
९—डा० कर्म नारायण वाहल	१९३५–१९३८
१०—प्रो० फूल देव सहाय वर्मा	१९३८–१९४१
११—प्रो० सालिग राम जी भार्गव	१९४१–१९४५
१२—डा० श्री रंजन	१९४५–१९४८
१३—श्री हरिश्चन्द्र जी जज	१९४८–१९५१
१४—श्री हीरालाल खन्ना	१९५१–

अपने उद्देश्य के अनुसार सन् १९१४ में विज्ञान परिषद् ने मासिक पत्रिका 'विज्ञान' निकालना प्रारम्भ किया जिसे प्रकाशित होते हुए अब ३८ वर्ष हो चुके हैं। इस पत्रिका में विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों पर लेख निकल चुके हैं। लगभग १५००० पृष्ठों की यह वैज्ञानिक सामग्री हमारे लिये गौरव की बात है। भारत की किसी भी भाषा में वैज्ञानिक विषयों की इतनी सामग्री जनता के पास अब तक नहीं पहुँची।

विज्ञान मासिक पत्रिका के अतिरिक्त परिषद् ने प्रारम्भ से ही जनता के उपयोग की सरल और सुगम वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य हाथ में लिया। हमारी सबसे पहली पुस्तक विज्ञान प्रवेशिका थी और उसके बाद से आज तक हमने जो प्रकाशन किए, उनमें निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों ने जनता का ध्यान वैज्ञानिक विषयों की ओर आकर्षित किया।

१—**विज्ञान प्रवेशिका भाग १**—रामदास गौड़—सालगराम भार्गव—१९१४
२—**विज्ञान प्रवेशिका भाग २**—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव—१९१७
३—**मिफ्ताह-उल-फनून**—अनु० सैयद मुहम्मद अली नामी—१९१५
४—**ताप**—प्रेम वल्लभ जोषी—१९१५
५—**हरारत**—अनु० प्रो० मेंहदी हुसेन नासिरी—१९१६
६—**पशु पक्षियों का शृँगार रहस्य**—सालिग्राम वर्मा—१९१७
७—**केला**—गंगा शंकर पचौली—१९१७
८—**सुवर्णकारी**— ”
९—**चुम्बक**—सालगराम भार्गव—१९१७
१०—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—अनु० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव—१९१७
११—**क्षय रोग**—१९१७
१२—**दियासलाई और फासफोरस**—रामदास गौड़—१९१८
१३—**शिक्षितों का स्वास्थ्य-व्यतिक्रम**—गोपाल-नारायण सेन सिंह—१९१८
१४—**पैमाइश**—मुरलीधर, नन्दलाल—१९१९
१५—**कपास**—तेज शंकर कोचक—१९२०
१६—**कृत्रिम काष्ठ**—गंगा शंकर पचौली—१९२०
१७—**आलू** ” ”
१८—**हमारे शरीर की कथा**—बी० के० मित्र १९२०
१९—**जीनत वहश व तयर**—अनु० प्रो० मेंहदी हुसेन नासरी—१९२१
२०—**मनोरंजक रसायन**—गोपाल स्वरूप भार्गव—१९२३
२१—**सूर्य्य सिद्धान्त—विज्ञान भाष्य**—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव—मध्यमाधिकार—१९२४
स्पष्टाधिकार—१९२५
त्रिप्रश्नाधिकार—१९२७
चन्द्रग्रहणाधिकार से भूगोलाध्याय तक—१९२९
ज्योतिषोपनिषद् और मानाध्याय—१९४१
२२—**फसल के शत्रु**—शंकरराव जोषी
२३—**ज्वर निदान और शुश्रुषा**—बी० के० मित्र—१९२१
२४—**मनुष्य का आहार**—गोपीनाथ गुप्त वैद्य—१९२२
२५—**वर्षा और वनस्पति**—शंकरराव जोशी—१९२३
२६—**सुन्दरी मनोरमा की करुण कथा**—अनु० नवनिद्धिराय—१९२५
२७—**कार्बनिक रसायन**—डा० सत्य प्रकाश—१९२९
२८—**वैज्ञानिक परिमाण**—डा० निहालकरण सेठी, डा० सत्य प्रकाश—१९२९
२९—**साधारण रसायन**—डा० सत्य प्रकाश—१९२९
३०—**सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन**—युधिष्ठिर भार्गव—१९३०
३१—**समीकरण मीमांसा १ भाग**—सुधाकर द्विवेदी
३२— ” २ भाग— ” १९३१
३३—**वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द १ भाग**—सत्य प्रकाश—१९३०

३४—निर्णायक—गोपाल केशव गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री।
३५—उद्भिज का आहार—एन० के चटर्जी—१६३१
३६—रसायन इतिहास संबन्धी लेख—आत्माराम
३७—प्रकाश रसायन—वा० वि० भागवत—१६३२
३८—डा० गणेश प्रसाद का स्मारकांक—१६३५
३६—बीजज्यामिति—सत्य प्रकाश—१६३१
४०—उद्योग व्यवसायांक —१६३६
४१—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद—१६३७
४२—व्यंग्य चित्रण—अनुवादक रत्नकुमारी—१६३८
४३—स्व० रामदास गौड़ का स्मृति अंक—१६३८
४४—विज्ञान का रजत जयन्ती अंक – विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह।
४५—व्यंग चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०, १७५ पृष्ठ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द।
४६—वायुमण्डल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द।
४७—लकड़ी पर पालिश—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्री राम रतन भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द।
४८—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकर राव जोशी, २०० पृष्ठ, २० चित्र, सजिल्द।
४६—जिल्दसाजी—ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०, सजिल्द।
५०—तैरना—ले० डा० गोरख प्रसाद।
५१—सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरख प्रसाद, सजिल्द।
५२—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त प्रसाद टंडन, डी० फिल०।
५३—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० डा० ओंकार नाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल०।
५४—फोटोग्राफी—लेखक—श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन)।
५५—शिशु पालन—लेखक—श्री मुरलीधर बौड़ाई।
५६—मधुमक्खी पालन—द्वितीय संस्करण। ले० पंडित दयाराम जुगड़ान २८५ पृष्ठ, अनेक चित्र, सजिल्द।
५७—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक—डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर बद्री नारायण प्रसाद, पी-एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमा शंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरख प्रसाद, आदि। १५० चित्र, सजिल्द।
५८—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—संपादक डा० गोरख प्रसाद और डा० सत्य प्रकाश, २००० नुसखे, १०० चित्र।
५६—फसल के शत्रु—लेखक श्री शंकर राव जोशी, नवीन संस्करण।
६०—सांपों की दुनिया—ले० श्री रामेश वेदी
६१—पोर्सलीन उद्योग—ले० प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस।
६२— राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—
६३—गर्भस्थ शिशु की कहानी—ले० मारग्रेट शी गिल्बर्ट (अनु० प्रो० नरेन्द्र)।

विज्ञान परिषद् ने साहित्य के क्षेत्र में यह नया प्रयोग किया था। सामान्यतः लोगों की धारणा थी कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विषयों के प्रतिपादन की क्षमता नहीं है। परिषद् ने अनेक उदीयमान लेखकों को अवसर दिया कि वे वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखें और पुस्तकों की रचना करें। परिषद् के तत्वावधान में लेखकों ने लेखन कला की शिक्षा प्राप्त की, और परिषद् से ही नहीं, अन्य स्थलों से भी उन्होंने हिन्दी संसार को अच्छा साहित्य भेंट किया। इस प्रयोग के फलस्वरूप अब यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हम विश्वविद्यालयों तक की उच्च शिक्षा भी हिन्दी माध्यम द्वारा दे सकेंगे। वस्तुतः आज तो प्रयाग, लखनऊ, काशी, सागर, नागपुर आदि के कई विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी माध्यम द्वारा दी जानी प्रारम्भ हो गई है, प्रश्न-पत्र भी हिन्दी में आने लगे हैं और उचित साहित्य की रचना का कार्य भी प्रारम्भ हो गया है। परिषद् के कार्य और अनुभव से प्रेरणा पाकर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली स्थिरीकरण का भी प्रयास कई स्थानों पर आरम्भ हो गया है। केन्द्रीय सरकार की ओर से इस दिशा में जो कार्य हो रहा है उसे भी परिषद् के तैयार किये गये क्षेत्र से समुचित सहायता मिल रही है।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

३६ वें वर्ष (अक्टूबर १६५१ से सितम्बर १६५२) तक का कार्य-विवरण

परिषद का इस वर्ष का कार्य्य गत वर्ष की भाँति संतोषजनक रहा। इस वर्ष हमारा विज्ञान नियमित रूप से निकलता रहा। मार्च १६५२ में हमने एक राष्ट्रीय अनुसंधानशाला विशेषांक निकाला। ७२ पृष्ठ तथा २६ पूरे पेज के चित्र आर्ट पेपर पर थे। इसके छपवाने में हमें १३६१।।।) खर्च पड़ा। फिर भी हमने अपने सभ्यों तथा ग्राहकों को इसे वार्षिक चन्दे के ही अंदर दिया, कुछ अधिक न लिया। इसके अलावा फसल के शत्रु तथा गर्भस्थ शिशु की कहानी यह दो नई पुस्तकें हमने प्रकाशित की हैं। गर्भस्थ शिशु की कहानी William Wilkie द्वारा प्रकाशित Margret Shea Gilbert की पुस्तक The Biography of the Unborn का भाषानुवाद है। इस वर्ष हमारी उत्तर प्रदेश सरकार ने जो ५०००) अनावर्तक अनुदान हमें दिया उसी की सहायता से हम यह प्रकाशन कर सके हैं। अतः हम अपनी सरकार के विशेष आभारी हैं। इस सहायता के बिना हम यह प्रकाशन करने में असमर्थ रहते।

हमारे पास छपवाने के लिये बहुत सामग्री है। कुछ पुरानी पुस्तकें जैसे ताप, सूर्य्य सिद्धान्त, वायु मंडल, मिट्टी के बर्तन, भारतीय चीनी मिट्टियाँ तथा कलम पेवंद और घरेलू डाक्टर तथा उपयोगी नुसखे के अन्य भाग छपवाने हैं। इसके अलावा हमारे पुराने प्रसिद्ध लेखक श्री ओंकारनाथ जी शर्मा की पुस्तकें रेलवे इंजन, रेल-इंजन-संचालन, रेल-इंजन-दुर्घटना तथा औद्योगिक प्रबन्ध छपने के लिये तय्यार हैं परन्तु धनाभाव के कारण हम यह कार्य्य उठाने में असमर्थ हैं। सरकार या अन्य विज्ञान के उदार प्रेमियों की सहायता के बिना हम यह कार्य्य नहीं कर सकते।

अपने सभापति जी की प्रेरणा से परिषद ने इस वर्ष हिन्दी में वैज्ञानिक ज्ञान कोष के प्रकाशन का एक विशाल आयोजन उठाया है। हमारा प्रयत्न है कि इसका एक भाग हमारे कानपुर के विशेष अधिवेशन तक छप कर तय्यार हो जाय। इसके विषय सरल तथा पाठकों के समझने योग्य ढंग से लिखे जाँयगे। इसके अलावा बी० एस-सी० तक पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिये भी उपयोगी होंगे। इसके अधिकतर लेख अंग्रेजी में प्रकाशित इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopedia Britanica) के स्तर के होंगे। विषय चित्रों द्वारा मनोरंजक तथा लाभप्रद बनाने का प्रयत्न किया जायगा। इसके लिये हमने २५ विषयों के लिये ६३ विद्वानों का संपादक मंडल[1] बनाया है जिसमें हर विषय के उच्चकोटि के विद्वान हैं। यह कोष लगभग १००० पृष्ठ के ५-६ भागों में प्रकाशित होगा और इस योजना में प्रत्येक भाग पर लगभग साठ हजार रुपया खर्च होगा। परिषद की स्थिति को देखते हुए हमें इसका प्रकाशन स्वप्न ही लगता है परन्तु हमारे सभापति जी का निश्चय है कि वह इस स्वप्न को सत्यता में परिणित कर देंगे।

अपने मासिक पत्र विज्ञान को और अधिक उपयोगी, रोचक तथा लाभप्रद बनाने के लिये यह आवश्यक है कि हमारे ग्राहक बढ़ें तथा अधिक आर्थिक सहायता मिले। हम इस ओर प्रयत्नशील हैं।

गत वर्ष प्रयत्न करने पर भी धनाभाव के कारण हम अपनी चतुर्मासिक अनुसंधान-पत्रिका न निकाल सके। हमारे देश में अभी इस प्रकार की कोई पत्रिका नहीं है। इसमें अनुसंधान लेख तो हिन्दी में छपेंगे पर उनके सारांश हिन्दी, अँगरेजी और सम्भवतः फ्रैन्च व जर्मन में भी छपेंगे जिससे सारांश (abstracts) छापने वालों को आसानी हो तथा हमारे अनुसंधान लेख संसार के वैज्ञानिक क्षेत्र में स्थान पा सकें। अन्य देशों में इस प्रकार की पत्रिकायें छपा करती हैं। इसमें हमारा लगभग ३०००) रुपया प्रति वर्ष खर्च होगा। इसके संपादक मण्डल में डा० दौलतसिंह कोठारी, डा० कर्मनारायण बाहल, डा० श्री रंजन, डा० अवधेशनारायणसिंह तथा डा० सत्यप्रकाश हैं। हमारा प्रयत्न है कि हम शीघ्र इसको प्रारम्भ करने में समर्थ हो सकें।

गत वर्ष मैंने सभ्यों का ध्यान विज्ञान भवन की ओर दिलाया था। हमारे कार्यों का सुचारु रूप से न चल सकने का एक कारण हमारा अपना विज्ञान भवन का न होना है। हम इस ओर प्रयत्नशील हैं और विश्वास है कि एक दो वर्षों में ही हम अपना भवन बनवाने में समर्थ हो सकेंगे।

आय-व्यय के लेखे से स्पष्ट है कि हमारा कार्य्य घाटे में चल रहा है। परिषद पर २६६६) का कर्ज है। अगले वर्ष के अनुमान पत्र में विज्ञान के सम्बन्ध में १६२८) का घाटा है जो परिषद को देना होगा और इस प्रकार परिषद को भी इस कर्ज के अलावा ७२८) का और घाटा होगा। हमने सरकार से प्रार्थना की है कि हमारा अनुदान बढ़ाकर तथा अधिक अनावर्तक अनुदान देकर परिषद की सहायता करे। परिषद के सभी कार्यकर्ता, संपादक, लेखक सारा कार्य्य सेवा भाव से करते हैं। कुछ भी पारिश्रमिक नहीं लेते, इस प्रकार की संस्था की सहायता करने के लिये हम सभी से प्रार्थना करते हैं।

इस वर्ष आजीवन सभ्यों की संख्या ५८, सभ्यों की १४० तथा ग्राहकों की १६६ थी। परिषद के इस वर्ष के पदाधिकारी तथा अंतरंगी इस प्रकार थे :—

परिषद् के पदाधिकारी तथा अंतरंगी

सभापति—श्री हीरालाल खन्ना

उपसभापति—डा० गोरख प्रसाद

,, डा० निहाल करण सेठी

प्रधान मन्त्री—डा० रामदास तिवारी

मन्त्री—(१) डा० देवेन्द्र शर्मा

(२) डा० रमेशचन्द्र कपूर

कोषाध्यक्ष—डा० हीरालाल दुबे

स्था० अन्तरंगी—(१) डा० हरी शंकर चौधरी

(२) डा० दिव्य दर्शन पन्त

(३) डा० राम किशोर शर्मा

(४) डा० सन्त प्रसाद टंडन

प्रधान सम्पादक—डा० हीरालाल निगम

बाहरी अंतरङ्गी—(१) श्री जनार्दन प्रसाद शुक्ल (इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट आफ शुगर टेकनालाजी, कानपुर)

(२) डा० बृजमोहन, काशी वि० वि०

(३) डा० दौलत सिंह कुठारी, देहली

(४) डा० शिव कंठ पांडे, (लखनऊ विश्वविद्यालय)

(५) डा० ओंकारनाथ परती (सागर वि० वि०)

आय-व्ययपरीक्षक—डा० सत्य प्रकाश

परिषद का ३९ वें वर्ष (अक्टूबर १९५१–सितम्बर १९५२) के आय-व्यय का लेखा

आय

आय	
आजीवन सभ्यों से	२४१)
साधारण सभ्यों से	६३३≡)
पुस्तकों की बिक्री	१३१८।)॥
विज्ञान के ग्राहकों से	६१५॥=)
उ० प्र० सरकार से	६२००)
ब्याज से	१२४॥≡)॥।
पिछली रोकड़ बाकी ※	५३९।=)।
कुल आय	९६७२।≡)॥

※ गत वर्ष पुस्तकें छपवाने के लिये स्थायी कोष से ३६६६) उधार लिया गया था। अतः हिसाब बनाने में वह आय में लिया गया था। इसलिये यह रोकड़ बाकी वास्तविक नहीं है। उनको हिसाब में रखते हुये ३१२६॥-)॥। का घाटा था। इसी प्रकार इस वर्ष भी ३१०१।=) का घाटा है।

व्यय

व्यय	
लेखक का वेतन	६९०)
चपरासी का वेतन	४२७)
गोदाम का किराया	१८०)
इक्का ठेला	९=)
पारसल खर्च	७-)
स्टेशनरी	५।-)॥।
विज्ञान की छपाई	३००४॥-)
अन्य पुस्तकों की छपाई	२१७२॥≡)॥।
पोस्टेज	३२४॥≡)
फुटकर	११५-)॥
कागज	१७०१॥=)
ब्लाक	३९८॥।)
प्रूफ दिखाई	७५)
साइकिल मरम्मत	१५॥)॥
बैंक कमीशन	४-)
,, इन्सीडेन्टल	४)
कुल व्यय	९१०५-)॥
रोकड़ बाकी	५६७।=)
	९६७२।≡)॥

विज्ञान के सम्बन्ध में आय-व्यय

आय		व्यय	
ग्राहकों से	६१५॥=)	विज्ञान की छपाई कागज आदि	३१३९॥‒)
सभ्यों से	२५३।)	ब्लाक	३६८॥।)
सरकार से	१२००)	डाक खर्च	१२६॥‒)
पिछली रोकड़ बाकी	१५२२।=)	लेखक का वेतन कुल का २/३	४६०)
आय	३५९१।)	चपरासी का वेतन कुल का २/३	२८४॥≡)
		गोदाम का किराया कुल का १/२	९०)
		इक्का ठेला आदि	७६॥=)।
		साइकिल मरम्मत	१५॥)॥
			४५६२≡)॥।
		घाटा जो परिषद् ने दिया	९७०॥≡)॥।
			३५९१।)

इस प्रकार विज्ञान में ९७०॥≡)॥। का घाटा है।

आगामी वर्ष (अक्टूबर १९५२ से सितम्बर १९५३) का अनुमान-पत्र (परिषद के सम्बन्ध में)

आजीवन सभ्यों से	१४०)	रेलवे इंजन पुस्तक भाग १ की छपाई,	
साधारण " "	४००)	कागज आदि	१५००)
पुस्तकों से	१५००)	स्टेशनरी	६०)
सरकार से	२०००)	डाकव्यय	२००)
	४०४०)	लेखक कुलका २/३	१६०)
		चपरासी कुलका २/३	१६४)
		गोदाम किराया कुल का १/२	१५०)
		अनुसंधान पत्र	६००)
		विज्ञान का घाटा	१९२८)
		खर्च	४७६२)

इस प्रकार परिषद् को इस वर्ष ७२२) घाटा होगा। इसके अलावा हमें पुराना कर्ज ३६६९) देना ही है।

विज्ञान के सम्बन्ध में आय-व्यय

आय		व्यय	
ग्राहकों से	६१५||=)	विज्ञान की छपाई कागज आदि	३१३६|||-)
सभ्यों से	२५३|)	ब्लाक	३६८|||)
सरकार से	१२००)	डाक खर्च	१२६|||-)
पिछली रोकड़ बाकी	१५२२|=)	लेखक का वेतन कुल का ⅔	४६०)
आय	३५९१|)	चपरासी का वेतन कुल का ⅔	२८४||≡)
		गोदाम का किराया कुल का ½	९०)
		इक्का ठेला आदि	७६||=)|
		साइकिल मरम्मत	१५||)||
			४५६२≡)|||
		घाटा जो परिषद् ने दिया	९७०|||≡)|||
			३५९१|)

इस प्रकार विज्ञान में ९७०|||≡)||| का घाटा है।

आगामी वर्ष (अक्टूबर १९५२ से सितम्बर १९५३) का अनुमान-पत्र (परिषद के सम्बन्ध में)

आजीवन सभ्यों से	१४०)	रेलवे इंजन पुस्तक भाग १ की छपाई,	
साधारण " "	४००)	कागज आदि	१५००)
पुस्तकों से	१५००)	स्टेशनरी	६०)
सरकार से	२०००)	डाकव्यय	२००)
	४०४०)	लेखक कुलका ⅓	१६०)
		चपरासी कुलका ⅓	१६४)
		गोदाम किराया कुल का ½	१५०)
		अनुसंधान पत्र	६००)
		विज्ञान का घाटा	१९२८)
		खर्च	४७६२)

इस प्रकार परिषद् को इस वर्ष ७२२) घाटा होगा। इसके अलावा हमें पुराना कर्ज ३६६९) देना ही है।

विज्ञान के सम्बन्ध में

आय	
ग्राहकों	९००)
सभ्यों से	२८०)
सरकार से	२०००)
आय	३१८०)

व्यय	
विज्ञान की छपाई	१८००)
„ का कागज	७००)
कवर का कागज	२३०)
„ छपाई	४००)
बाइन्डिंग	२४०)
ब्लाक	३००)
सहायक संपादक	३६०)
डाक व्यय	१५०)
लेखक कुल का $\frac{२}{३}$	३६०)
चपरासी कुल का $\frac{२}{३}$	३६८)
गोदाम का किराया कुल का $\frac{१}{२}$	१५०)
फुटकर	५०)
कुल खर्च	५१०८)
घाटा जो परिषद देगा	१९२८)
	३१८०)

विज्ञान परिषद का वार्षिकोत्सव

४० वीं विज्ञान कांग्रेस के लखनऊ के अधिवेशन के अवसर पर २ जनवरी १९५२ को विज्ञान परिषद का वार्षिकोत्सव ए०पी० सेन हाल में मनाया गया। सभापति का आसन परिषद् के सभापति श्री० हीरालाल खन्ना ने ग्रहण किया। वार्षिक विवरण प्रधान मंत्री ने पढ़कर सुनाया जो स्वीकृत हुआ तथा आय व्यय का ब्योरा भी स्वीकृत किया गया। सभापति श्री हीरालाल खन्ना ने परिषद के उद्देश्य बताते हुए राष्ट्र भाषा में एक विश्वकोष तैयार करने की नितान्त आवश्यकता प्रकट की जिसमें वैज्ञानिक विषयों पर प्रामाणिक लेख हों। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अन्य भारतीय भाषाओं का भी अध्ययन करना चाहिए जिससे शब्द संग्रह करने में विशेष सहायता मिले। नीचे लिखे अनुसार पदाधिकारी तथा कार्य कारिणी के सदस्य इस वर्ष के लिए स्वीकृत हुए :—

सभापति—श्री हीरालाल खन्ना
उपसभापति—डा० गोरख प्रसाद
,, डा० अविनाश चन्द्र चटर्जी
प्रधान मन्त्री—डा० रामदास तिवारी
मन्त्री—डा० देवेन्द्र शर्मा
,, डा० रमेशचन्द्र कपूर
कोषाध्यक्ष—डा० संत प्रसाद टंडन
स्था० अन्तरंगी—प्रो० सालिकराम भार्गव
डा० दिव्य दर्शन पन्त
श्री हरीमोहन दास टंडन
डा० हीरालाल दुबे
प्रधान सम्पादक—डा० हीरालाल निगम
बाहरी अंतरङ्गी—डा० जगराजबिहारी लाल, इन्डस्ट्रियल केमिस्ट, कानपुर
डा० बृजमोहन, काशी वि० वि०
डा० दौलत सिंह कुठारी, देहली
डा० रामधर मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय
डा० रामाचरण काशी वि० विद्यालय
आय व्ययपरीक्षक—डा० सत्य प्रकाश

शिक्षण माध्यम पर विचार विमर्श

वार्षिकोत्सव की कार्यवाही समाप्त होने पर विज्ञान परिषद् की ओर से शिक्षण माध्यम पर एक विचार विमर्श किया गया। इसका सभापतित्व डा० आत्माराम, संचालक, केन्द्रीय कांच तथा सिरेमिक अनुसन्धानशाला कलकत्ता ने किया। २ जनवरी को कुछ समय तक विचार विमर्श सन्चालित रख कर स्थगित कर दिया गया। पुनः ४ जनवरी १९५२ को गणित विभाग में डा० आर० वैद्यनाथस्वामी, प्रोफेसर, इंडियन स्टेटिस्टिकल इंस्टिट्यूट, कलकत्ता के सभापतित्व में विचार विमर्श हुआ। पहली बैठक में २ जनवरी को माननीय श्री ए० जी० खेर तथा श्री चन्द्रभान गुप्त विद्यमान थे।

प्रारम्भ में डा० गोरखप्रसाद ने अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा कि वैज्ञानिक दृष्टि से विषय को जानना भाषा जानने की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। अतएव हिन्दी या किसी भारतीय भाषा में विज्ञान विषय का समझना अधिक सुगम होगा। अतएव राष्ट्रभाषा द्वारा शिक्षा की व्यवस्था होने से शिक्षा का स्तर ऊँचा उठ जायगा। कुछ लोग कहते हैं कि जब तक पाठ्य-पुस्तकें हिन्दी में लिख न जायँ तब तक माध्यम हिन्दी नहीं होना चाहिए परन्तु यह कठिनाई दूर हो सकती है। अध्यापकों को चाहिए कि सेवा भावना से वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण करें। जीविका के अन्य साधन वाले व्यक्ति भी वैज्ञानिक-साहित्य-रचना करें।

आजकल गवेषणापत्र अनुवादित हो जाते हैं अतएव हिन्दी में लिखना समीचीन है। यदि कोई शिल्पार्थी थोड़ा शिल्प सीखना चाहता है तो अँग्रेजी के स्थान पर अपनी भाषा द्वारा वह अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा

बहुत शिल्प ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अन्यथा भाषा सीखने में ही बहुत ही अधिक शक्ति लगे।

डा० वलवालकर, इम्पीरियल इंस्टिट्यूट आफ शूगर टेकनालजी, कानपुर ने विचार विमर्श में भाग लेते हुए कहा कि अनेक शब्द भारत की कई प्रान्तीय भाषाओं में एक समान हैं। अतएव विज्ञान का एक शब्दकोष बनना चाहिए। उत्तर भारतवासी के लिए एक दक्षिणी तथा दक्षिण भारतवासी के लिए एक उत्तर भारत की भाषा सीखना आवश्यक होना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया कि भारत की सब भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जानी चाहिए। भाषाओं की शिक्षा नवीन पद्धति से उच्च-स्तर पर होनी चाहिए।

डा० आर० वैद्यनाथस्वामी ने बताया कि मध्ययुग में सारे योरप में प्राचीन इटालियन (लैटिन) भाषा में ही सब कुछ होता था। अँग्रेजी अच्छी भाषा है जिसमें सब प्रकार के भाव व्यक्त करने की क्षमता है, किन्तु कोई भी भारतीय भाषा यथेष्ट समुन्नत नहीं हुई है। यह बात दूसरी है कि हमारी संस्कृति भूत काल में महान रही है। डा० रघुवीर ने इस दिशा में एक स्थायी कार्य किया है।

डा० ब्रजमोहन ने बताया कि हिन्दी द्वारा कठिनाइयाँ दूर करने में सुगमता होगी। विश्वविद्यालयों में कहीं कहीं कुछ सेक्शनों में हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया गया है। छात्रों को अपनी कठिनाई व्यक्त करने में हिन्दी द्वारा सुविधा होती है। अँग्रेजी के माध्यम को कुछ लोग अपने लिए सुविधाजनक समझते हैं। परन्तु वह अपवाद ही है। फ्रांसीसी भाषा का विज्ञान जगत में पहले अधिक महत्व था। अब अँग्रेजी का है। किन्तु

डा० आत्माराम, संचालक, केन्द्रीय काँच तथा सिरेमिक अनुसंधानशाला, कलकत्ता

हिन्दी माध्यम न करने का यह कोई कारण नहीं। अँग्रेजी अनिवार्य कर दी जाय, वैकल्पिक न रहें। किन्तु विषयों की शिक्षा प्रादेशिक भाषाओं में हों। अंतर्राष्ट्रीय शब्द ज्यों के त्यों लिए जा सकते हैं।

शिक्षण माध्यम के विचार विमर्श की दूसरी बैठक ४ जनवरी को गणित विभाग में विज्ञान परिषद्, प्रयाग की ओर से हुई। सभापतित्व प्रोफेसर आर० वैद्यनाथ स्वामी, प्रोफेसर, स्टेटिस्टिकल इस्टिट्यूट, कलकत्ता ने किया तथा निम्नलिखित विद्वानों तथा वैज्ञानिकों ने भाग लिया:—

प्रो० के० जी० दास, इंडियन इस्टिट्यूट आफ शूगर टेकनालाजी

डा० ए० एन० सिंह, प्रिंसिपल, गव० कालेज, नैनीताल

प्रो० डी० पी० मुकर्जी, अध्यक्ष, समाज विज्ञान तथा अर्थशास्त्र, लखनऊ विश्व विद्यालय

डा० वी० पी० वेंकटाचारी, ओस्मानिया विश्वविद्यालय

डा० ए० सी० चटर्जी, प्रोफेसर, रसायन विभाग तथा डीन आफ दी फेकल्टी आफ साइंस, लखनऊ विश्व विद्यालय

डा० आर० डी० मिश्र, अध्यक्ष, गणित विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

श्री० सी० राम कुमार

डा० पी० एस० वर्मा

प्रो० के० जी० दास ने विद्यालयों में शिक्षण का माध्यम अँग्रेजी रखने के पक्ष का समर्थन करते हुए कहा कि जो व्यक्ति अँग्रेजी जानता है, वह संसार को भी जानता है तथा अँग्रेजी का वैज्ञानिक साहित्य भंडार इतना है कि उसकी समता करने में भारतीय भाषाओं को बहुत अधिक समय लगेगा। उन्होंने यह भी कहा कि इसी समय अँग्रेजी से हिन्दी माध्यम परिवर्तित कर देने की समस्या अनेक कठिनाइयों से भरी है जिससे अन्य आवश्यक कार्यों से ध्यान हट सकता है। हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य शून्य के बराबर ही है इसलिए हिन्दी के समर्थकों को केवल भावनाओं में प्रवाहित नहीं हो जाना चाहिए, बल्कि अपनी विवेचनात्मक बुद्धि से काम लेना चाहिए।

डा० ए० एन० सिंह ने हिन्दी माध्यम बनाने का समर्थन करते हुए कहा कि यह बात सत्य है कि आज हिन्दी में प्रचुर वैज्ञानिक साहित्य नहीं है। किन्तु इसे उन्नत करना पड़ेगा। पहले उच्चशिक्षा कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित थी, अब जन-साधारण तक उच्च शिक्षा प्रसार का आयोजन हो रहा है, इसलिए शिक्षण माध्यम में भी परिवर्तन करना पड़ेगा। उन्होंने यह भी कहा कि भारत को अपने विश्व विद्यालयों के लिए एक भाषा का माध्यम रखना निश्चय करना पड़ेगा किन्तु यह असंदिग्ध बात है कि अँग्रेजी वह भाषा नहीं हो सकती। यदि भारत क्रान्ति के मार्ग से स्वतन्त्रता प्राप्त कर सका होता तो हिन्दी दूसरे दिन ही शिक्षण का माध्यम बन जाती। किन्तु भारत ने विकास मार्ग से स्वतन्त्रता प्राप्त की है, अतएव शिक्षण माध्यम भी विकास विधि से ही परिवर्तित करना होगा। अतएव हिन्दी अँग्रेजी के साथ ही उन्नति करती चलेगी। हिन्दी लिपि बोझिल है तथा उसमें विशेष परिष्कार की आवश्यकता है जिससे देश की एक लिपि स्वीकार की जा सके। मैं तो हिन्दी अक्षरों की जगह रोमन लिपि के पथ का भी समर्थन कर सकता हूँ।

डा० ए० एन० सिंह ने यह भी कहा कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का हिन्दी माध्यम बनाने का सर्वोत्तम साधन सरकार के हाथ में है। यदि प्रतियोगिता की परीक्षाएँ हिन्दी में लेने का निश्चय सरकार कर ले तो अखिल भारतीय तथा प्रादेशिक नौकरियों की इन परीक्षाओं के लिए सभी विश्वविद्यालय हिन्दी को शिक्षण माध्यम करने के लिए विवश हो जायँ।

प्रो० डी० पी० मुकर्जी ने एक समाज शास्त्री के दृष्टि कोणों को सम्मुख रक्खा। उन्होंने कहा कि प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा सामाजिक विज्ञानों का शिक्षण-माध्यम की समस्या से अत्यधिक सम्बन्ध है, क्योंकि सामाजिक विज्ञानों को मौलिक विचारधाराओं की चर्चा करनी पड़ती है जिनको व्यक्त करना अधिक जटिल होता है। यदि विश्वविद्यालयों को पुराने ढर्रे पर नहीं चलाना है तथा उनकी संस्कृति परिवर्तित करनी है जो अनिवार्य ही है तो शिक्षण माध्यम में परिवर्तन करना होगा। भारत ने एक दर्जन वैज्ञानिक उत्पन्न किए हैं जिनका विश्व के वैज्ञानिकों में स्थान है, किन्तु भारत कोई भी विख्यात समाजशास्त्री उत्पन्न करने में निष्फल रहा है, इसका यह कारण नहीं है कि भारत में मेधाशक्ति का अभाव है प्रत्युत यह कारण

है कि भारत के समाजशास्त्री मौलिक रूप से विचार नहीं करते। अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी उन्होंने कोई भी मौलिक सिद्धान्त भारतीय अवस्थाओं पर आधारित अन्वेषित नहीं की है तथा यहां पर अर्थशास्त्र का अध्ययन उधार ली हुई निधि तथा विदेशी विचारधाराओं पर ही किया जाता है।

उन्होंने यह भी कहा कि मैं भारतीय दशाओं का वर्णन किसी विदेशी भाषा में वर्णित नहीं कर सकता, मैं उसे भारतीय भाषा में ही कर सकता हूँ, क्योंकि अपनी भाषा में ही मैं यर्थाथ वस्तुओं का वर्णन कर सकता हूँ। मौलिक विचार में यथार्थता आवश्यक वस्तु है।

प्रो० मुकर्जी ने हिन्दी माध्यम का समर्थन करते हुए कहा कि प्रादेशिक भाषाओं का विकास करना तथा शिक्षण माध्यम बनाना आवश्यक है। प्रादेशिक भाषाओं में किसी समय हिन्दी शिक्षण माध्यम का स्थान ले सकने में समर्थ हो सकती है। उन्होंने यह कहा कि इस समय भारत के लिए विदेशी भाषा को शिक्षण माध्यम बनाए रखना बड़े ही दुर्भाग्य की बात हो सकती है।

डा० वी० पी० वेंकटाचारी ने कहा कि अंग्रेजी को अगले दस वर्ष तक शिक्षण माध्यम बनाए रखना उचित है। प्रादेशिक भाषाओं का भी विकास होते रहना चाहिए। हिन्दी को द्वितीय भाषा की भाँति सिखलाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि शिक्षण माध्यम मातृ भाषा होनी चाहिए किन्तु पारिभाषिक शब्द देश भर के लिए समान होने चाहिए।

डा० ए० सी० चटर्जी ने कहा कि "हम अध्यापकों ने विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त की और हम लोग अंग्रेजी में ही पढ़ाने के अभ्यस्त हो गए हैं। परन्तु इस कारण शिक्षण माध्यम परिवर्तन करने में अड़चन नहीं होनी चाहिए कठिनाई छात्रों के साथ नहीं है, बल्कि हमारे साथ है।" जहाँ तक पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न है वे छात्रों को समझाने पड़ते हैं। इस लिए जैसे अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करनी पड़ती है वैसे ही नए हिन्दी पर्याय को व्याख्या करने से छात्रों के लिए सुबोध बनाया जा सकता है। लोग कहते हैं कि शिक्षण स्तर गिर रहा है किन्तु यह सत्य बात नहीं ज्ञात होती। उन्होंने कहा कि मैंने छात्र रूप में जो शिक्षा प्राप्त की, वह आज के छात्र को मिलने वाली शिक्षा से शायद निकृष्टतर थी। यथार्थ में शिक्षण स्तर नहीं गिरा। बल्कि अंग्रेजी माध्यम होने से कदाचित इसका ज्ञान स्तर नीचा हो रहा हो। परन्तु आज छात्र में ज्ञान की भूख है। वह कुछ नवीन ज्ञान सीखने के लिए आतुर है। अंग्रेजी भाषा न समझ सकने से परीक्षा के लिए छात्र किसी प्रकार उत्तर रट लेते हैं किन्तु उसको समझे नहीं होते। तोते की तरह रटी बात को वे उत्तर पुस्तक में उगल भी आते हैं। यदि शिक्षण माध्यम हिन्दी या अन्य भाषा हो जिसे छात्र जानता है तो शिक्षण स्तर गिरने का यह भूत क्षण भर में दूर हो जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि हम जो कुछ भी उद्योग कर सकते हों, हम हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षण का करें क्यों कि इस से ऐसा वातावरण उत्पन्न होगा जिसमें छात्र अधिक विषय विवेचन कर सकेगा।

डा० आर० डी० मिश्र ने हिन्दी शिक्षण माध्यम का पक्ष पोषण करते हुए कहा कि देश में अनेक प्रादेशिक भाषाएँ हैं। अतएव यह सोचना कि २० प्रादेशिक भाषाएँ होने से विश्वविद्यालयों में भी २० विभिन्न शिक्षण माध्यम हो असंभव है। अतएव अंग्रेजी तथा हिन्दी में एक लेना होगा। श्री सी० रामकुमार तथा डा० वी० एस० वर्मा ने भी विचारों का आदान-प्रदान किया।

भारतीय विज्ञान सम्मेलन का इतिहास

इंडियन साइंस कांग्रेस (भारतीय विज्ञान सम्मेलन) का ४० वां अधिवेशन इस बार लखनऊ में हुआ। लखनऊ को यह गौरव तीसरी बार प्राप्त हो सका है। विज्ञान सम्मेलन का पहला अधिवेशन लखनऊ में सन १९१६ में हुआ था। ७ साल बाद १९२३ में इसका अधिवेशन फिर लखनऊ में हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में वैज्ञानिक शोध ने नया महत्व प्राप्त कर लिया है और यह उचित है कि विज्ञान सम्मेलन का ४० वां अधिवेशन इस बार उत्तर भारत के एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र में हो।

भारतीय विज्ञान सम्मेलन भारत के वैज्ञानिकों का सबसे बड़ा संगठन है। इसकी स्थापना प्रथम महायुद्ध के समय हुई थी। यद्यपि विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन भारत का बड़ा योगदान रहा है, फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि आधुनिक विज्ञान का सर्वाधिक विकास पश्चिम में हुआ है। १५ वीं शताब्दी में बारूद के आविष्कार के फलस्वरूप पश्चिम में वैज्ञानिक अनुसंधान को बहुत प्रोत्साहन मिला है। इसी शताब्दी में पश्चिम में छापेखाने का प्रचार हुआ, जिससे ज्ञान की ज्योति सर्वसाधारण तक पहुँची। पठन-पाठन बढ़ने के साथ चश्मे का प्रचार बढ़ा और फलस्वरूप लेंस के भांति-भांति प्रयोग किये जाने लगे। १७ वीं शताब्दी के प्रारंभ में गैलिलियो ने टेलिसकोप का आविष्कार किया और यूरोप में मानसिक क्षितिज पर धीरे-धीरे विज्ञान की छटा फैलने लगी। गैलिलियो के देहावसान के १५ वर्ष पश्चात सन १६५७ में एकाडेमिया डेल सिमेंटो की स्थापना हुई और इसने सारे यूरोप में वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की स्थापना को प्रोत्साहन दिया।

ब्रिटेन में सन १६६२ में एक शाही फरमान के द्वारा रायल सोसायटी की स्थापना हुई, जिसने ब्रिटेन में वैज्ञानिक अनुसंधान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन १६६६ में फ्रांस में फ्रेंच एकेडेमी और सन १७०० में बर्लिन में प्रशन एकेडेमी की स्थापना हुई। सन १७२५ में रूस में भी साम्राज्ञी केथेराइन ने एक साइंस एकेडेमी की स्थापना की। सन १७४८ में कोपेनहेगेन में तथा सन १७८२ में आयरलैण्ड में विज्ञान परिषदों की स्थापना हुई। सन १८६३ में अमरीका में भी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन द्वारा स्वीकार किये गए एक कानून के अनुसार राष्ट्रीय विज्ञान परिषद की स्थापना हुई।

इन सभी परिषदों ने अपने-अपने क्षेत्र में विज्ञान की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान दिया और फलस्वरूप सारे संसार में 'विज्ञान युग' की अवतारणा हुई।

भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान को सबसे पहले प्रथम महासमर के समय प्रोत्साहन मिला। सन १९१२ में प्रोफेसर मैकमोहन (जो कई साल तक लखनऊ कैनिंग कालेज में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर रहे) तथा प्रोफेसर साइमनसन ने भारतीय विज्ञान सम्मेलन की नींव रखी। ये दोनों आचार्य इंगलैण्ड से नये नये आये थे, जहां विज्ञान की अपूर्व प्रगति हो रही थी और वैज्ञानिकों के विचार-विनिमय के लिए अनेक वैज्ञानिक संस्थाएं वर्त्तमान थीं। उन्होंने देखा कि भारत में वैज्ञानिक विचार-विनिमय का अभाव है। उन्होंने सोचा कि यदि ब्रिटिश एसोसियेशन की भांति भारत में भी वैज्ञानिकों का वार्षिक सम्मेलन हुआ करे तो यहां भी वैज्ञानिक अनुसंधान को भारी प्रोत्साहन मिल सकता है। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर सन १९१४ में कलकत्ते में भारतीय विज्ञान सम्मेलन के सर्व प्रथम अधिवेशन का आयोजन किया गया।

इस अधिवेशन के तीन प्रमुख उद्देश्य थेः—

(१) वैज्ञानिक शोध को प्रोत्साहन देना और उसे अधिक नियमित बनाना;

(२) देश के विविध भागों में फैली वैज्ञानिक संस्थाओं और विज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्तियों का सम्मेलन करना; तथा

(३) विज्ञान की ओर लोगों का अधिक ध्यान दिलाना

तथा उसकी प्रगति में जो बाधाएं पड़ रही हों उन्हें दूर करना।

यदि भारतीय विज्ञान सम्मेलन के इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो प्रकट होगा कि इसके अधिवेशनों का आज भी लगभग वही उद्देश्य होता है, जो पहले अधिवेशन का था।

प्रारंभ में भारतीय विज्ञान सम्मेलन के आयोजकों का विचार था कि सम्मेलन का अधिवेशन हर साल कलकत्ते में हुआ करे। परन्तु यह अनुभव किया गया कि देश में विज्ञान के प्रति रुचि पैदा करने के लिए आवश्यक है कि सम्मेलन का अधिवेशन प्रति वर्ष देश के विविध हिस्सों में हुआ करे। यह पद्धति आज भी चालू है। सम्मेलन का पिछला अधिवेशन कलकत्ता में हुआ था।

भारतीय विज्ञान सम्मेलन के इतिहास में १६३८ का साल स्मरणीय रहेगा। इस सम्मेलन ने धूमधाम से अपनी रजत जयंती मनाई, जिसमें ब्रिटिश एसोशियेशन ने भी भाग लिया।

भारतीय विज्ञान सम्मेलन का सन १६४७ का अधिवेशन भी स्मरणीय रहेगा जो पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। इस सम्मेलन में एक बड़ी संख्या में विदेशों के संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भाग लिया। तब से भारतीय विज्ञान सम्मेलन के अधिवेशन में विदेशों के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों को आमंत्रित करने की एक परिपाटी-सी चल गई है। सम्मेलन के इस बार के ४० वें अधिवेशन में भी विदेशों से लगभग १३ वैज्ञानिक भाग लेने के लिए आये।

—:०:—

[पृष्ठ १४६ का शेषांक]

है, वस्तु व्यवस्था में इस लिए अधिक महत्वपूर्ण होता है कि वह उस विशेषज्ञ की तुलना में उस वस्तु के संबंध में कुछ भी ज्ञान नहीं रखता जो उस वस्तु का अत्यधिक ज्ञान रखता है समीचीन नहीं कहा जा सकता। शासक का भी स्थान है। किन्तु वही सर्वोपरि नहीं होना चाहिए। अतएव हमें ऐसे समाज का निर्माण करना है जिस में एक यथार्थ वैज्ञानिक को अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा जिस का कार्य समाज का विकास करना तथा उस को संचालित होने में सहायता करना तथा उस वैज्ञानिक वृत्ति या समवृत्ति का प्रवर्द्धन करना होगा जो उस समाज के लिए ही नितान्त आवश्यक नहीं हो गया है, प्रत्युत हमारे जीवित रह सकने लिए अनिवार्य हैं। अतएव मैं आप लोगों का पुनः स्वागत करता हूँ।

भारतीय विज्ञान सम्मेलन

(इंडियन साइंस कांग्रेस)

विज्ञान सम्मेलन का आरम्भ

सम्मेलन ठीक ११ बजे आरंभ हुआ और अध्यक्षके जुलूस में लाल व काले गाउन पहने हुये वैज्ञानिकों तथा हरा गाउन पहने हुये कुलपति कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शीने मंचपर आसन ग्रहण किया। इसके बाद बन्देमातरम् गायनके बाद कुलपति और राज्यपाल की हैसियत से श्री मुंशी ने अध्यक्ष, विज्ञान कांग्रेस के प्रतिनिधियों और अन्य अभ्यागतों का स्वागत किया।

श्री मुंशी के भाषण के बाद लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य जुगुलकिशोर ने स्वागत समिति की ओर से प्रतिनिधियों का स्वागत किया।

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त

पंतजीका भाषण

तदनन्तर उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्री पं० गोविंद बल्लभ पन्तने उत्तर प्रदेश की सरकार और जनताकी ओरसे अतिथियोंका स्वागत किया।

आप ने इस बातपर जोर दिया कि विज्ञान के सिद्धांतों पर तो शोध कार्य होना ही चाहिए, पर जीवन में उसकी उपादेयता भी कम न होनी चाहिए। साधारण जनता की विज्ञान में दिलचस्पी हुए बिना एक लोक तंत्र में विज्ञान की सफलता नहीं हो सकती क्योंकि लोकतंत्र में साधारण व्यक्ति ही राष्ट्र का स्वामी होता है।

पंतजी के भाषण के बाद नेहरूजी द्वारा अधिवेशनका उद्घाटन कार्यक्रम के मुताबिक होना चाहिए था पर नेहरूजी का विमान लखनऊ १२ बजे आया और पंडाल में वे उस समय आये जब अध्यक्षका भाषण हो रहा था अतः उन्होंने अध्यक्षके भाषण के बाद भाषण किया!

प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय विज्ञान कांग्रेसके ४०वें अधिवेशनका उद्घाटन करते हुए वैज्ञानिकों से मार्मिक अपील की कि वह विश्व की तनातनी मिटाने और मानव जीवन की आवश्यकतायें अन्न-वस्त्र आदि की समस्याएं हल करने में सहायता दें।

नेहरूजी ने कहा कि आज के युग में वैज्ञानिक को समाज में प्राचीनकाल के आचार्य या कुलगुरु के समान उच्च स्थान प्राप्त होना चाहिए। जिस प्रकार प्राचीन काल में कुलगुरु और आचार्य के हाथ में राजसत्ता नहीं थी, उनके पास संपत्ति भी बहुत नहीं थी फिर भी उनका स्थान उच्चतम था, वह बात आज वैज्ञानिकों के बारे में लागू होती है।

आपने आगे कहा, आज शासनाधिकारियों और राजनीतिज्ञों को यह समझ लेना चाहिए कि उनका इतना अधिकार नहीं है जितना वे समझते हैं। वे विशेषज्ञ को सलाह लेकर एक किनारे रख देने योग्य वस्तु समझते हैं— ठीक है विशेषज्ञ सिर्फ एक विषय का ज्ञाता है—समस्या के सब व्यावहारिक पहलुओं को समझना शासनाधिकारी का काम है पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका स्थान विशेषज्ञ से ऊंचा है।

आपने कहा कि विज्ञान की सब से बड़ी देन है आलोचनात्मक तर्कबुद्धि और व्यापक दृष्टिकोण। वह वैज्ञानिक नहीं है जो संकीर्ण हो, जो किसी बात को एकदम से स्वीकार करने या अस्वीकार करने की राय दे दे—वह तो सत्यका अनुसंधान करता है उसके लिए कुछ भी एकदम ग्राह्य या एकदम त्याज्य नहीं है। दिक्कत यह है कि आज के वैज्ञानिक विकास के बावजूद हमारी—अर्थात् राजनीतिज्ञों, शासकों और आम जनता की तो क्या खुद वैज्ञानिकों और छात्रों की विचारधारा, उनके सोचने, समझने का ढंग एकदम अवैज्ञानिक है—वे विज्ञान को शोधशाला कक्षा या पोथियों की वस्तु समझते है और जीवन में व्यावहारिक रूप से उन्हीं बातों को नहीं मानते जिन्हें वह अपने शोधकार्य में पुकार पुकार कर बताते हैं। हम सब विश्व को एक मानते है और वह है भी—मानवमात्र के हित एक हैं; वर्तमान संवादवाहनने विश्व के विभिन्न छोरों को नजदीक ला दिया है, विज्ञानने सभी मनुष्यों के हित एक दूसरे से बांध दिया है, आज की समस्याओं के हल करने में जाति, रंग व राष्ट्र का भेद किये बिना सब का सहयोग आवश्यक है—फिर काले और गोरे का भेद कैसा ? यह कैसे है कि संसार के दो भाग हों और एक भाग दूसरे को नफरत की निगाह से देखे, उसको खत्म करने की कोशिश करे।

यह सब इसीलिए तो है कि हम अपनी वैज्ञानिक मान्यताओं को जीवन में व्यावहारिक रूप नहीं देते। हम अपनी बात पर अड़ जाते हैं और उससे हटने का नाम नहीं लेते, अपनी राय को दूसरें पर थोपने को हम तुल जाते है—दूसरे की राय का हमारे लिए कोई महत्व नहीं। यह ठीक है कि हर व्यक्ति को मनमानी कहने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। यह भी ठीक है कि अपनी सही राय को दूसरों से मनवाना एक सही बात है नहीं तो समाज चल नहीं सकता—कुछ तो एक रूपता रखनी ही पड़ेगी। पर कोई भी सही और अच्छी बात सीमा का अतिक्रमण कर के बुरी बात हो जाती है। मसलन राष्ट्रीयता यह एक अच्छा गुण है। हमने और बहुतोंने इसी के बल पर आजादी पायी और विकास किया है पर इसी राष्ट्रीयता को सीमा से अधिक बढ़ा ले जाना संकीर्णता हो जायगी। इस लिए यह सोचना पड़ेगा कि एक अच्छी बात को किस हद तक ले जाया जाय कि वह अनाचार और अत्याचार न हो जाय।

विश्व की तनातनी

नेहरूजी ने कहा, आज शोषण, साम्राज्यवाद आदि का सभी ओर विरोध किया जा रहा है। ठीक है, १९ वीं सदी का साम्राज्यवाद समाप्त होना चाहिए, समाप्त हो रहा है और वह समाप्त होकर रहेगा इस लिए नहीं कि साज्यवाद के पास शक्ति नहीं है बल्कि इसलिए कि आज संसार भर में जो जागृति आ रही है वह साम्राज्यवाद को समाप्त कर के रहेगी। पर दूसरे प्रकार का असंयम और असहिष्णुता, जिसके कारण विश्व में आज इतनी खींचतान है, समाप्त नहीं हो रही है। पता नहीं इस समस्या का हल निकलेगा या नहीं पर विश्व का भविष्य इसी समस्या के हल पर निर्भर है—यदि आप वैज्ञानिकों ने इस समस्या को हल न किया, व्यापक दृष्टिकोण और आलोचनात्मक तर्क बुद्धि का दान विश्व को न किया, सत्य किस सीमा तक सत्य है यह तय न किया और संयम तथा सहिष्णुता का प्रसार न किया तो विश्व की मानवता का विकास न हो पायेगा।

भाषण में सब से पूर्व नेहरूजीने देर से पहुँचने के कारण क्षमा याचना की और बताया कि उनका विमान मौसम की खराबी के कारण दो घंटे तक दिल्ली से रवाना न हो सका।

नेहरू जी का विस्तृत भाषण

मैं यहाँ पर आज वैज्ञानिक विषयों पर भाषण देने नहीं आया हूँ बल्कि कुछ सुनने तथा कुछ सीखने के लिए आया हूँ। यहाँ आने का मेरा उद्देश्य है कि मैं कुछ सीखूँ, कुछ सुनूँ तथा विशेषतया आप सब लोगों, समस्त

वैज्ञानिकों तथा विख्यात विज्ञानवेत्ताओं का भारत सरकार की ओर से स्वागत करूँ जो यहां पर विदेशों एवं देश के विभिन्न भागों से पधारे हैं।

मैं आशा करता हूँ कि आप लोगों में से बहुत से लोगों ने यह अनुभव किया है कि सरकार विज्ञान, विज्ञान के उपयोग और इसी कारण उन व्यक्तियों को अत्यधिक महत्व देती है जो विज्ञान मंदिर के आदरणीय आराधक हैं। पिछले कतिपय वर्षों में सरकार ने अपनी शक्ति भर विज्ञान की उन्नति में अनेक प्रकार से सहायता करने के लिए अनेक राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएं, संस्थाएं तथा अन्य विज्ञान शालाएं खड़ी की हैं तथा आप लोगों में से बहुतेरे ऐसी संस्थाओं में ही कार्य करते हैं। अपनी ओर से मेरी यह

प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू

धारणा है कि चार पांच वर्षों की विशेष भली या बुरी बातों में सबसे संतोषजनक बात इन महान अनुसंधानशालाओं को स्थापित करना तथा इस प्रकार इस देश में विज्ञान के उत्कर्ष का अवसर देना है।

यह एक विचित्र बात है कि एक प्रकार से हम सभी तथा व्यवहारतया सभी देश किसी न किसी रूप में विज्ञान की वेदी पर भेंट चढ़ाते है तथा ऐसा करने पर भी हम लोगों में विज्ञान तथा विज्ञान के प्रतीकों को अपने मस्तिष्क के एक विशेष अंतराल में रखने की धारणा होती है। तथा हम इसे अपने अन्य कार्य कलापों को प्रभावित नहीं होने देते। अतएव हम में से अधिकांशतया राजनीतिज्ञों द्वारा कदाचित अत्यधिक ही समस्याओं के निराकरण के कुछ कुछ दुहरे मार्ग अवलंबित पाए जाते हैं। राजनीतिवेत्ता सामने आएगा तथा वैज्ञानिक संस्थाओं के संबंध में अनेक उत्सवों का उद्घाटन करते हुए विज्ञान के महान गुणों का वह बखान भी कर जायगा किन्तु कुछ अन्य कार्य कलापों में वह विज्ञान की वृत्ति या विज्ञान का प्रशिक्षण प्रदर्शित करते नहीं पाया जा सकता। राजनीतिक नेताओं का उल्लेख मैं इस लिए कर रहा हूँ कि मैं स्वयं एक राजनीतिज्ञ हूँ और मैं सोचता हूँ कि उदाहरण के रूप में मैं अपने वर्ग को ही सामने रख कर प्रारंभ करूँ किन्तु यह बात दूसरों पर भी लागू है। खेद की बात है कि यह बात कभी-कभी वैज्ञानिकों पर भी लागू होती है। कुछ आदमी प्रयोगशालाओं के अंदर बड़े अच्छे होते हैं, किन्तु प्रयोगशाला तथा शिक्षण-कक्ष से बाहर होते ही वे उससे बिलकुल ही विभिन्न रूप धारण कर लेते हैं जो एक वैज्ञानिक का होना चाहिए। फिर भी कोई भी व्यक्ति सबसे पहले उन सब घोर कायापलटों का अनुभव न कर सकेगा जो विज्ञान के उत्कर्ष तथा उनकी शिल्प-कला से संसार में घटित हो सके हैं।

पिछले १००, १५० वर्षों ने संसार का घोर कायापलट कर दिया है। उन्हों ने प्रत्येक प्रकार की मानव संस्था, मानव जीवन तथा मानव विचारधारा को प्रभावित किया है किन्तु यह समय की बात है कि उनका प्रभाव कदाचित मानव विचारधारा पर उतना अधिक नहीं पड़ा है जितना उन्होंने मानव जीवन को प्रभावित किया है, यद्यपि अंततोगत्वा उन्हों ने हमें प्रभावित किया है। हम बहुत सी बातों को मान लेते हैं, बहुत सी बातों को विज्ञान-प्रदत्त मान लेते हैं। हम उनसे चारों ओर से घिरे हैं, हम इसे रोक नहीं सकते। हमारा उनसे पिंड नहीं छूट सकता अतएव हम उन्हें स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु उन्होंने प्रायः हमारे मस्तिष्क पर यथेष्ट प्रभाव नहीं डाला है। मैं व्यक्तियों की बात नहीं कह रहा हूँ। मैं मनुष्य जाति की प्रचलित बात

कह रहा हूँ। हमारा मस्तिष्कउस स्थिति में कामकरता चला जाता है, जिसे प्राग् वैज्ञनिक युगीय या बल्कि उससे भी कुछ पूर्व युग की बात कहा जा सकता है। अतएव हमारे सामने वही विशिष्ट वस्तु है जो मानव मस्तिष्क की ही देन है जिसे विज्ञान तथा अन्य तज्जन्य वस्तुएं कहा जाता है। यह मानव मस्तिष्क की ही देन है, परन्तु मानव मस्तिष्क अपनी ही उत्पन्न की हुई वस्तु से स्वयं पीछे रह गया है। विषमता ही कदाचित उन कारणों में से एक है जिससे हम जहाँ एक ओर दुरूहताओं में आबद्ध हैं, वहां दूसरी ओर एक विश्व का उपहास पूर्वक आलाप करते हैं। कोई भी व्यक्ति देख सकता है कि वैज्ञानिक रूपेण इन सबके एकत्रीकरण तथा यातायात के वृद्धिशील साधनों के विकास होने तथा ऐसी अन्य बातों के होने पर भी आज हम 'एक विश्व की यथार्थता से इतनी दूर हैं जितना संभव हो सकता हो। यथार्थ में संसार के कुछ भाग तो विश्व के अन्य भागों की विद्यमानता से ही बड़े दुःखित ज्ञात होते हैं संसार के कुछ भाग अन्य भागों को ध्वस्त कर देने की ही कामना रखते हैं।

घोर विरोधाभास

निस्संदेह ही यह एक विश्व की भूमिका का ढंग नहीं है अतएव हमें यह घोर विरोधाभास प्राप्त होता है। एक ओर जहां विवेक, तर्क तथा जीवन की सभी प्रवृत्तियाँ सारे संसार में घनिष्टतम सहयोग का निर्देश करती हैं, वहाँ दूसरी ओर मानव आकांक्षाएं आवेग, पक्षपात या जो कुछ भी वे कहे जा सकते हों, एक विश्व की सहयोग भावना से बहुत दूर जा पहुँचते हैं तथा निरन्तर एक या दूसरे को लुप्त कर देने या एक या दूसरे को ध्वस्त करने की भाषा में विचार करने के लिए प्रवृत्त करते हैं। लोग इस बात को बिल्कुल ही नहीं समझते या सोच पाते कि आज भी जो संसार है, उसमें ऐसी सहयोग-भावना का फलान्वित होना संभव है। वैज्ञानिक या राजनीतिज्ञ या अन्य लोग ऐसी प्रहेलिकाओं को सुलझा सकते हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता किन्तु स्पष्टतया विश्व का भविष्य इसी पर निर्भर करता है। यह विशेष रूपेण इसी पर इस कारण निर्भर है कि द्वितीय मार्ग विचार सकना अधिक भयानक है अतएव प्रश्न यह है कि हमें इस समस्या का किस प्रकार निराकरण करना है।

यदि वैज्ञानिक अपनी हस्तीदंत अट्टालिका में ही काम करते रहने के स्थान पर जहां वे अवश्य ही कुछ उत्तम कार्य करते हैं, हस्तीदंत प्रासाद से बाहर निकल आवें और युग की समस्या का प्रतिहार करने में सहयोग प्रदान करें तो वे अवश्य ही अत्यधिक कल्याण का कार्य कर सकेंगे जैसा कि उन्होंने किया भी है।

परन्तु किसी प्रकार सीमित समस्याओं का समाधान भी युग की प्रमुख समस्याओं को सुलझाने के प्रश्न में बहुत दूर तक जाता नहीं दीख पड़ता तथा इस विकराल संघर्ष को बचाने का मार्ग नहीं निकालता जो हमें सदा ही आवेष्ठित किए ज्ञात होता है तथा जिसका परिणाम युग की वैज्ञानिक प्रवृत्ति का स्तर निम्न बनना होता है। कोई एकाकी वैज्ञानिक अपने कार्य में बहुत ही सफल हो सकता है, परन्तु मैंने जैसा बताया है, वही अन्य क्षेत्रों में द्वेष भावना से आक्रान्त हो सकता है। अब इन अन्य क्षेत्रों में क्या घटित होता रहता है, इसे हम अपने चारों ओर ही देख सकते हैं तथा यह अवलोकित कर सकते हैं कि इस विनाशकारी भय, एक दूसरे के प्रति रोष के कारण राष्ट्रों में वर्ग रूप में तथा कुछ अंश तक व्यक्तियों में भी आलोचनात्मक बुद्धि का अस्तित्व लुप्त हो जाता है।

अब यदि आलोचनात्मक बुद्धि का अभाव हो जाता है तो उसका यह अर्थ होता है कि वैज्ञानिक बुद्धि का ही अभाव हो जाता है क्योंकि विज्ञान को निश्चय ही आलोचनात्मक होना चाहिए। यह बिना विश्लेषण, आलोचना या परीक्षा किए किसी वस्तु को पूर्णतया ही ग्राह्य या अग्राह्य नहीं कर सकता। अतएव हम संसार में आलोचनात्मक बुद्धि का सर्वथा अभाव ही देखते हैं। सीमित क्षेत्रों के बाहर अर्थात जब हम संसार की समस्याओं पर दृष्टिपात करते हैं, हम इस प्रकार ही समस्याओं पर दृष्टि डालते हैं, जैसे मान लीजिए कि किसी दुखित वैदेशिक मंत्री को विचार करना है तो व्यक्तियों में आलोचनात्मक बुद्धि की तनिक भी विद्यमानता नहीं पा सकते बल्कि कुछ बातों की पूर्ण अग्राह्यता, कुछ बातों की पूर्ण भर्त्सना या कुछ बातों की प्रशस्ति से समन्वित पूर्ण ग्राह्यता घोषित पाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति श्वेत तथा श्याम की भाषा में सोचता है। एक व्यक्ति श्वेत वर्ण है। दूसरा श्यामवर्ण है, उनके मध्य दूसरे

वर्ण के छींटे की स्थिति नहीं है। इसके अतिरिक्त हममें यह एक भावना पाई जाती है, जो हमें विचित्र जान पड़ती है, कि अन्य पुरुष हम लोगों के सदृश ही हों अर्थात् प्रत्येक वर्ग सोचता है कि अन्य वर्ग भी विचारधारा, जीवनक्रम तथा व्यवहार या प्रत्येक ढंग से आवश्यक रूप से उनके ही अनुरूप हों। और तब जब दो या अधिक पृथक वर्ग इसी प्रकार विचार करते हैं और यदि मैं राजनीतिक प्रांगण के समान धार्मिक पचड़े भी बीच में ला सकूँ तथा अन्यों को अपने मत में परिवर्तित करने का बहुत अधिक यत्न करूँ तो संघर्ष उठ खड़ा होता है।

मुझे यह विचार करना चाहिए था कि इस विश्व के स्पष्ट निष्कर्षों में से एक यह है कि विश्व कम से कम बाह्य रूप से वैचित्र्यमय है, स्पष्टतया जलवायु विभिन्न होते हैं। जलवायु का मानव जीवन पर बड़ा प्रभाव है, वातावरण का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। भारत में ही दक्षिण भारत के किसी निवासी से लंबरोमीय कोट धारण करने की आशा रखना व्यर्थ है जो हिमाचल वासी के लिए एक अनिवार्य वस्तु ही है किन्तु यह सब भारत ही है। इस मोटे उदाहरण का पुनरावर्तन उत्कृष्टतर नमूनों में हो सकता है, किन्तु यह यथेष्ट अच्छा है। लोग सोचते हैं कि अन्य व्यक्ति भी कतिपय निर्धारित नमूनों के अनुरूप अपने को रखें, अपना जीवन वैसे ही सांचे में ढालें। इसका अर्थ हुआ कि उनके ही अनुरूप बनें। अब यह बड़ी बेढब बात है। प्रत्येक व्यक्ति की यह धारणा होना कि वह व्यक्ति या उसका दल ही एक आदर्श व्यवहार का नमूना है, जीवन का आदर्श है तथा विचारधारा का प्रतीक है जिसका अनुसरण दूसरों को अवश्य करना चाहिए। मेरी कल्पना है कि हम में से प्रत्येक अहंकेन्द्रिक है। कम से कम राष्ट्र तो हैं ही। किन्तु इस से एक अन्तर पड़ जाता है। हम में से प्रत्येक एक वृत्त का केन्द्र है जैसा हम सम्भवतः हैं। उस अवस्था में एक अन्तर उत्पन्न होता है। हम सब लोग उस वृत्त की परिधि हैं। यदि यह छोटी परिधि का ही कोई वृत्त है, तो हम सब संकीर्ण बन जाते हैं। यदि यह विशाल वृत्त है तो यह जितना विशाल है उतना ही विशाल दृष्टिकोण हो सकता है जिसे हम रखते हों। अब यह मेरा कार्य नहीं है कि दूसरों तथा विशेषतया इस विस्तृत विभिन्न रूपधारी विश्व की आलोचन करूँ। किन्तु अपने देश में ही मैं इन सब विभिन्न विचारधाराओं, इन आवेगों को देख सकता हूँ।

भारत एक ऐसा देश है जो अनेक रूपेण खंडित होने पर भी कुछ रूप में एक उल्लेखनीय एकता का भाव प्रदर्शित करता है। इस में एक प्रमुख एकता है तथा भारत एक ऐसा भी देश है जिस में उल्लेखनीय बहुरूपता है और भारत की समस्या इन दोनों का संरक्षण करना है, स्पष्टतया ही बहुरूपता ध्वस्त नहीं की जानती है। एकता क्षीण नहीं की जानी है, बल्कि उसकी वृद्धि करना है, हम ऐसी शक्तियाँ तथा व्यक्ति क्रियाशील पाते हैं जो इसे इस सीमा तक संयोजित करना चाहते हैं कि भारत में जीवन की सम्पन्नता का अंत ही हो जाय, तथा प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को उसी प्रकार चलाना चाहता है जैसे वह स्वयं चलता है, यह परिधान सरीखी छोटी बातों में भी पाया जाता है।

जैसा मैंने कहा है, लखनऊ में मेरे लिए एक विशेष प्रकार का पदत्राण धारण करना सुगम है जो लद्दाख के लिए बिल्कुल ही अनुपयुक्त हो सकता है, यथार्थतः यदि मैं लद्दाख में चप्पल पहनूं तो मेरा शरीर जवाब दे देगा। मेरे पैर जवाब दे देंगे। वहाँ मुझे काठ का स्तर मढ़े हुए मोटे बूट पहनने की आवश्यकता होती है जिससे मैं जीवित रह सकूँ, अन्य पहनावे तो होते ही हैं। यही बात अन्य बहुत सी बातों के सम्बन्ध में भी है। यह दूसरों का मत परिवर्तन करने की वृत्ति, अपने को दूसरों पर लादने की वृत्ति, यह चाहे भाषा का प्रश्न हो या अन्य प्रश्न हों, यहाँ विद्यमान है।

जहाँ तक व्यक्तिगत बात है, मैं धर्मयोद्धा को कुछ पसन्द करता हूँ। उसमें कुछ आकर्षण होता है। कुछ अच्छी बातें होती हैं और धर्मयोद्धाओं ने इस संसार में कायापलट उपस्थित किया है जो ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनमें एक उद्देश्य के लिए कुछ विशेष धर्म-प्रेरक भावना होती है, उसमें अपने को भी वह भूला सा रहता है, किन्तु निश्चय ही यह धर्मप्रेरक वृत्ति भी जघन्य उद्देश्यों की पूर्ति में प्रवृत्त की जा सकती है जिसका परिणाम भी जघन्य हो।

मैं केवल इन विभिन्न बातों की ओर इंगित कर रहा हूँ क्योंकि उनका विचार करने के लिए एक मात्र मार्ग विज्ञान की समबुद्धि है जो हमें अपनी व्यक्तिगत धारणाओं और मिथ्या कल्पनाओं की ओर बहकने से रोक सकती है तथा जो हमें उस संकीर्ण वृत्ति से निकल भागने के लिए सहायता करती है जिसमें हम एक व्यक्ति या वर्ग रूप में अटके पड़े रह सकते हैं, यह चाहे भौगोलिक सीमा-बंधक बात हो, चाहे यह एक देश का छोटा भाग हो या पूर्ण देश ही हो, या किसी अन्य रूप की ही विचारधारा या जीवन क्रम में हो तथा हम स्वीकार करें कि मानव विभिन्न रूपी होते हैं। उन्हें बहुमुखी होना चाहिए और वे विभिन्न भी क्यों न हों? यह तो मानव जीवन तथा अनुभव की सम्पन्नता का प्रमाण है। राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में हमें दूसरों पर लद नहीं जाना है।

यह ठीक है कि हम लोग साम्राज्यवाद या इसके सरीखे शब्दों की चर्चा करते हैं जिसका अभिप्राय राजनीतिक पराधीनता तथा आर्थिक पराधीनता या आर्थिक शोषण या इसी प्रकार के कृत्य होता है। उनका प्रायः अर्थ समझा जाता है। और संसार के अधिकांश पुरुष यह अनुभव करते हैं कि हमें उस चक्र में न फँसना पड़े, ऐसे साम्राज्य-वाद का हमें अवश्य अन्त कर लेना चाहिए जिसका प्राधान्य, हम यह समझलें कि उन्नीसवीं शताब्दी में था। उस का अब अधिकांश लोप ही हो रहा है और इसमें सन्देह नहीं कि उसका सर्वथा लोप हो जायगा। इस का लोप केवल इस कारण नहीं हो रहा है कि परिणामतः यह अच्छी वस्तु नहीं थी बल्कि इस कारण कि अब जो नई शक्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं उनके कारण यह यथार्थतः अब टिका नहीं रह सकता।

किन्तु अन्य मार्ग भी हैं। पुराने ढंग के साम्राज्यवाद के स्थान पर दूसरे से हस्तक्षेप के लिए अन्य साधन हैं। यह ठीक है कि किसी भी मानव समाज में कुछ हस्तक्षेप, कुछ नियंत्रण, तथा कुछ अनुशासन अनिवार्य है। किन्तु मैं यह मान लेता हूँ कि जीवन व्यापार का प्रजातांत्रिक मार्ग यह है कि उन हस्तक्षेपों को न्यूनतम कर दिया जाय। निस्सन्देह ही, आधुनिक जीवन की समस्या सतत ही अधि-काधिक केन्द्रीकरण की माँग करने की है। यह आवश्यक है, तो भी केन्द्रीकरण कुछ सीमा तक सदा ही एक रूप से प्रजातंत्रवाद या व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के मार्ग में आता है और आप को इन दोनों का संतुलन ढूँढ़ निकालना है।

मैं इन सब प्रश्नों को अपके सामने इस लिए रख रहा हूँ कि ये समस्याएं आजकल हम लोगों को ग्रस्त करती हैं। मेरा मस्तिष्क भी इस में व्यथित होता है कि किस प्रकार इन दो प्रकार की दोनों अनुक्रमिक वस्तुओं का संतुलन किया जाय जो अच्छी तो हैं, किन्तु एक चरम सीमा तक बढ़ने पर अच्छी नहीं हैं, जैसे राष्ट्रवाद है। विज्ञान वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है, या मानव की भौतिक सम्पदा की समुन्नति कर सकता है, किन्तु इतना ही यथेष्ट उत्तम बात नहीं है। यह निस्संदेह ही उत्तम है। विज्ञान को यह करना है और विशेषता भारत ऐसे देश में जो आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है और जहाँ जीवन का स्तर बहुत निम्न है। हमारा सर्व प्रथम कार्य उस जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है।

उदर ज्वाला से त्रस्त लोगों के आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक उत्कर्ष की बात उठाना निरर्थक ही बात है। पहले हमें उनके जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं पूरी करनी है, वह चाहे भोजन हो, या वस्त्र हो, चाहे भवन या अन्य वस्तुए हों। तभी हम अन्य बातों के सम्बन्ध में सोच सकते हैं। यद्यपि हम में प्राथमिक अवश्यकताओं का अभाव हो सकता है, और हम उसकी पूर्ति में संलग्न हों, फिर भी अन्य समस्याएँ हमें ग्रसित किए रहती हैं, सदा हम पर लदी रहती हैं, और वे हमें अस्त-व्यस्त करती जान पड़ती हैं जैसा वे अन्य देशों को भी अस्तव्यस्त करती हैं। अतएव एक वैज्ञानिक का कार्य उन अन्य समस्याओं का निराकरण करना है। और उनके निवारण के साधनों में सहायक बनना है। और एक वैज्ञानिक जो सर्वोत्तम सहायता प्रदान कर सकता है, वह यह है कि समस्याओं की उधेड़बुन में आलोचनात्मक बुद्धि, मानव-वृत्ति का संतुलन, वस्तुओं के ऊहापोह के उस अनात्म व्यक्तित्व विशिष्ट पथ का अनुसरण करे जिसे यदि हम लोगों में से यथेष्ट व्यक्ति ग्रहण करलें तो वह निस्संदेह ही राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय द्वन्दों के शमन करने में प्रचंड रूप से सहायक हो तथा उन समस्याओं को सुलझाने में यथेष्ट दूर तक अग्रसर हो।

अतएव हम आप सब वैज्ञानिकों को आमंत्रित करते हैं कि हमारी भौतिक समस्याओं के निराकरण में सहायक हों जो अत्यंत महत्व पूर्ण हैं वे चाहे खाद्य या जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध की हों ताकि हम जीवन स्तर उठा सकें, क्यों कि उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। और हमें अनेक रूपों में कठिन बाधाओं, सतत व्याघातों का सामना करना है। किन्तु हम आपको अनेक विशालतर समस्याओं, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और तत्सम्बन्धी ही, को सुलझाने में सहायता पहुँचाने के लिए भी आमंत्रित करते हैं जिस से अंततः जैसा हमने पहले कहा है, वह विज्ञान वृत्ति प्रस्तुत करें, जिस का यदि हम परिष्कार न करें, तो वे उपकरण तथा विज्ञान ने जो उत्तम बातें प्रदान की हैं, उन सब का अधम उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग हो सकता है। तथा हम लोग स्वयं तत्कालीन आवेगों में प्रवाहित हो जाते हैं और विज्ञान ने जो महान अस्त्र प्रदान किए हैं, उन्हें जघन्य लक्ष्यों की सिद्धि में लगा सकते हैं, वह विज्ञान तथा वैज्ञानिक दुखान्त होगा जैसा कुछ अंशों तक आज भी है।

अतएव मैं आप सब लोगों को भारत सरकार की ओर से स्वागत करता हूँ, और आप लोगों को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि अपनी पूर्ण शक्ति भर हम इस देश में विज्ञान के विकास को प्रोत्साहन देते रहेंगे और मैं यहाँ वैज्ञानिकों से अपनी समस्याओं की पूर्ति में सब से अधिक सहयोग प्रदान करने की अभ्यर्थना करता हूँ।

यह संभव है कि हम वैज्ञानिकों को उतना आर्थिक साहाय्य न प्रदान कर सकें जो दूसरों को प्राप्त है। किसी कारण किसी भी देश में ज्ञान के लिए आर्थिक लोभ का दृष्टिकोण सामने रक्खा नहीं पाया जाता। कदाचित यह अच्छी बात ही है। किन्तु यदि इस का अर्थ विज्ञान के कार्यकर्ता या अन्यों पर परिस्थितियों का दबाव समझा जाय तो यह अच्छी बात नहीं है।

भारत में प्राचीन काल में जब किसी रूप में समाज का सिद्धान्ततया या व्यवहारतया विभाजन किया गया तो विद्वानों को सर्वोच्च स्थान दिया गया किन्तु उस में किसी भी प्रकार की आर्थिक शक्ति या यथार्थतः अधिक साधन या राजनीतिक शक्ति देने की व्यवस्था कुछ दुर्लभ अपवादों को छोड़ कर नहीं की गई थी। उन्हें विद्वत्ता का महत्व ही उच्च पद प्रदान करता था। किन्तु आज कल का व्यवहृत समाज का वर्तमान विभाजन विद्वान को वह सैद्धान्तिक पद नहीं प्रदान करता और अन्य व्यक्ति समाज के शीर्ष पर, शब्द के ठीक अर्थ में, आसीन हो जाते हैं। यह तथ्य ठीक है मैं भारत की ही बात कर रहा हूँ—कि हमारे समाज में वैज्ञानिक को आज अधिक महत्वपूर्ण पद प्रदान किया जाना चाहिए। कदाचित बहुत पूर्व काल में, पुरोहित को यह पद प्राप्त होता था। जैसा मैंने पहले ही कहा है, हमें वैज्ञानिक को यथार्थ में उस भाग में आज का पुरोहित मानना चाहिए। यह ठीक है कि कुछ अंशों तक वैज्ञानिक पुरोहितों की अगम भाषा में बात चीत करता है जिसे जन साधारण समझ ही नहीं पाते। तब भारत में पिछले सौ वर्षों या उससे अधिक अवधि तक शासक ही शीर्षासीन व्यक्ति होते, वे ही सब को आदेश प्रदान करते रहे। आज भी शासक, सब बातों को देखते हुए, अपने को एक बड़ा आदमी समझता है तथा एक महत्वपूर्ण स्थान, कदाचित शीर्ष स्थान ग्रहण करता है। शासक एक महत्वपूर्ण वस्तु है ही। किन्तु मेरे विचार में वह उतना उच्च पद का अधिकरी नहीं है जितना वह अपने को समझता है। ठीक उसी तरह राजनीतिवेत्ता का भी उतना उच्च पद नहीं जितना वह स्वयं समझता है।

शासक शब्द का प्रयोग करने में मेरा तात्पर्य एक पेशेवर शासक से ही है। राजनीतिज्ञ भी इस के बीच दिखाई पड़ जाता है। वह कभी शासक रूप में होता है और कभी नहीं। लोग आज भी सोचते जान पड़ते हैं कि वैज्ञानिक, विशेषज्ञ इंजीनियर आदि सरीखे व्यक्तियों को केवल परामर्श देने के लिए आमंत्रित कर फिर दूर ढकेल दिया जाता है और चतुर शासक निर्णय देने के लिए है। ठीक है, किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए किसी व्यक्ति को प्रश्न के प्रत्येक पहलू पर विचार करना आवश्यक होता है और यदि, जैसा कि प्रायः होता है, विशेषज्ञ केवल एक पहलू ही अधिक गंभीरता से देखता है तो वह अन्य पहलुओं के बारे में ठीक न्याय कर सकने में समर्थ नहीं हो सकता। यह तथ्य है, किन्तु फिर भी यह सोचना कि जो व्यक्ति शासन व्यवस्था के शीर्षीय पंच पर आसीन होता

[शेषांश पृ० १४२ पर]

बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान अनुसंधानशाला

इस अनुसंधानशाला का नाम इसके संस्थापक डा० बीरबल साहनी के स्मरणार्थ उनके नाम पर ही रक्खा गया है। यह उनका एक अक्षय स्मारक है। डा० साहनी भारत के अत्यधिक विख्यात सपूतों में से थे तथा उन्होंने अपनी वैज्ञानिक खोजों तथा व्यक्तिगत गुणों से अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान, पुरावनस्पति विज्ञान तथा भूगर्भ विज्ञान-क्षेत्रों में एक बहुत उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था। यह अनुसधानशाला उनके तथा उनकी सहधर्मिणी के द्वारा संस्थापित हुई थी। यह उनके संरक्षण में विकसित होने लगी। उनकी अकाल मृत्यु के कारण इसका संचालन उनकी निर्मित योजनाओं के अनुसार प्रारंभ हुआ।

डा० साहनी

डा० बीरबल साहनी का जन्म पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) में शाहपुर जिले के भेड़ा नामक गाँव में सन् १८९१ ई० में हुआ था। उन्होंने १९११ ई० में पंजाब विश्व विद्यालय से बी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की तथा इंगलैंड चले गए। वहाँ कैम्ब्रिज में नौ वर्षों तक वनस्पति विज्ञान के आचार्य सर अल्बर्ट सी सेवार्ड के सम्पर्क में रह कर निरंतर अध्ययन करते रहे। वे प्रो० सेवार्ड के एक पट्टशिष्य तथा सहकर्मी थे। उन दोनों में आजीवन प्रगाढ़ स्नेह बना रहा। भारत लौटने पर साहनी महोदय हिन्दू विश्व विद्यालय में (१९१९–२०) अध्यापक नियुक्त हुए। बाद में पंजाब विश्व विद्यालय में (१९२०–२१७) वनस्पति विज्ञान के आचार्य नियुक्त हुए। १९२१ ई० में नवस्थापित लखनऊ विश्वविद्यालय के एक आचार्य नियुक्त हुए। वे जीव विज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। जब वह विभाग दो भागों में विभक्त हुआ तो वे वनस्पति विज्ञान के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उनके ही प्रयत्न से कालांतर में भूगर्भ विज्ञान विभाग की स्थापना हो सकी। इसकी स्थापना के प्रारंभ से ही (१९४३) ये इसके अध्यक्ष बनाए गए। १९३३ ई० में विज्ञान विभाग के डीन नियुक्त हुए और अपने कार्यकाल के अन्त तक इस पद पर पुनर्वार निर्बाचित होते रहे।

आचार्य बीरबल साहनी की उपाधियाँ निम्न थीं:—एम० ए० (कैम्ब्रिज), डी० एस-सी० (लंदन १९१९) एस-सी० डी० (कैम्ब्रिज १९२९) तथा पटना और प्रयाग विश्व विद्यालयों द्वारा सम्मान सूचक रूप में प्रदत्त डी० एस-सी०। १९३६ ई० में एफ० आर० एस० (फेलो आफ रायल सोसाइटी लंदन) निर्वाचित हुए। वे विभिन्न विदेशी तथा देशी वैज्ञानिक परिषदों, सभा-समितियों तथा संस्थाओं के सदस्य, अध्यक्ष या संस्थापक थे। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के वनस्पति विभाग के विभागीय अध्यक्ष (१९२१, १९३८) भूगर्भ विज्ञान विभाग के विभागीय अध्यक्ष (१९२६) में होने के अतिरिक्त सम्पूर्ण अधिवेशन के अध्यक्ष सन् १९४० में निर्वाचित हुए। पाँचवीं तथा छठीं अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान कांग्रेस के पुरावनस्पति विज्ञान विभाग के उपाध्यक्ष (कैम्ब्रिज १९३०) ऐम्स्टरडम १९३५) नियुक्त हुए थे तथा १९५० में स्टाकहोल्म में होने वाली अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस के आनरेरी सभापति सन् १९४९ ई० में अपनी मृत्यु के पहले ही निर्वाचित हुए थे। अपनी वैज्ञानिक खोजों के लिए उन्होंने समय समय पर अनेक पदक तथा अन्य सम्मान प्राप्त किए थे। ऐसे मनीषी, पुरावनस्पति विज्ञान निष्णात विद्वान की क्रियात्मक सहायता, प्रेरणा तथा उत्साह से स्थापित इस अनुसंधानशाला का नाम उनका चिरस्मारक है। कैम्ब्रिज में एक जगत्प्रसिद्ध पुरावनस्पति-विज्ञानवेत्ता, प्रो० सेवार्ड सरीखे विद्वान के सम्पर्क में अधिक समय बिताते समय बीरबल

साहनी का मुख्य गवेषणा विषय वानस्पतिक प्रस्तरावशेष का अध्ययन था। भारत लौटने पर भी वे इनकी ही खोजों में लीन रहे। उनका नाम शीघ्र ही अंतर्राष्ट्रीय पुरावनस्पति विज्ञान वेत्ताओं में प्रसिद्ध हो गया। किन्तु उनकी रुचि व्यापक थी। पुरावनस्पति या व्यनसपति का प्रस्तरावशेष विज्ञान एक जीव विज्ञान का विभाग ही है। परन्तु अनेक रूपों में यह वनस्पति विज्ञान तथा भूगर्भ विज्ञान का मध्यवर्ती स्थान ग्रहण करता है यह सौभाग्य की बात थी कि साहनी महोदय केवल एक प्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री ही नहीं थे। इस प्रकार उन्हें एक दृढ़ तथा सुरक्षित भित्ति प्राप्त हुई जिस पर वे पुरावनस्पति विज्ञान का भवन खड़ा करते। इन विशेषताओं से उनकी उस ओर भी दृष्टि जा सकती थी, जिधर दूसरों की नहीं जाती।

एक पुरावनस्पति विज्ञानशाला स्थापित करने की कल्पना साहनी महोदय के हृदय में बहुत दिनों पूर्व ही उठी थी। वे १९२६ में ही एक उपयुक्त स्थान पर वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों का संग्रहालय स्थापित करने की बात सोच रहे थे किन्तु सरकार द्वारा कुछ भी सहायता पाने के उनके अनेक प्रयत्न सर्वथा निष्फल ही सिद्ध हुए। कालान्तर में १९४६ ई० में उन्होंने अपनी सहधर्मिणी की मंत्रणा से व्यक्तिगत प्रयास से ही ऐसी संस्था खड़ी करने का संकल्प करना निश्चय किया।

सन् १९३९ ई० में भारत में पुरावनस्पति विज्ञान की खोजों के संयुजन तथा एक पत्रिका के प्रकाशन के लिए एक समिति स्थापित हुई थी। इसकी सातवीं विज्ञप्ति १९४६ ई० में प्रकाशित हुई। १९ मई १९४६ ई० को इस समिति के सात सदस्यों ने एक पुरावनस्पति विज्ञान समिति की स्थापना की। इस समिति का उद्देश्य अखिल भारतीय स्तर पर प्रस्तरीभूत वनस्पति या वानस्पतिक प्रस्तरावशेष के उच्च अध्ययन, उसके शुद्ध वैज्ञानिक पक्ष को लेकर, करने तथा आर्थिक भूगर्भ विज्ञान की समस्याओं के संबंध में उसका उपयोग करने को प्रश्रय देना था। एक उद्देश्य वह भी था कि इस विज्ञान शाला को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देने के लिए छात्रों के देश विदेश से आदान प्रदान करने, योग्य विद्वानों को अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेसों में प्रतिनिधि स्वरूप भेजने और विश्वविख्यात विद्वानों को अल्पकालिक आचार्य की भाँति आमंत्रित करने से अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंध सूत्र ढूँढ़ किए जायँ।

१९४६ ई० में ही १० सितम्बर को समिति की कार्यकारिणी ने निश्चय किया कि एक पुरावनस्पति विज्ञान अनुसन्धानशाला स्थापित की जाय। प्रोफेसर बीरबल साहनी अवैतनिक रूप से इसके प्रथम संचालक नियुक्त किए गए। प्रोफेसर तथा श्रीमती साहनी ने अपने महत्वपूर्ण पुरावनस्पति पुस्तकालय तथा प्रस्तरावशेष संग्रहालय को इस संस्था के लिए संकल्प कर दिया तथा कुछ धनराशि भी एकत्र हुई जिसमें अधिकांश प्रोफेसर साहनी तथा श्रीमती सावित्री साहनी की प्रदत्त निधि ही थी। बर्मा आयल कम्पनी ने एक उल्लेखनीय निधि दान कर अपनी सदाशयता का परिचय दिया तथा अब भी देती जा रही है।

पहले तो यह संस्था लखनऊ विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में ही कार्य करती रही, परन्तु सितंबर १९४८ ई० में उत्तर प्रदेश सरकार ने ५३, युनिवर्सिटी रोड, लखनऊ पर एक बंगला इस अनुसंधानशाला के लिए प्रदान किया। पाँच हजार रुपए वार्षिक तथा पैंतीस हजार रुपए की एककालिक सहायता भी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इस संस्था को प्राप्त हुई। भारत सरकार ने भी १६०००) की वार्षिक तथा १५०००) की एककालिक सहायता १९४७—४८ ई० में प्रदान की।

एक नए भवन के निर्माण की योजना की गई तथा भारत सरकार की सहायता का बचन मिला। सहायता भी बढ़ गई। निदान ३ अप्रैल १९४९ ई० को प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने इसके भवन का शिलान्यास किया।

इस शुभ घड़ी के एक सप्ताह के अंदर ही प्रोफेसर बीरबल साहनी अत्यन्त रोगग्रस्त हो गए तथा ९, १० अप्रैल, की आधीरात को स्वर्गवासी हुए। अनुसंधानशाला के मैदान के मध्य स्थित उनकी समाधि चिरकाल तक एक पावन भूमि रहेगी।

इस बज्रपात के होने पर भी श्रीमती सावित्री साहनी के सभापतित्व में इस संस्था का संचालन प्रोफेसर साहनी की स्मृति रक्षा तथा ज्ञान वर्द्धन के लिए होता रहा। प्रोफेसर साहनी के सहकर्मियों तथा सहयोगियों के अनवरत सहायता

प्रदान से इस कार्य में शिथिलता न आने पाई। प्राकृतिक साधन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग, शिक्षा मंत्रालय के सचिव श्री डा० एस० एस० भटनागर के उद्योग, अटूट उत्साह तथा सहानुभूति द्वारा केन्द्रीय सरकार ने संस्था की सहायता बराबर ही करना प्रारंभ किया। भवन तथा कार्य संचालन के लिए धन प्रदान करना प्रारंभ किया। कुल एककालिक सहायता ६५८०० रु० की मिल चुकी हैं तथा पिछले वर्ष से १५००० रु० वार्षिक सहायता मिल रही है। उत्तर प्रदेश सरकार ५००० रु० वार्षिक सहायता देती जाती है।

संग्रहालय

इस अनुसंधानशाला में वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों का पुश्कल संग्रह करने का उद्योग किया गया है जो प्रो० साहनी तथा उनके शिष्यों या सहकर्मियों द्वारा संग्रहीत हो सके। देश के कोने कोने में भ्रमण कर उन्हें प्राप्त किया गया या वे विदेशों से दान स्वरूप प्राप्त हो सके। आज भी संग्रह-कार्य जारी ही है। विभिन्न प्रकार के नमूने जुटा कर संग्रह को सम्पन्न बनाने का उद्योग किया गया है। जो नमूने प्रदर्शन भवन में स्थान नहीं पा सके हैं उन्हें दराजोंमें भौगोलिक काल तथा स्थान के अनुसार वर्गीकरण कर रक्खा गया है। इनका प्रदर्शन दो बड़े संग्रह-कक्षों में किया है। उनको इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है कि पुरावनस्पति विज्ञान के अनेक पहलुओं को अत्यन्त सरलतया समझा जा सके। पहले विशाल प्रदर्शन कक्ष में एक प्रदर्शन ढाँचे द्वारा यह बताया गया है कि प्रस्तरीभूत वनस्पति क्या वस्तु हैं और किस प्रकार अनेक विधियों से वे संरक्षित हो पाते हैं। दूसरे प्रदर्शन ढाँचे द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि शोध के अनेक मार्ग क्या हैं तथा पुरावनस्पति वैज्ञानिक शिल्प क्या है जिसने बहुमार्गीय उन्नति की है तथा पिछले दशकों में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं अपूर्व निष्कर्ष के निकालने में सहायता की है। भौगर्भिक काल विभाजन का प्रदर्शन भित्ति-मंजूषाओं में चित्र, नमूने, मानचित्र तथा लेख द्वारा किया गया है। भारत के एक भौगोलिक मानचित्र में भिन्न स्थलों के प्रस्तरीभूत वनस्पतियों का प्रदर्शन है। कोयले का भी एक खंड है जिसमें उसके प्रकार, उत्पत्ति, प्रस्तरावशेष रूप के वनस्पतियों की उसके अंदर संचित राशि आदि पुरावनस्पति विज्ञान की दृष्टि से ज्ञातव्य बातें प्रकट की गई हैं। भारत तथा विश्व की कोयला की खानों के क्षेत्र भी प्रदर्शित हैं। दूसरे प्रदर्शन कक्ष में वनस्पति जगत के अनेक वर्गों की उत्पत्ति तथा विकास-कथा प्रस्तरावशेषों के उदाहरणों तथा लेखों द्वारा व्यक्त की गई है।

अनुसन्धानशाला में एक पुस्तकालय भी है जिसमें पुरावनस्पति विज्ञान सम्बन्धी संसार के विद्वानों के लेखों के पुनर्मुद्रण भारतीय विद्वानों के लेखों के पुनर्मुद्रणों के बदले या भेंट में मिले संगृहीत हैं जिनकी संख्या ६५०० होगी। इस विषय की ५६० पुस्तकें तथा पत्रिकाओं की ४०० जिल्दें संगृहीत हैं। संस्था के कार्यों तथा इस विषय के सम्बन्ध में देश विदेश के विद्वानों के शोधों का प्रकाशन करने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण पत्रिका की एक जिल्द बीरबल साहनी अभिनन्दन ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हुई है। यह वार्षिक रूप में भविष्य में भी प्रकाशित करने की योजना है।

पुरावनस्पति विज्ञान की खोज के लिए बहुत ही उत्कृष्ट प्रकार के दृष्टि विज्ञान सम्बन्धी उपकरणों की नितान्त आवश्यकता होती है। नई संस्था होने से वह संतोषजनक रूप में आयोजित नहीं हो सकते परन्तु शीघ्र ही उन सब का उत्तम प्रबन्ध हो सकेगा। अंतर्राष्ट्रीय परिषद द्वारा भी यथेष्ट सहायता मिलने की आशा हो रही है। अन्य रासायनिक सामानों की उचित व्यवस्था भी एक आवश्यकता है जिसका प्रबन्ध प्रस्तरावशेषों के शोधन तथा सूक्ष्मस्तर निर्माण कर सूक्ष्मदर्शकीय प्रस्तरावशेषदर्शन की व्यवस्था की जा सकी है।

पुरावनस्पति विज्ञान अनुसन्धानशाला हमारे देश के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व की एक महत्वपूर्ण संस्था है अतएव इसकी महत्ता न्यून न होने देने के लिए विदेशी वैज्ञानिकों का सहयोग प्राप्त करने का उद्योग किया जाता रहा। १६४८ में डा० जैन सू को आमन्त्रित कर संग्रहाध्यक्ष बनाया गया। उस पद का नाम अब सहायक संचालक कर दिया गया है। किन्तु खेद का विषय है कि १६५२

में डा० सू ने त्यागपत्र देकर चीन वापस जाना निश्चय किया। प्रारम्भ में डा० साहनी अवैतनिक संचालक थे। उनकी मृत्यु पर श्रीमती सावित्री साहनी अवैतनिक सन्चालक नियुक्त हुई किन्तु उनके त्यागपत्र देने पर अक्टूबर १९५१ तक डा० शियोले ने सभापति के आदेश के अनुकूल संचालक के कार्यों को सँभाला। डा० साहनी की मृत्यु पर १९४९ ई० में प्रो० टी० एम० हेरिस, एफ० आर० एस०, अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग तथा डीन, विज्ञान विभाग रीडिंग विश्व विद्यालय इगंलैड को एक परामर्शदाता के रूप में विशेष रूप से आमंत्रित किया गया। उन्होंने दिसंबर १९४९ से जनवरी १९५० तक दो मास से अधिक समय इस अनुसंधानशाला में विताया। सन १९५१ में जब अंतर्राष्ट्रीय परिषद शिक्षा प्रचार शाखा ने इस संस्था को अपने कार्य क्षेत्रके अंतर्गत सम्मिलित किया तो डा० ओ० ए० हुएग प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान, ओसलो विश्व विद्यालय नार्वे ने अक्टूबर १९५१ में इस अनुसंधान शाला के संचालक का पद सँभाला। तब से वे ही इस संस्था के सुयोग्य संचालक है। सहायक संचालक आर० वी० शियोले तथा के० आर० सुरेंज हैं। प्राध्यापकों में श्री आर० एन० लखनपाल अमेरिका में और डी० सी० भारद्वाज जर्मनी में अध्ययन-अवकाश पर हैं। एम० एन० बोस तथा टी० पी० वर्मा संस्था में हैं। इनके अतिरिक्त शोध छात्र तथा शोध सहायक भी हैं। केन्द्रीय सरकार, प्रादेशिक सरकार तथा आसाम आयल कं० द्वारा दस छात्र वृत्तियां प्रदान की जाती हैं। निम्न गण्यमान व्यक्ति पुरावनस्पति विज्ञान समिति की कार्य कारिणी के सदस्य हैं जो इस संस्था की संचालक समिति है :—

श्रीमती सावित्री साहनी—(सभापति) प्रो० ओ० ए० हुएग—संचालक अनुसंधान शाला।

माननीय श्रीप्रकाश, राज्यपाल, मद्रास।

माननीय मुख्य न्यायाधीश एल० एस० मिश्र, हैद्राबाद हाईकोर्ट।

आचार्य नरेन्द्र देव, उपकुलपति काशी विश्व विद्यालय।

डा० एस० एस० भटनागर, सचिव केन्द्रीय सरकार, शिक्षा मंत्रालय, प्राकृतिक साधन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान।

श्री० आई० ए० पानिकर, एकाउंटेंट जनरल, उत्तर प्रदेश।

श्री एम० एस० रंधवा, कमिश्नर, अंबाला

श्री० बी० एस० स्याल, आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी, माध्यमिक शिक्षा, लखनऊ

प्रो० पी० पारिजा, सहायक उपकुलपति उत्कल विश्व विद्यालय।

प्रो० श्री रंजन, अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग—प्रयाग विश्व विद्यालय।

प्रो० वी० बी शुक्ल, अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग—नागपुर विश्व विद्यालय।

प्रो० एस० एन० दास गुप्त, अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान वि० लखनऊ विश्व विद्यालय

प्रो० के० आर० मेहता, वनस्पति विज्ञान विभाग—काशी विश्व विद्यालय।

अनुसंधानशाला का कार्य क्षेत्र

इस समय बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान अनुसंधान शाला में जो कुछ कार्य हो रहा है वह भारत में प्राप्त प्रस्तरीभूत वनस्पतियों पर ही हो रहा है। परन्तु इसे संकुचित क्षेत्र नहीं कहा जा सकता। उद्देश्य व्यापक ही रखा गया है किन्तु स्थानीय रूप से प्राप्त वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों का अध्ययन सुगम ही नहीं, आवश्यक भी है। अन्य देशों के विद्वान उन परीक्षणों में भाग ले सकते हैं तथा उन परिणामों की तुलना अन्यदेशीय वानस्पतिक प्रस्तरावेशेषों के ज्ञान से कर पुरावनस्पति विज्ञान का स्तर ऊंचा कर सकते है। इस में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का ध्यान रख कर काम हो रहा है।

भारत में पुरावनस्पति विज्ञान के प्रांरभ के कार्यों में भारतीय भौगर्भिक शोध विभाग के अधिकारियों में ओल्डम, मोरिस, ओटोकर फीस्टमेंटल. के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने जिन प्रस्तरावशेषों के आधार पर कार्य प्रारंभ किया वे या तो भारतीय भौगर्भिक शोध बिभाग के आधीन कलकत्ता में हैं या ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन के प्राकृतिक इतिहास विभाग में हैं। डा० साहनी प्रथम भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्हें प्रस्तरावशेष रूपीय वनस्पतियों के अध्ययन का श्रेय मिल सका। उन्होंने तथा उनके शिष्यों तथा सहकर्मियों ने युगयुगों में उत्पन्न होने वाले वनस्पतियों के ज्ञान की वृद्धि करने में यथेष्ट योगदान दिया है। किन्तु अब भी

बहुत कुछ करना शेष है। उस कार्य को संतोषजनक रूप में अग्रसर करने का बीड़ा इस अनुसंधानशाला रूप में वैज्ञानिकों ने अपने हाथ में लिया है जिसके परिणामों से अवगत हुए बिना हम नहीं रह सकते।

कुछ अल्परक्षित, विचित्र तथा संदिग्धात्मक वानस्पतिक प्रस्तरावशेष तो हमें अति प्राचीन काल के प्राप्त होते है। परन्तु भारत में परमियन कारबोनिफेरस काल (आज से पैंतीस करोड़ वर्षों पूर्व) के वानस्पतिक प्रस्तरावशेष प्रचुर मात्रा में सुलभ हैं जिन्हें ग्लोसोप्टेरिस या जिह्वाकार पत्तों के वनस्पती होने से जिह्वापर्णागी नाम भी दिया जा सकता है। इस काल को भारतीय भौगर्भिक इतिहास में गोंडवाना काल नाम दिया जाता है क्योंकि मध्य प्रदेश के गोंडों की भूमि में भारत में पहले पहल इस काल की शिला का अध्ययन हो सका था और भूतकाल में अफ्रिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी ध्रुवीय महादेश के भी स्थल मार्ग से सम्बन्धित होने या एक अखंड स्थल भाग होने की कल्पना कर वैज्ञानिक उस वृहद महादेश का ही गोंडवाना महादेश नाम देते हैं।

इस गोंडवाना काल के वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों को भारत की सभी मुख्य कोयले की खदानों का समकालीन पाया जाता है। इसके पश्चात् जुरासिक काल की निर्मित शिला का उदर स्थल जो वनस्पति वर्ग प्रस्तरावशेष रूप में प्रकट करता है, वह बड़े भव्य रूप में विहार के राजमहल की पहाड़ियों में प्रचुर संख्या में उपलब्ध है। इसी प्रकार पुष्पधारी वनस्पतियों के प्रस्तरावशेष के दिव्य नमूने उत्तरार्द्ध क्रिटेशस काल की शिलाओं में हमें दक्षिण भारत के उस भूखंड में मिलते हैं जो किसी समय महान अंतर्गर्भी तप्त शिला के द्रवित हो कर धरातल पर आजमने से तत्कालीन वनस्पतियों की प्रस्तरावशेषमय समाधि बन सका। अन्य स्थानों में अन्य युगीय वनस्पतीय प्रस्तरावशेष भी सुलभ है।

पुरावनस्पति विज्ञान के अनुसंधानों का प्रथम उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि विभिन्न वनस्पति वर्गों की रचना कैसी है। उनकी विभिन्न जातियों के रूप तथा रचना किस प्रकार हैं तथा युग युगों तथा देश देशों में उनका कैसा विस्तार रहा है। यह वानस्पतिक अध्ययन ही है। परन्तु जीवित वनस्पतियों के विज्ञान से उनकी सामग्री तथा अध्ययन-विधि विभिन्न है।

पुरावनस्पति विज्ञान का अन्य कई विज्ञानों से सम्बन्ध पाया जाता है तथा यह शुद्ध वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र की बहुत सी समस्याओं का भी निराकरण करता है। भूगर्भ विज्ञान का पुरावनस्पति विज्ञान से गहरा सम्बन्ध है। वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों द्वारा प्रस्तुत कितनी ही समस्याएं भूगर्भ विज्ञान द्वारा ही सुलझाई जाती हैं किन्तु साथ ही पुरावनस्पति विज्ञान बहुत सी भूगर्भ वैज्ञानिक गुत्थियों को भी सुलझाने में समर्थ होता है। उदाहरणार्थ तलछटीय शिलाओं का काल तथा क्रम निर्धारण में इसकी सहायता विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। पिछले दिनों से एक नए क्षेत्र में शोध जारी है। स्थल प्रस्तरावशेषों के अतिरिक्त अब सूक्ष्मदर्शकीय प्रस्तरावशेष पुरावनस्पति एवं पुराजंतु विज्ञान के अध्ययन में विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त पा रहे हैं। विशेषतया बीजाणु (स्पोर) तथा पराग कण अपना महत्व बढा रहे हैं। जहां अन्य प्रस्तरावशेष या स्थल प्रस्तरावशेष बहुत न्यून संख्या में ही मिलते है, या सर्वथा दुर्लभ होते हैं, वहाँ शिलाओं में ये सूक्ष्माकार प्रस्तरावशेष बीजाणु या परागकण रूप में बहुसंख्यक सुलभ हो कर हमारी ज्ञान वृद्धि में बड़ी भारी सहायता करते हैं। अतएव जहां अन्य प्रस्तरावशेष अपने अभाव में हमें अंधकार में छोड़ जाते हैं, वहां ये सूक्ष्म प्रस्तरावशेष हमें वस्तुस्थिति व्यक्त कराने में प्रकाश प्रदान करते हैं। इस बात को डा॰ बीरबल साहनी ने भली भाँति अनुभव कर इस दिशा में शोध कार्य अग्रसर करने का प्रयत्न किया। अतएव भारतीय तलछटीय शिलाओं में इन सूक्ष्मदर्शकीय प्रस्तवरावशेषों के अनुसंधान से उनके कालक्रम निर्धारण में अभूतपूर्व सहायता प्राप्त होने लगी हैं। अतएव यह विषय विश्वव्यापी महत्व का सिद्ध हो रहा है।

इस अनुसंधानशाला में प्लीस्टोसीन काल की मिट्टी में पराग कणों रूप के सूक्ष्मदर्शकीय प्रस्तरावशेषों की स्थिति का अध्ययन प्रारम्भ हुआ है। अब भी वृक्षों तथा पौधों के पराग कणों के उत्पादन के संबंध में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं अतएव उस की खुले वायु में स्थिति का भी अध्ययन प्रारंभ हुआ है। इस के अध्ययन से तुलनात्मक ज्ञान द्वारा

प्राचीन सूक्ष्मदर्शकीय प्रस्तरावशेष द्वारा वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्राप्त की जा सकेगी। दुर्भाग्य वश हमारे देश के भौगर्भिक स्तर के नवीनतम भागों में विस्तृत निम्नतलीय भूखंडों में उतने प्रचुर तथा सुन्दर प्रस्तरावशेष हमें प्राप्त नहीं होते जितने अलवणीय जल या दलदली भूखंडों में अधिक शीतोष्ण प्रदेशों में प्राप्त होते हैं। उन प्रदेशों के जलवायु की क्रमिक कथा वे प्रकट करने में भारी सहायता कर सकते हैं। परन्तु हमें भी पूर्ण निराश होने की बात नहीं है। एक दूसरे क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ करने का अवसर १९४७ में मिला। भारतीय कोयला के पुरावनस्पतीय अनुसंधान का कार्य वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की सहायता से प्रारंभ हो सका। कोयला क्षेत्र की शिलाओं में बीजाणु की मात्रा का विश्लेषण कर काल क्रम निर्धारण में सफलता मिल सकेगी। अनुसंधान शालाके शिलान्यास के समय ३ अप्रैल १९४९ को एक ऐसी शिला की नींव डाली गई जिसकी रचना ७७ प्रकार के वानस्पतिक प्रस्तरावशेषों के खुले नमूनों से की गई थी। इस में सब से प्राचीन वानस्पतिक प्रस्तरावशेष दक्षिण भारत के कुडप्पा नामक स्थान में प्राप्त प्राक् कैम्ब्रियन या आदिकल्प की शिला का प्रसाद था। यह जल में उत्पन्न होने वाले आदिम रूप के सूक्ष्मदर्शकीय वनस्पति द्वारा बने चूने के पत्थर का है। इस जलोद्गता (अलगी) बनस्पति के प्रस्तरावशेष की आयु कम से कम ५० करो वर्ष है। नवीनतम प्रस्तरावशेष १०० ईसा पूर्व का झुलसे चावल का प्रस्तरावशेष है जो पञ्जाब के रोहतक जिले के खोकर कोट ढूहे से प्राप्त हुआ था।

शिलान्यास के अवसर पर निम्न व्यक्तियों के भाषणों के उद्धरण उल्लेखनीय है :—

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री पं० गोविन्द वल्लभ पन्त ने कहा था :—

"भारत इस बात का भली भाँति गर्व कर सकता है कि डा० साहनी ने अपनी सदाशयता तथा लगन से इस अपूर्व संस्था को स्थापित किया है जो संसार में अपने ढंग का अकेला ही है।"

आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा था :—

"लखनऊ विश्वविद्यालय इस संस्था के स्थापित करने में सब से अधिक परोपकारी प्रसिद्ध होगा तथा इसको गर्व भी है क्यों कि डा० साहनी तथा उस में कार्य करने वाले वैज्ञानिक विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं। डा० साहनी एक विख्यात वैज्ञानिक है तथा विज्ञान जगत में उनका एक उच्च स्थान है।"

डा० एस० एस० भटनागर ने कहा था :—

"पुरावनस्पति विज्ञान का भूगर्भ वैज्ञानिक शोधों से गहरा सम्बन्ध है और प्रस्तारवशीय वनस्पति की खोज से उस शिला की रचना तथा काल निर्णय पर गहरा प्रकाश पड़ता है जिस में वे प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राप्त प्रमाणों से भूगर्भ वैज्ञानिक काल तथा उसकी अवधि के संबंध में विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। पुराजन्तु विज्ञान की ही भाँति, जो प्रस्तरीभूत जंतुओं की ही चर्चा करता है, पुरावनस्पति विज्ञान का भी व्यावहारिक उपयोग मिट्टी के तेल, कोयला, तथा, अन्य महत्वपूर्ण खनिजों की खोज के सम्बन्ध में पाया जा सकता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर बर्मा आयल कम्पनी ने कई विद्वानों के व्यय का भार अपने ऊपर लिया है।

"यद्यपि पुरावनस्पति विज्ञान अध्ययन एक शताब्दी से भी अधिक समय से अधिकाधिक होता रहा है, किन्तु यह सदा प्रमुख विषय, वनस्पति विज्ञान की एक शाखा मात्र माना जाता रहा है। भारत इस बात का गर्व कर सकता है कि यह प्रथम देश है जिसने इस संबंध में खोज तथा अध्ययन के महत्व को स्वीकार किया है तथा संसार की प्रथम पुरावनस्पति विज्ञान अनुसंधानशाला की स्थापना कर रहा है। इस संस्था के स्थापन में मुख्य भाग प्रोफेसर बीरबल साहनी का है जिनका पुरावनस्पति विज्ञान जगत में एक प्रमुख स्थान है। उनके जीवन भर के अध्ययन ने अंतर्राष्ट्रीय जगत में यथेष्ट रुचि उत्पन्न कर दी है। उनके अनुसन्धानों ने वैज्ञानिक जगत में भारत का सिर ऊँचा करने में भारी सहायता की है। उन के प्रयासों का चरम उत्कर्ष इस संस्था की स्थापना में व्यक्त हो रहा है। डा० साहनी तथा श्रीमती साहनी दोनों ने ही धन राशि, सेवा तथा आजीवन संगृहीत प्रस्तरावशेषों तथा पुस्तकों का दान इस संस्था को कर इसको विशेष प्रगति दी

है। यहाँ पर अर्जित नवीन ज्ञान प्रदर्शित करता है कि विज्ञान तथा हमारे आर्थिक साधनों के विकास में भारत की नवीन पीढ़ी बल प्रदान करने में कितनी क्षमता रखती है।"

बीरबल साहनी का भाषण

३ अप्रैल १९४९ को बीरबल साहनी ने पुरावनस्पति विज्ञान अनुसंधानशाला भवन के शिलान्यास के अवसर पर डा० बीरबल साहनी ने निम्न भाषण दिया था :—

इस पवित्र घड़ी में, गण्यमान्य सज्जनों की उपस्थिति में यह मेरा विशेष सौभाग्य है कि भारत के प्रधान मंत्री से पुरावनस्पति विज्ञान अनुसन्धानशाला के नए भवन के लिए शिलान्यास करने के लिए अभ्यर्थना कर रहा हूँ।

कुछ रूपों में यह एक अभूतपूर्व अवसर है। क्योंकि यह अनुसंधानशाला आज संसार में अपने ढंग की अकेली और सर्वप्रथम संस्था है। और हम लोगों को कृतकृत्य करने के लिए आपसे प्रार्थना करने में मैं अनुभव करता हूँ कि आपके ऊपर मेरा थोड़ा व्यक्तिगत अधिकार है।

क्योंकि हम और आप दोनों ने ही कैम्ब्रिज में एक ही ज्ञान मंदिर में आराधना की है। वहाँ हम लोगों ने एक ही ज्ञान मंदाकिनी का रस पान किया तथा एक ही गुरु के चरणों पर नत हुए जिसने हम लोगों को वनस्पति विज्ञान एवं भूगर्भ विज्ञान की शिक्षा दी।

विज्ञान के एक छात्र से प्रारंभ कर सफलतापूर्वक आप एक अभिवक्ता, एक राजनीतिज्ञ (तथा घटना चक्रवश कारागार-प्रवासी), एक लेखक, एक दूरदर्शी कूटनीति विशारद, एवं एक अंतर्राष्ट्रवादी बन गए। इन सबसे परे आप महात्मा गाँधी के शिष्य बने तथा इस संघर्षात्मक जगत में आप अब एक मुख्यतः शान्ति-दूत है। किन्तु आपके व्यक्तित्व के ऊपर विज्ञान की प्रारम्भिक उत्कंठा इतनी अधिक थी कि आपके समग्र कलेवर को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अब भी आवेष्ठित किए है।

वनस्पति विज्ञान तथा भूगर्भ विज्ञान, दोनों ही के लिए संधिस्थल पुरावनस्पति विज्ञान है—यह यथार्थ में शिलाओं का वनस्पति विज्ञान है। मुझे इस अनुसंधानशास्त्र की स्थापना तथा कई वर्षों से इसके कार्य संचालन में हाथ रखने का अवसर रहता आया है। अतएव मैं यह कह सकता हूँ कि हम लोग यहाँ केवल प्रस्तरावशेषीय वनस्पतियों का ही अध्ययन नहीं करते, बल्कि उन शिलाओं का भी अध्ययन करते हैं जिनमें वे सुलभ होते हैं। अनुभव ने हमें बताया है कि हम इसी प्रकार कार्य कर भूगर्भ वैज्ञानिक कालों में वनस्पति जगत का साँग चित्र उपस्थित कर सकते हैं।

जिस प्रकार एक शिशु गिरते पड़ते ही चलना सीखता है, उसी प्रकार विज्ञान का प्रासाद बहुसंख्यक भूलों की भित्ति पर खड़ा होता है।

पुरावनस्पति विज्ञान का प्रारंभ पहले एक शुद्ध मौखिक ज्ञान, विचित्रताओं के अध्ययन रूप में हुआ। धीरे धीरे दृष्टिकोण बदला, जैसा प्रायः काल की गति से बदलता है तथा इसने एक नया जगत ही सम्मुख रक्खा। हमारा सारा दृष्टिकोण अब घोर परिवर्तित हो गया है जिसकी पूर्व रूप से तुलना ही नहीं हो सकती। आज आधुनिक शिल्प तथा अन्य संबंधित विज्ञानों पर प्रतिक्रियाओं के उचित मूल्यांकन के साथ प्रस्तरावशेषीय वनस्पतियों का अनुशीलन एक आदरणीय पद प्राप्त कर सका है, और संसार भर में इसे जो साहाय्य प्रदान किया जा रहा है उस सम्मान के योग्य है। यह केवल वनस्पतियों की विकासगत कथा की झाँकी ही देख सकने में हमें समर्थ नहीं बनाता, बल्कि प्रस्तरों की ठीक आयु प्रदर्शित करने में भी अधिकाधिक योगदान करता है और इस प्रकार भूगर्भ के धन भंडार, विशेषतया कोयले तथा तेल के खोजने में सहायक बनता है। यह भूतकालीन भूगोल के अध्ययन में भी सहायता करता है तथा पृथ्वी की पपड़ी की रचना एवं धरती की परिवर्तनकारी प्रगतियों के पुनः पुनः घटित होने वाले रूपों के समझने में सहायता करता है जिनमें से कुछ का प्रभाव पूर्ण महादेशों पर पाया जा सकता है।

यह आधार शिला जिसे रखने के लिए आमंत्रित करने का अवसर मुझे मिल रहा है, एक असाधारण रूप का स्मारक है जो आपके सामने पड़ा है। यह एक विशेष उद्देश्य से विभिन्न प्रस्तर-खंडों एवं प्रस्तर वशेषों के सम्मिलन से निर्मित हुआ है जो विभिन्न देशों के नवीनतम से लेकर प्राचीनतम भूगर्भ वैज्ञानिक रचनाओं से प्राप्त हैं। इन नमूनों को हम लोगों ने या तो स्वयं

संग्रहीत किया है या संसार भर के अनेक सहकर्मियों द्वारा इस अनुसंधानशाला को भेंट स्वरूप मिले हैं। उन में से कुछ पुरावनस्पति वैज्ञानिक कौतूहल सम्बन्धी खोजों को व्यक्त करते हैं, कुछ दूसरे महान भूगर्भ वैज्ञानिक महत्व के हैं या उनका महत्व आर्थिक भूगर्भ विज्ञान में है।

इन में से कुछ प्रस्तरावशेष आज से कुछ सप्ताहों पूर्व ही विहार के संथाल परगना की राजमहल पहाड़ियों से प्राप्त हुए, प्रस्तर के मध्य लाखों करोड़ों वर्षों तक विनिद्रित पड़े रहने के पश्चात् ये अमर पदार्थ भूगर्भ विज्ञानविद की हथौड़ी की चोट से मानो जग उठे और पिछली जनवरी

डा० बीरबल साहनी

में ही पहले पहल उन्होंने बाह्य संसार का प्रकाश देखा। अब वे इस आधारशिला में पुनः शामिल होने के लिए रक्खे जा रहे हैं, यह मानों द्वितीय समाधि हो किन्तु उनके मुख अनावृत हैं, वे भूतकाल की अनोखी दुनिया के अमर साक्षी हैं।

इस प्रकार अपने साधनों की शक्ति एवं शिल्प ज्ञान के अनुसार इस आधार शिला को आज के केवल भारत के ही नहीं, प्रत्युत समस्त जगत के पुरावनस्पति विज्ञान के संपूर्ण क्षेत्र का प्रतीक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

भूगर्भ वैज्ञानिक रचनाओं की कई सहस्र फीट मोटी तहें जिन्हें भूगर्भ विज्ञानवेत्ता अभी हाल तक प्रस्तरावशेष से सर्वथा शून्य घोषित करते थे 'अतएव उनका कालक्रम निर्णय करने में क्षमता प्रकट करते थे।' मुख्यतया इस अनुसंधान शाला में संचालित कार्यों द्वारा यह प्रकट करने में समर्थ हो सकी हैं कि ये सूक्ष्मदर्शकीय-प्रस्तरावशेषों से भरी पड़ी हैं जिनको प्रस्तरावशेषीय वनस्पतियों तथा प्रस्तरावशेषीय जन्तुओं के सूक्ष्मदर्शकीय रूप में माना जा सकता है। इनके द्वारा उन शिलाओं के कालक्रम निर्णय पर गहरा प्रकाश पड़ सका है तथा हमें तेल संचयकारी स्तरों के

ं गीकरण की परिष्कृत विधि ज्ञात हो सकी है। इस प्रकार दूर दूर के देशों के सहयोगियों द्वारा ३० वर्षों से भी अधिक की अवधि में प्राप्त हुए उपहार का हम लोग स्मारक निर्मित कर सकने में हर्ष का अनुभव करते हैं।

यह हम लोगों की आशा है कि इस आधार शिला रूप में एक अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं सांस्कृतिक सहयोग की श्रृंखला विनिर्मित हो सकी है। अतएव इस आधार शिला को स्थापित कर आप इस नवप्रसूत संस्था के लिए आशान्वित भविष्य की कल्पना करने में सहायक होंगे जो एक प्रशस्त एवं यथार्थ अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर आधारित होगा जो हम लोगों का एक लक्ष्य ही है।

क्योंकि वस्तुतः सभी धर्मनिष्ठ व्यक्ति एक प्रस्तर की पूजा किसी मंदिर में स्थापित कर किस अभिप्राय से करते हैं, वह केवल एक भावना या एक आदर्श है या एक महान सत्य, या इस लोक या परलोक में एक उत्कृष्टतर जीवन की आशा या लालसा है और यह प्रस्तर किसका प्रतीक है ?—यह इस धरा पर वनस्पति जीवन की प्राचीनता का महान सत्य है और उस तथ्य को अधिकाधिक प्रकाश में लाने की सतत प्रयत्नशील मानव बुद्धि है जो केवल वनस्पति जगत की ही विकास कथा के विभिन्न सोपानों को अधिकाधिक व्यवस्थित एवं बोधगम्य अनुक्रम में ही नहीं प्रकट करती, बल्कि इन तथ्यों की अपनी दुर्बल बोधगम्यता की विकास कहानी भी व्यक्त करती है। इसका निर्माण करना ही तथा इसकी पूर्ण रूप रेखा की न्यूनता तथा अपूर्णता एवं उसके प्रस्तुत करने में लगा श्रम, केवल किसी उल्लेखनीय नवीन रचना के प्रस्तुत करने के हमारे अपूर्ण तथा दुर्बल प्रयासों के ही प्रतीक हैं।

मान्यवर ! यह आधारशिला आपके महान हाथों से अवस्थित होकर आपके योग्य ही सिद्ध हो तथा पुरावनस्पति विज्ञान तथा इस अनुसन्धानशाला के लिए सतत उज्ज्वल एवं उपयोगी भविष्य प्रदान करने वाली शुभ घड़ी सिद्ध हो जिसमें सभी राष्ट्रों के व्यक्ति विज्ञान एवं साधना की भावना से सहयोग करें।"

शिलान्यास पर नेहरू जी का भाषण

"डा० बीरबल साहनी ने पुरावनस्पति विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, तथा पुराजन्तु विज्ञान में विद्यमान सम्बन्धों की चर्चा की है। मैं इन विज्ञानों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं रखता किन्तु उनके नामों से मैं अवश्य परिचित हूँ। बहुत वर्षों पूर्व प्रो० सेवर्ड कैम्ब्रिज में मेरे अध्यापक थे और मैं समझता हूँ कि बाद में उन्होंने बीरबल साहनी को भी पढ़ाया। मैं प्रोफेसर सेवर्ड के वनस्पति विज्ञान की कक्षा में बैठा करता था तथा कैम्ब्रिज में मैंने कुछ भूगर्भ विज्ञान भी सीखा। यही एक कारण आज की कार्यवाही में मेरी अभिरुचि होने का है। किन्तु यथार्थ कारण यह है कि प्रोफेसर साहनी वैसे वैज्ञानिक के प्रतीक हैं जैसा प्रत्येक वैज्ञानिक को होना चाहिए। अपनी सारी शक्ति के साथ अपने जीवन को इन्होंने अपने अनुसन्धान में अर्पित कर दिया है और पूर्ण विश्वास है कि वे ऐसा करते रहेंगे। किसी व्यक्ति में अपने कार्य के प्रति यह गुण दूसरों पर बहुत अधिक प्रभाव डालता है। जो व्यक्ति इतनी अधिक प्रगाढ़ अनुरक्ति से अपना कार्य संचालित करता रहता है वह ठीक मार्ग पर जाता है। मनुष्य उत्कृष्ट है तो उसका कार्य भी उत्कृष्ट है। यदि डा० साहनी में परिलक्षित एकाग्र भावना से लोगों में कर्तव्यपालन वृत्ति हो तो देश की अनेक समस्याएँ सुलझ जायँ।"

पुरावनस्पति अनुसंधानशाला भवन का उद्घाटन

प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने २ जनवरी १६५२ को पुरावनस्पति विज्ञान अनुसन्धानशाला के नए भवन का उद्घाटन किया जिसका शिलान्यास अप्रैल १६४६ में हुआ था। नेहरू जी को भवन पूर्ण देखकर बड़ा हर्ष हुआ उन्होंने अपनी प्रसन्नता को निम्न शब्दों में व्यक्त किया :—

भवनों का शिलान्यास करना मेरे लिए एक व्यवसाय सा हो गया है। कभी तो शिलान्यास का फल निकलता है, कभी-कभी उसका परिणाम निकलने में यथेष्ट समय लग जाता है किन्तु कुछ ऐसे भी अवसर आते हैं कि मैं जिस आधार शिला को स्थापित करता हूँ,

वह उस स्थल पर एकाकी ही पड़ी रह जाती है जहां वह स्थापित हुई थी।

स्वर्गीय डा० साहनी का गुणगान करते हुए नेहरू जी ने कहा कि इस भवन के उद्‌घाटन के उत्सव में विशेष रूप से सम्मिलित होने के लिए विदेशों से आये हुए बहुसंख्यक वैज्ञानिकों की उपस्थिति ही डा० साहनी के प्रति उस आदर भावना को प्रकट करती है जो विज्ञान जगत उनके प्रति रखता था। यह दुर्भाग्य की बात थी कि इस संस्था के स्थापित होने के कुछ समय पश्चात् थोड़ी आयु में उनकी मृत्यु हुई।
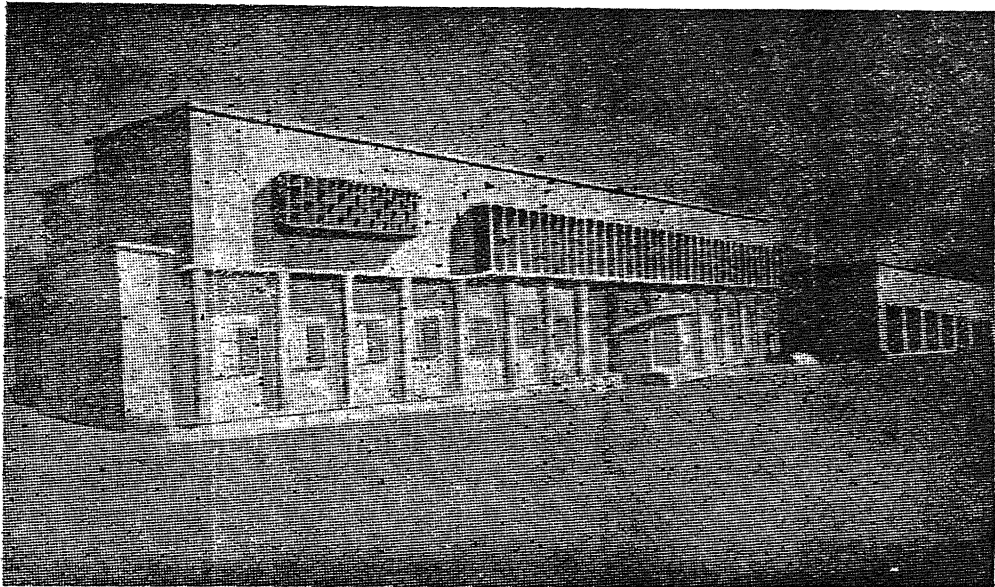
पुरावनस्पति विज्ञान अनुसंधानशाला का नवीन भवन

नेहरू जी ने इस संस्था तथा अन्य अनुसन्धानशालाओं में होने वाले उत्तम कार्य पर हर्ष प्रकट किया। उन्होंने कहा कि ये संस्थाएं विज्ञान जगत के मान चित्र में भारत का स्थान बना रही हैं। उन्होंने कहा "जब मैं युवकों और युवतियों को इन विज्ञानशालाओं तथा प्रयोगशालाओं में अच्छा कार्य करते देखता हूँ तो अपार हर्ष अनुभव होता है क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि वे उन्नति की नींव स्थापित कर रहे हैं।"

नवीन भवन का उद्‌घाटन समारोह अनुसन्धानशाला के इहाते में विशेष रूप से पंडाल में मनाया गया। इस में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों में विज्ञान कांग्रेस के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अनेक विदेशी पुरावनस्पति विज्ञानवेत्ता थे जो विशेष रूप से इस उत्सव में ही सम्मिलित होने आए थे। जिस समय प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू अनुसन्धानशाला के संचालक डा० एम० ए० हुएग के साथ एक जलूस में मंच पर पधारे उस समय पंडाल खचा खच भर गया था। मंच पर प्रधान मन्त्री, राज्यपाल, मुख्य मन्त्री, श्रीमती साहनी तथा अनेक विदेशी वैज्ञानिक आसीन थे।

समारोह का प्रारम्भ राज्यपाल श्री० के० एम० मुंशी ने कर नेहरू जी तथा अतिथियों का स्वागत किया। संस्था जो सुन्दर कार्य कर रही है उसकी उन्होंने प्रशंसा की तथा केन्द्रीय सरकार की, इसकी सहायता करने के लिए, सराहना की। उन्होंने कहा कि पुरावनस्पति विज्ञान की खोजों से केवल वैज्ञानिक अभिरुचि की ही नहीं हैं, बल्कि उद्योग धन्धों के विकास में भी सहायक होंगी।

श्री मुन्शी ने डा० साहनी की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा बताया कि उन्होंने लखनऊ को विज्ञान जगत के मानचित्र पर प्रसिद्ध कर दिया है।

डा० साहनी की विधवा पत्नी श्रीमती सावित्री साहनी ने अनुसन्धानशाला की प्रबन्ध कारिणी समिति की ओर से प्रधान मन्त्री तथा अतिथियों का स्वागत किया तथा प्रधान मन्त्री की इसलिए असीम प्रशंसा की कि वे देश के वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि के लिए विशेष अभिरुचि रखते हैं। उन्होंने प्रधान मंत्री के प्रति कहा, "यह आप के आदेश का परिणाम है कि देश भर में वैज्ञानिक अनुसन्धानशालाएँ स्थापित होती जा रही हैं।"

श्रीमती साहनी ने बताया कि यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय ढंग से काम कर रही है। यह स्वर्गीय डा० साहनी की इच्छा के अनुरूप बात है जो अपना जीवन विज्ञान के लिए अर्पित कर गए। उनकी इच्छा एक अन्तर्राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला स्थापित करने की थी जहाँ संसार के वैज्ञानिक एकत्र हो सकें और प्रकृति के रहस्यों का भेदन कर सकें।

श्रीमती साहनी ने विदेशी वैज्ञानिकों के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रकट किया जिन्होंने इस अनुसंधानशाला के कार्यों में गंभीर अभिरुचि दिखलाई।

लखनऊ विश्वविद्यालय के उप कुलपति आचार्य युगुल किशोर ने अनुसंधानशाला की प्रबंधकारिणी समिति को विश्वविद्यालय की ओर से सहायता तथा प्रश्रय का आश्वासन दिलाया।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विभाग के सचिव डा० एस० एस० भटनागर ने प्रधान मंत्री की प्रशंसा की जिनकी वैज्ञानिक अनुसंधान में अभिरुचि द्वारा देश में वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास हो रहा है स्वर्गीय डा० साहनी की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि उनकी स्मृति उन लोगों के हृदय में उच्च स्थान धारण किए है।

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पंत ने इस अवसर पर भाषण देते हुए स्वर्गीय डा० साहनी का गुणानुवाद किया और कहा कि उनका जीवन विज्ञान के प्रति पूर्ण अर्पित था। वे विज्ञान के लिए ही जीते रहे। कार्य करते रहे तथा मरे।

लीज विश्वविद्यालय, बेलजियम के प्रो० एस० लेक्लर्क ने कहा कि यह संस्था संसार में अपूर्व है। इसकी खोजें तथा अनुसन्धान विश्वव्यापी महत्व की हैं। संस्था के संचालक डा० ओ० ए० हुएग ने प्रधान मंत्री को धन्यवाद देते हुए कहा कि संस्था के भवन का उद्घाटन विज्ञान के इतिहास में एक महान घटना है क्योंकि साहनी अनुसन्धानशाला संसार में पुरावनस्पति विज्ञान की प्रथम अनुसन्धानशाला है। सन्चालक के भाषण के पश्चात मुख्य द्वार की कुंजी प्रधान मंत्री को प्रदान की गई। वे श्रीमती साहनी के साथ जलूस में द्वार तक गए तथा द्वार खोला। उन्हें प्रयोगशाला, संग्रहालय तथा पुस्तकालय दिखलाया गया।

विज्ञान सम्मेलन के सभापति

१६१४ आशुतोष मुकर्जी
१६१५ डबल्यू० वी० बोनरमैन
१६१६ कर्नल सर सिडनी जी० बुर्राड
१६१७ सर अलफ्रेड गिब्स बोर्न
१६१८ डा० गिलबर्ट टी० वाकर
१६१६ लेफ्ट० कर्नल सर लुनार्ड रोजर्स
१६२० आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय
१६२१ राजेंद्रनाथ मुकर्जी
१६२२ सी० एस० मिडिलमिस
१६२३ एम० विश्वेश्वरैया
१६२४ डा० एन० आरनडेल
१६२५ डा० एम० ओ० फार्सटर
१६२६ अलबर्ट हावर्ड
१६२७ जगदीशचंद्र बोस
१६२८ जे० एल० साइमनसन
१०२६ सी० वी० रमन
१६३० कर्नल एस० आर० क्रिस्टाफर्स
१६३१ सेफ्टि० कर्नल आर० बी० सेमौर सीवेल
१६३२ शिवराम कश्यप
१६३३ डा० एल० एल० फरमर
१६३४ डा० मेघनाद साहा
१६३५ डा० जे० एच० हटन
१६३६ यू० एन० ब्रह्मचारी
१६३७ टी० एस० वेंकटरमन
१६३८ सर जेम्स जीन्स
१६३६ जे० सी० घोष
१६४० डा० वीरबल साहनी
१६४१ आर्देशिर दलाल
१६४२ डी० एन० वाडिया
१६४४ एस० एन० बोस
१६४५ डा० शांतिस्वरूप भटनागर
१६४६ प्रो० अफजल हुसेन
१६४७ पंडित जवाहरलाल नेहरू
१६४८ कर्नल आर० एन० चोपड़ा
१६४६ कार्यमाणिक्कम श्री निवास कृष्णन
१६५० प्रो० महलानोबिस
१६५१ प्रो० एच० जे० भाभा
१६५२ डा० जे० एन० मुकर्जी
१६५३ देवेन्द्र मोहन बोस

विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष

[श्री देवेन्द्र मोहन बोस]

भारतीय विज्ञान कांग्रेस के पूरे अधिवेशन के अध्यक्ष श्री देवेन्द्र मोहन बोस का जन्म कलकत्ते में नवम्बर १८८५ में हुआ था। प्रेसीडेंसी कालेज के सिटी स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा के बाद १६०६ में भौतिक शास्त्र में एम० ए० की उपाधि लेकर प्रख्यात वैज्ञानिक स्वर्गीय डा० जगदीश चन्द्र बोस के मातहत, जो आपके चचा थे, शोध कार्य किया। १६०७ में आपने क्राइस्ट कालेज, कैम्ब्रिज में नाम लिखाया और कुछ समय तक जे० जे० थामसन के मातहत केवंडिश लेबोरेटरीमें कार्य किया। १६१२ में आपने लन्दन विश्वविद्यालय से बी एस०-सी० (आनर्स) की डिग्री ली। स्वदेश आने पर आपने सिटी कालेज में एक साल अध्यापन का कार्य किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र के "घोष प्रोफेसर" होने के बाद अप्रैल १६१४ में बर्लिन विश्वविद्यालय में दो साल

अध्ययन के लिये गये। प्रथम महायुद्ध के छिड़ जाने के कारण आपकी शिक्षा रुक गई। बाद में आपको इजाजत मिली। फिर भी युद्ध समाप्त होने के बाद आप डाक्टर की उपाधि लेकर भारत आये और कलकत्ता विश्वविद्यालय में १९३५ में श्री सी० वी० रमण के हटने के बाद आप पालित प्रोफेसर बने। जगदीशचन्द्र बोस की मृत्यु के बाद आप उन्हीं के स्मारक बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट के संचालक बने और आज भी आप उसी पद पर हैं। २७ वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस में आप भौतिक शास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे। उसी वर्ष भौतिक शास्त्र वैज्ञानिकों की वोल्टा शताब्दी के उपलक्ष्य में कोमोद में होने वाले अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन में भी आप गये।

आपके शोध कार्य मुख्यतः परमाणु संघर्ष और बिलसन मेघ मंजूषा (क्लाउडसचैम्बर) तथा फोटो ग्राफीय आसंसन द्वारा परमाणु-केन्द्रकीय सङ्घर्ष तथा विघटन का अध्ययन तथा फोटोग्राफीय आसंसन पद्धति (फोटोग्राफिक इमल्शन मेथड) द्वारा मेसन की मात्रा का निर्धारण है।

कैवेंडिश शोधशाला में आपने विलसन की प्रक्रिया देखी थी और बर्लिन में रेजनर ने उन्हें नये किस्म का विलसन चैम्बर बनाने का काम सौंपा था। आपने हाइड्रोजन पूरित मंजूषा में कणों की गति से उत्पन्न पथविचलित परमाणु केन्द्रकों (प्रोटोन्स) के मार्ग का छायाचित्र (फोटो) उतारना प्रारम्भ किया। डारविन के फारमूला की पुष्टि ऐसे संघर्ष के प्रभावों से की थी डेलटा परमाणुओं का भी जिनका अनुसंधान उसी समय वमस्टीडने किया था, आपने अध्ययन किया।

कलकत्ता वापस आकर आपने श्री एस० के० घोष के साथ अपना शोधकार्य जारी रखा और नोषजन (नाइट्रोजन) परमाणु केन्द्रक के विघटन रूप में आप लोगों के लिए हुए एक फोटो की व्याख्या हुई थी, जो सन् २३ में नेचर में प्रकाशित हुई, लार्ड रदर फोर्ड ने प्रशंसा की थी। अकस्मात् एक दुर्घटना में श्री घोषकी मृत्यु के कारण आपका इस दिशा में शोध कार्य फिलहाल रुक गया।

सन् ३८ के विज्ञान कांग्रस के अधिवेशन में टेलर के एक निबन्ध और वैज्ञानिक बोदे से बातचीत के बाद आपने नये उत्साह से डा० विभा चौधरी के साथ विभिन्न स्थानों पर जाकर अनेक परिस्थितियों में पुराना शोध कार्य आरम्भ किया और पावेल की ऐतिहासिक खोज के बाद आप विभिन्न परमाणु तत्वों के वस्तु सम्बन्धी विवाद को एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचाने में सफल हुए। सन् ४२ में डा० चौधरी की विलायत यात्रा से और अनेक यन्त्रों की अप्राप्यता के कारण शोध कार्य रुक गया।

जब श्री बोस "बोस इंस्टीट्यूट" में आये तब से उनके सहयोगियों में सर्व श्री एस० डी० चटर्जी और एम० एस० सिंह भी साइंस कालेज में वहीं आ गये, और इन लोगों ने भी वायुमंडल में विभिन्न ऊँचाइयों पर परमाणु संघर्ष विलयन एवं पृथक्करण, सूर्य ताप और पृथ्वी तक उनका प्रभाव तथा कास्मिक किरणों के घनत्व, विलसन चैम्बर से सम्बन्धित बड़ी कास्मिक किरणों का फटाव और सीसा तथा अन्य वस्तुओं पर तेज किरणों का प्रभाव इन सब विषयों पर महत्वपूर्ण शोध कार्य किया है। १९२५ से श्री बोस ने वार्नर के सिद्धान्त पर शोध कार्य आरम्भ किया जिसमें कि वैज्ञानिक हेटका फारमूला लोहा पैलेडियम और प्लेटिनम के बारे में सही परिणाम नहीं दे पाता था। आपने इस प्रक्रिया की नयी विधि निकाली और पैलेडियम तथा प्लेडिअम तथा प्लेटिनम पर आपकी प्रक्रिया सफल हुई।

बोस इन्स्टीट्यूट के संचालक की हैसियत से आपने इंस्टीट्यूट को वनस्पति विज्ञान के सिद्धांतों एवं व्यावहारिक ज्ञान के लिए अग्रणी शोधशाला बनाने का प्रयत्न किया। आपने स्वर्गीय डा० जगदीशचन्द्र बोस के वनस्पति शोध कार्य को वर्तमान जीव विज्ञान संबधी मान्यताओं के अनुरूप सिद्ध करते हुए एक पुस्तक भी प्रकाशित की। साथ में व्यावहारिक वनस्पति ज्ञान सम्बन्धी अनेक शोध कार्य आपके निरीक्षण में चल रहे हैं। एक्सरे, रेडियेशन, रसायन आदि संबंधी आपके अनेक शोधकार्यों का आज जूट, कपास और तिलहन उद्योग में उपयोग भी हो रहा है। इस प्रकार श्री बोस अपने विषय के विशेषज्ञ होने के अतिरिक्त विज्ञान की विभिन्न शाखाओं और उनके व्यावहारिक पहलुओं के भी ज्ञाता हैं। कैम्ब्रिज में सन् १९०९ में डारविन थियरी की ५० वीं वर्षगांठ के अवसर पर आपने वेटसन और कारी पियर्सन के विवाद में भी दिलचस्पी दिखाई थी

विभागीय अध्यक्ष

पुरातत्व विभाग

श्री माधव स्वरूप वत्स

पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष माधव स्वरूप वत्स, एम० ए० (आनर्स) एफ० आर- ए० एस० (इंगलैण्ड) जन्म १८८६ लुधियाना, व लाहौर में शिक्षा प्राप्त। १९१६ में पटना अजायबघर में शिलालेख विशेषज्ञ और १९२० में भारत के पुरातत्व शोध विभाग में आकर १९२३-२४ में १८ महीने अस्थायी असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट रहने के बाद १९२५ में स्थायी हो गये तथा २० वर्षों में कई सर्किलों में सुपरिंटेंडेंट पद पर रहे। आपने पुरातत्व सम्बन्धी सभी विभागों में कार्य किया। खुदाई और संरक्षण में आपकी विशेष ख्याति है। मोहन जोदडो और हड़प्पा की खुदाई आपने ही की और हड़प्पा की खुदाई पर १९४० में अपनी ऐतिहासिक पुस्तक छपाई। गोल गुम्बज, इलिफैंटाकी गुफा, ताजमहल, दरगाह फतेहपुर सीकरी, निर्वान और धम्मेक्ख स्तूपकी महत्वपूर्ण मरम्मत कराई है। भारतीय इतिहास कांग्रेस के १७ वें अधिवेशन में आप एक विभाग के अध्यक्ष थे। सरकारी और अन्य देश-विदेश की पुरातत्व पत्रिकाओं में आपने बहुत से मौलिक लेख पुरातत्व सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर लिखे हैं। विशद भारतीय इतिहास के लिए आपने सिंधुघाटी सभ्यता पर ३, और हेरीटेज आफ इंडिया पुस्तकमाला में १ पुस्तकलिखी है। आप लगभग ५।। वर्षों तक पुरातत्व विभाग के उपप्रधान डिप्टीडायरेक्टर रहें और जम्मू तथा कश्मीर में पुरातत्व शोध की आपने विशद योजना बनाई। देवगढ़ में आपने गुप्त काल की कला और वास्तु का विशेष वैज्ञानिक अध्ययन किया और उसके परिणाम अभी हाल में पुरातत्व पत्रिका के ५० वें संस्मरण में छपे हैं। १९५० में आप पुरातत्व विभाग के प्रधान संचालक बनाये गये। कनारक के सूर्य मन्दिर के संरक्षण की विशद योजना बनाने में आपका बड़ा हाथ है।

वनस्पति उत्पत्ति एवं संवर्द्धन

डा० पार्थ सारथी

डा० एन० पार्थसारथी केन्द्रीय धान शोधशाला कटक के संचालक (जन्म मद्रास सन् १९००) मद्रास विश्वविद्यालय से कृषि में बी० ए० करने के बाद मद्रास कृषि विभाग में नियुक्त हुए। धान उत्पत्ति विज्ञान के विशेषज्ञ की हैसियत से आपने १९३१ से ३८ तक विदेश में शोध कार्य करके डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। १९४० में आप केन्द्रीय सरकार के कोयम्बटूर स्थित ईख उत्पत्ति विशेषज्ञ हुए। १९४० से ५१ तक आप नई दिल्ली के केन्द्रीय कृषि शोधशाला के वनस्पति शाखा के अध्यक्ष थे। आपने अनेक बीजों की जैसे ईख, धान जैसी महत्वपूर्ण फसलों की उत्पत्ति, अंकुर और बाढ़ पर अनेक निबन्ध लिखे हैं। आप नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंसेज के फैलो और वनस्पति उत्पत्ति एवं संवर्धन की भारतीय सोसायटी के अध्यक्ष हैं।

जन्तु और वनस्पति विभाग

डा० आर० के० सक्सेना

डा० रामकुमार सक्सेना (जन्म १६ सितम्बर १८९७, प्रयाग से १९१८ में बी० एस-सी० और बनारस से १९२२ में एम० एस-सी० सेंट जान्स कालेज आगरा में कुछ दिन पढ़ाने के बाद प्रयाग विश्वविद्यालय में, १९२२ में अध्यापक नियुक्त हुए। १९४१ से वहीं रीडर पद पर हैं। सन् ३५ में आपने पेरिस जाकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० अलेक्जेंडर के साथ शोध कार्य करके साइंस में डाक्टर की उपाधि के साथ उस विश्वविद्यालय का सर्वोत्कृष्ट "ट्रे" सम्मान प्राप्त किया। भारत में आप अपने सहयोगियों सहित अंकुर और फुनगी सम्बन्धी शोध कार्य में तत्पर हैं और आपके तद्विषयक निबंध अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। आप गत वर्ष नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंस के फैलो नियुक्त हुए।

जन्तु एवं कृषि शास्त्र

डा० पन्नीकर

जन्तु और कृषि शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा० एन० के० पन्नीकर (एम० ए०, डी० एस-सी०, एफ० ए० एस० सी०, येफ० एन० आई०, जन्म—१६१३ कोट्टयम् ट्रावनकोर। मद्रास क्रिश्चियन कालेज से १६३३ में ग्रेजुएट) ने मद्रास विश्वविद्यालय की जन्तु शोधशाला में काम करके १६३५ में एम० एस-सी० और १६३८ में डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। १६३८ में आपको यूनिवर्सिटी कालेज लन्दन में और मेराइन बाइलोजिकल लेबोरेटरी प्लाईमाउथ में काम करने के लिए सन् ५१ की प्रदर्शनी के लिये नियुक्त रायल कमीशन की छात्रवृत्ति मिली जहाँ आपने प्रो० वाटसन (एफ० आर० एस०), प्रो० हिल (एफ० आर० एस०), डा० केम्प, (एफ० आर० एस०) और डा० आटकिन्स (एम० आर० एस०) के साथ कार्य किया और प्लाईमाउथ के बाद कैम्ब्रिज में आपने शोध कार्य जारी रखा। १६४२ में आप भारत आकर ट्रावनकोर विश्वविद्यालय में जन्तु शास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए लेकिन बाद में मद्रास विश्वविद्यालय की जन्तु शास्त्र की शोध शाला में प्रो० गोपाल ऐयार की जगह नियुक्त हुए। १६४६ में आप मत्स्य शोधशाला की स्थापना के लिए विशेष सरकारी अफसर बनाये गये, और जब १६४७ में केन्द्रीय मत्स्य शोधगृह बना तो उसमें प्रधान जन्तु विज्ञान-विशारद की हैसियत से आपने शोध कार्य जारी रखा। १६५० से आप मदवन शिविर (दक्षिणी भारत) में इंस्टीट्यूट के प्रधान हैं। आपने समुद्र-गर्भ में स्थित अनेक प्राणियों और वस्तुओं के जन्म जीवन और प्रसव तथा रूप परिवर्तन एवं मत्स्यशालाओं से सम्बन्धित शोध लेख छपवाये हैं। भारत प्रशांतीय मत्स्य शोध परिषद् में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से आप सिंगापुर (१६४६) और मनीला (१६५२) में फिशरीज कौंसिल गये थे। आप नेशनल इंस्टीट्यूट, भारतीय विज्ञान एकेडमी, के फेलो, जन्तु विज्ञान सोसाइटी के सदस्य और पत्रिका के सम्पादक हैं।

रसायन विज्ञान

डा० यू० पी० बसु

डा० यू० पी० बसु, डी० एस-सी०, एफ० आर० एस०, एफ० एन० आई० ने रसायन विज्ञान विभाग के अध्यक्ष का पद ग्रहण किया। कलकत्ता के बंगाल इम्यूनिटी रिसर्च इंस्टीट्यूट के संचालक हैं। अध्यापक और औद्योगिक शोधकर्त्ता दोनों दृष्टियों से आपका स्थान काफी महत्वपूर्ण है और आपने रसायन चिकित्सा (कैमोथेरापी) तथा फारमेस्यूटिकल रसायन शास्त्र शाखाओं में बहुमूल्य शोध कार्य किया है। भारत की ही नहीं विश्व की अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं से आपका सम्बन्ध है और आप अपने अनेक लेखों एवं पुस्तकों से विज्ञान को जनता एवं समाज में लोकप्रिय बनाने में काफी सफल हुए हैं।

इंजीनियरिंग व धातु शोध

डा० सरकार

इंजीनियरिंग एवं धातु शोध विज्ञान शाखा के अध्यक्ष डा० एस० के० सरकार एम० एस-सी० (कलकत्ता) पी-एच० डी०, ए० आर० एस० एम०, डी० आई० सी० (लंदन) कोयले की खानों के प्रख्यात विशेषज्ञ रासायनिक इंजीनियर, खान इंजीनियर तथा भूतत्व विशारद हैं। आप प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता, रायल साइंस स्कूल और इंपीरियल साइंस कालेज (टेक्नालाजी शाखा में शिक्षा तथा ब्रिटेन और यूरोप में अनुभव के बाद कोयले से कार्बन बनाने तथा खान से कोयले के साथ निकलने वाली वस्तुओं के वैज्ञानिक उपयोग, रसायन यन्त्रों के डिजाइन और उनसे कोयले बनने वाले विभिन्न तत्व के निर्माण में विशेषज्ञ हो गये हैं।

स्वदेश वापसी से अब तक आप बरार्स कम्पनी लिमिटेड कुसुन्डा में हैं तथा अपने विषय के शोधकार्य में अग्रणी होने के अतिरिक्त विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी वैज्ञानिक संस्थाओं से सम्बन्धित हैं।

चिकित्सा

डा० एस० दत्त

चिकित्सा और पशु चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष मेजर एस० दत्त (डी० एस-सी०) (एडिनबरा), एम० आर०

सी०, बी० एस० डी० टी० वी० एम०, एफ० एन० आई० जन्म १८६६ सिलहट—पूर्वी पाकिस्तान) ने राजशाही में बी० एस-सी० आनर्स (१६२०) करके एम० एस-सी० (कलकत्ता) में नाम लिखाया तथा सर प्रफुल्लचन्द्र राय के अनुरोध से सरकारी छात्रवृत्ति लेकर लन्दन गये जहाँ के रायल वैटनरी कालेज से १६२५ में एम० आर० सी० वी० एस० की उपाधि पाने वाले आप प्रथम भारतीय हैं। स्वदेश आकर बंगाल पशु विज्ञान कालेज में अध्यापन किया और स्वर्गीय कर्नल एकटन के साथ कलकत्ता स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन में भी कार्य किया।

१६३० में आप भारतीय पशु विज्ञान शोधशाला के शोध विभाग में प्रधान बने। १६३८ में आप फिर ब्रिटेन गये और एडिनबरा से डी० टी० वी० एम० और डी० एस-सी० की उपाधि ली। द्वितीय महायुद्ध में आप सेना में बुला लिये गये और १६४७ में वहाँ से लौटने पर आप भारतीय पशु विज्ञान शोधशाला के संचालक बनाये गये। आप रायल सोसाइटी (एडिन) और नेशनल साइन्स इंस्टीट्यूट के फेलो और ज्यूरिच के अन्ताराष्ट्रीय पशु विज्ञान कांग्रेस (१६३८) और इम्पीरियल वेटर्नरी कांग्रेस (१६३८), एडिनबरा के अन्ताराष्ट्रीय उत्पत्ति विज्ञान सम्मेलन (१६५०), नैरोबी के पशु रोग सम्मेलन (१६४८), पेरिस के खुर पका या पैर व मुंह की बीमारियों सम्बन्धी सम्मेलन आदि में भारत सरकार के प्रतिनिधि बन कर गये।

आपके पशु विज्ञान सम्बन्धी बहुत से मौलिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

पशु स्वास्थ्य विभाग

श्री केहर

पशु स्वास्थ्यकर तत्व विभाग के अध्यक्ष नारायण दास केहर (जन्म जुलाई १६०२), एम० एस-सी० रसायन, एफ० सी० कालेज पंजाब १६२५, एस सी० डी०, बायोकेमिस्ट्री जान हपकिंस विश्वविद्यालय १६३४, शरीर विज्ञान की उच्च शिक्षा अमरीका में, पंजाब विश्वविद्यालय में बी० एस-सी० अध्ययन के दौरान में कई पदकों के विजेता और अमरीका ब्रिटेन तथा यूरोप की अनेक शोध शालाओं के अनुभवी, सन् १६२६-२८ में रसायन इंस्टीट्यूट लाहौर के डिमांस्ट्रेटर व रिसर्च स्कालर रहे सन् ३०-३६ भारतीय रिजर्व अफसर सेना के शाही कमीशन में और सन् ३०-३४ तक अन्ताराष्ट्रीय स्वास्थ्य डिवीजन के राकफेलर फाउण्डेशन के फेलो रहे। सन् २६-३७ तक भारतीय मलेरिया इंस्टीट्यूट की बायोकेमिकल शोधशाला के अध्यक्ष रहे और सन् ३७ में भारतीय पशु शोध इंस्टीट्यूट में नियुक्त हुए। इस समय आप (१) शरीर विज्ञान, (२) रक्तशास्त्र, (३) बायोकेमिस्ट्री, (४) सामान्य विश्लेषण, (५) तृण, घास, झाड़ी की जाँच और (६) प्रशिक्षण—इन सब दिशाओं में काम करने वाली पशु स्वास्थ्यकर तत्व शोधशाला के अध्यक्ष हैं और मनुष्यों एवं खेती के पशुओं के शरीर एवं स्वास्थ्यकर तत्वों एवं भोजन संरक्षण, के विभिन्न पहलुओं पर १७० से अधिक लेख देशी-विदेशी पत्रिकाओं में लिख चुके हैं। आम की गुठली की गूदी, जामुन के बीज जैसे प्रायः २० वस्तुओं का—जिन्हें अब तक सिर्फ फेंक दिया जाता था—पशु भोजन में उपयोग निकाल कर आपने पशुओं की खाद्य सामाग्री में जुगाली करने वाले पशुओं के शरीर में मुख्य तथा कृत्रिम खनिजों की पाचन क्रिया, दूध उत्पादन घास और पत्तियों के पोषक तत्व आदि पर अनेक खोजों का श्रेय आपको है। आप आज कल अनेक देशी विदेशी शोधशालाओं शोधकार्यों तथा शोध प्रकाशनों से सम्बन्धित हैं।

मनोविज्ञान एवं शिक्षा शास्त्र

प्रो० जमुना प्रसाद

मनोविज्ञान और शिक्षा शास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो० जमुना प्रसाद प्रिंसिपल रांची कालेज, जन्म २७ सितम्बर १८९८, निवास स्थान गया, मैट्रिकुलेशन (१६१५) हरनचंद्र स्कूल गया से और पटना कालेज से अंगरेजी में बी० ए० आनर्स (१६१६), यूनिवर्सिटी कालेज कलकत्ता से दर्शन में एम० ए० (१६२१)। तदनन्तर आप बिहार सरकार की छात्रवृत्ति पाकर कैम्ब्रिज ४०० करोड़ मन की वृद्धि की है। मूली की पत्ती में बहुमूल्य पोषक तत्व की खोज और घी, वनस्पति तेल, वनस्पति, शरीर को प्रोटीन व धातु तत्वों की आवश्यकता,

गये और वहां आपने सर फ्रेडरिक बार्टलेट के मातहत प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का शोध कार्य किया। १६२६ में आप स्वदेशवापस आकर पटना विश्वविद्यालय में दर्शन एवं मनोविज्ञान के सहायक प्रोफेसर नियुक्त हुए पर आपका शोधकार्य जारी रहा और सन् १६२८ में आपने कैम्ब्रिज से शोध के आधार पर एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। सन् ३८ से ४३ तक आप पटना विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार रहे और इसके बाद सन् ४३ से ४६ के नवम्बर तक आप विश्वविद्यालय में दर्शन एवं मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष रहे। नवम्बर ४६ से आप रांची कालेज में प्रिंसिपल हैं। सन् ३६ में आपने हैदराबाद में दर्शन कांग्रेस की मनोविज्ञान शाखा के अध्यक्ष की हैसियत से 'वर्गचेतना हिन्दू-मुस्लिम समस्या का एक अध्ययन" विषय पर विश्लेषणात्मक निबंध पढ़ा था। इसके अतिरिक्त आपके 'होश, बदहवासी बेहोशी" (भारतीय मनोविज्ञान पत्रिका), "अफवाहका मनोविज्ञान" (ब्रिटिश मनोविज्ञान पत्रिका), "समान्य एवं असामान्य मनोविज्ञान की देन" (कलकत्ता में साइन्स कांग्रेस की रजतजयन्ती में पठित), निबन्ध तथा विश्वविद्यालय के रीडर की हैसियत से किये गये अनेक भाषण मनोविज्ञान के क्षेत्र में काफी महत्व के माने जाते हैं।

भौतिक विज्ञान विभाग

डा० एन० आर० तावदे

भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डा० एन० आर० तावदे, बी० ए० (आनर्स) एम० एस-सी (बम्बई), पी-एच० डी० (लन्दन) एफ० ए० एस० सी०, एफ० इंस्टि० पी,० एफ० एन० आई० जन्म बम्बई सन् १८६८, बम्बई, लन्दन व स्टाकहोम में शिक्षित। १३३५ में भारतीय विज्ञान परिषद के, १६३८ में इंस्टिट्यूट आफ फिजिक्स के और १६४२ में राष्ट्रीय विज्ञान परिषद के सदस्य बने। १६२२ में बम्बई शिक्षा विभाग में कार्य किया और १६४६ में इन्टिट्यूट आफ साइन्स में प्रोफेसर बने। आप फ्रान्स, जर्मनी, हालैंड, डेनमार्क और स्वीडेन के विश्वविद्यालयों की शोधशालाओं में गये हैं। बम्बई विश्वविद्यालय पत्रिका के भौतिक शास्त्र अंग के आप सम्पादक हैं।

आप बम्बई विश्वविद्यालय के फेलो, बम्बई व मंसूर विश्वविद्यालयों के अध्ययन बोर्डों के सदस्य, केन्द्रीय सरकारी विज्ञान एवं उद्योग शोध शाखा के सदस्य और कुछ विशिष्ट शोध योजनाओं के जाच कर्त्ता, बैंक स्पेक्ट्रास्कापी विषय के विशेषज्ञ और प्रायः ६६ मौलिक शोध ग्रन्थों के लेखक है।

भूतत्व और भूगोल विभाग

प्रो० निरंजन लाल शर्मा

भूतत्व और भूगोल विज्ञान के अध्यक्ष प्रो० निरंजन लाल शर्मा (जन्म १६०१, उत्तर प्रदेश) काशी विश्वविद्यालय के भूतत्व विज्ञान के प्रथम शिक्षार्थियों में से हैं। १६२७ में धनबाद के केन्द्रीय सरकारी खनिज पदार्थ एवं भूतत्व विषयक शिक्षालय में (जहाँ आज आप भूतत्व के प्रोफेसर के पद पर हैं) नियुक्त होने के पूर्व आपने काशी विश्वविद्यालयमें २॥ वर्ष स्वर्गीय प्रो० के० के० माथुर के मातहत अध्यापन कार्य किया। १६३५-३६ में आपने लीवरपूल में प्रो० एच० एच० रीड के मातहत विहार की एकेडमी स्थित माइका खोज सम्बन्धी शोध कार्य करके वही के विश्वविद्यालय से सन् ३८ में एम० एम०-सी० की उपाधि प्राप्त की।

आपने माउण्ट बर्नर, दंता, सोहावल, एकेडमी सम्बन्धी भूतत्व खोज के सिलसिले में भ्रमण कर कई मौलिक निबन्ध (कुछ दूसरे लेखकों के सहयोग से) लिखे हैं। आपके ग्रन्थों में "भारत वर्ष की खनिजात्मक संपत्ति" हिन्दी में और अंग्रेजी में, "खनिज विज्ञान, भूतत्व विषयक भ्रमण और आर्थिक भूविज्ञान सम्बन्धी प्राक्कलन" काफी लोकप्रिय हैं। झरिया की खानों में आपने एक नये खनिज की खोज की है जिसका नाम धनवाद कालेज के तत्कालीन खनिज विज्ञान प्रोफेसर एस० के० राय के नाम पर "रायाइट" रखा गया है।

आप भारतीय भूतत्व व खनिज विज्ञान सोसाइटी के सहायक मंत्री, इंजीनियर्स सोसाइटी के उपाध्यक्ष और आर्थिक उत्पादन एवं औद्योगिक साधन शब्दकोष (प्रकाशक विज्ञान एवं उद्योग शोध परिषद्) के संपादक, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा विज्ञान का पारिभाषिक हिन्दी शब्दकोष बनाने के लिये नियुक्त विशेषज्ञ समिति की भूतत्व शाखा के सदस्य और इन्टरनेशनल एकेडमी आफ इंडियन कल्चर नागपुर द्वारा प्रकाशित विशाल अंगरेजी हिन्दी शब्दकोष के सम्पादक मंडल के सदस्य हैं।

सभापति तथा राज्यपाल के भाषण

भारतीय विज्ञान काँग्रेस के ४० वें अधिवेशन के अध्यक्ष श्री देवेन्द्र मोहन के भाषण का सारांश।

"हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि क्या आर्थिक कठिनाइयों की मजबूरियों, विदेशों से होड़ की आशंकाओं और विदेशी हस्तक्षेप की संभावनाओं के कारण पश्चिमी विज्ञान एवं राजनीति के प्रभाव में आकर हम अपनी सामाजिक रीतियों परंपराओं को भी बदलकर नये साँचे में ढाल सकेंगे? एक हद तक इस प्रश्न का उत्तर मिल गया है और वर्तमान वैज्ञानिक विकास ने यह चेतना ला दी है कि अब कलयुग है या भाग्य खोटा है यह समझना भूल है। हम अपना भविष्य बना सकते हैं।"

आपने अन्ताराष्ट्रीय विज्ञान की अद्यावधि प्रगतिका इतिहास और यूनान-रोम के युग से, हिलेनिक युग, प्लेटो, अरस्तू कापर्निकस, विसेलियस, गैलीलियो, टालमी, गेलेन, आर्कमिडीज तक का क्रमबद्ध वैज्ञानिक शोध-कार्य बताते हुए कहा—"आज एशिया बहुत बड़े संक्रमण काल में है। चीन और भारत गत ३ हजार वर्षों से परस्पर संपर्क के बावजूद दो विशिष्ट संस्कृतियों के प्रतिनिधि रहे हैं, और आज वे दोनों दो भिन्न मार्गों से तेजी से विकास के मार्ग पर बढ़ रहे हैं। हर सभ्यता की एक निजी संस्कृति होती है और वैज्ञानिक विकास उसका एक अनिवार्य पहलू है। विज्ञान के नये साधनों से धर्म, राजनीति, सभ्यता और संस्कृति में आमूलपरिवर्त्तन अब तक होता रहा है। समाज के विकासक्रम और जन्तु तथा वनस्पति के विकास क्रम में यह एक मौलिक अंतर है कि जंतुओं और वनस्पतियों में जो संपर्क और विकास युगों में हो पाता है वह मनुष्य समाज की दूरंदेशी, योजना और सहयोग के बल पर बहुत शीघ्र और बहुत तेजी से होता है। आपने उत्तर प्रदेश की विज्ञान साधना और विभिन्न विकास योजनाओं तथा लखनऊ की शिष्टता और सदाशयता की सराहना की।

भारत का जिक्र करते हुए आपने कहा कि दर्शन, गणित, नक्षत्रविद्या और उपचार आदि के महानशोधों का युग ईसापूर्व सातवीं से पाँचवीं शताब्दी तक चला। इसके बाद प्रायः ६ शताब्दियों तक रसायन, इंजीनियरिंग आदि का विकास तो हुआ पर अप्रगति और रूढ़िआस्था भी आने लगी और मुसलमान आक्रमण के कारण यह दुर्गुण और बढ़ गये तथा आलोचनात्मक वस्तुवाद पर लोगों की आस्था न रही। यहीं से यह दर्शन आरंभ हुआ कि संतों का स्वर्णयुग बीत गया—अब कलियुग आ गया है जिसमें न विकास हो सकता है न सुख। हम सिर्फ पुराने ग्रंथों के टीकाकार होकर रह गये, कलाकौशल पीछे रह गया। लाश छूना अपवित्रता हो गयी तो चीड़ फाड़ और चिकित्सा शास्त्र का विकास कैसे होता, विदेशी यात्रा रोक दी गयी और यूनानियों तथा अरबों से हिंदू विद्वानों का कतई संपर्क न रहा। अकबर के शासन काल के कुछ वर्षों को छोड़कर यह अप्रगति ७ शताब्दियों तक चली और १८ वीं शताब्दी में विदेशी कंपनियों के आने पर नये संपर्क और नये संघर्ष उठने के बाद यह स्थिति बदली। विदेशी कंपनियों के अभियान और अंगरेजी शासन का भारत पर वही प्रभाव पड़ा जो रोमन साम्राज्य का पूरे यूरोप पर पड़ा था। रोमन साम्राज्य ने यूरोप को नयी राजनीति, नयाधर्म, नये शक्ति साधन, (पशुबल, हवा, जल आदि की शक्ति) और पूरे यूरोप के लिए एक लैटिन भाषा और रोमन वर्णमाला भी दी। ब्रिटिश शासन ने भारत को शासन व्यवस्था, न्यायशैली, राजनीति रेल, तार, नहर, कारखाने, चाय काफी और तंबाकू के बगीचे, इसके अतिरिक्त अपना जीवन दर्शन और विचार विनिमय के लिए एक भाषा दी। जिस तरह १७ वीं शताब्दी तक किस्कार्टिस, हाइगेन, न्यूटन, लाइबनीज सभी ने अपने शोधकार्य लैटिन में लिखे उसी प्रकार भारत में हर किस्म के अधिकार पूर्ण विचार अंग्रेजी में व्यक्त किये गये।

आपने जोर देकर कहा कि "इस देश के वैज्ञानिक

आगे बढ़े हुए वैज्ञानिक अध्यापन और वैज्ञानिक शोधकार्यों के परिणामों को व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी को हटा कर भारतीय भाषाओं में से एक को रख देने के सभी अधकचरे प्रयत्नों को बड़े सशंक नेत्रों से देखते हैं और हमारी मांग है कि हमारे सामने यह नयी अड़चन न आनी चाहिए कि अपने शोधकार्यों को ऐसी भाषा में व्यक्त करने की जीतोड़ कोशिश हमसे करायी जाय जिसमें उन विचारों को व्यक्त करने की पूरी-पूरी क्षमता भी नहीं है। आपने कहा कि वैज्ञानिक ग्रंथों के अनुवाद का काम अधकचरे लोग नहीं कर सकते या तो विज्ञान के पारंगत लोग भाषाज्ञान प्राप्त करें या भाषाशास्त्री विज्ञान का अध्ययन करें तभी यह कार्य सफल होगा।

चीनका जिक्र करते हुए आपने कहा कि भारत जिस लोकतंत्र के सिद्धांत पर आधारित है उस में सब को मतैक्य स्थापित कर के आगे बढ़ने की नीति में विश्वास किया जाता है। एशिया का दूसरा देश चीन है जिसमें परिवर्तन और तेजी से हो रहा है इसलिए कि वह जिस अधिनायकवादी लोकतंत्र को मानकर उसी पश्चिम की रीतिनीति के सहारे आगे बढ़ रहा है उसकी तह में यह विश्वास है कि मानव समाज को एक दम निर्दोष सर्वाङ्ग सुन्दर बनाया जा सकता है बशर्ते कि उसे बिगाड़ने वाली शक्तियों को बलपूर्वक दबा दिया जाय। वह देश तेजी से आगे बढ़ रहा है और अगर बीच में कोई महायुद्ध न आया तो दो शताब्दि बाद के इतिहास को यह तय करने का मौका मिलेगा कि कौन सा आकार अधिक पुष्ट और सही था।

राज्यपाल का भाषण

अखिल-भारतीय विज्ञान काँग्रेस के ४० वें अधिवेशन में भाषण करते हुए उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री के० एम० मुंशी ने प्रदेश की ओर से प्रतिनिधियों का स्वागत किया और कहा कि स्वाधीन भारत की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक तथा कृषि संबंधी विकास के लिए वैज्ञानिक शोधकार्यों का महत्व बहुत बढ़ गया है। भारत का भविष्य वैज्ञानिक शोध कार्यों पर ही निर्भर करता है। पिछले कुछ वर्षों में देश में वैज्ञानिक शोध कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है और देश भर में अनेक राष्ट्रीय शोधशालायें खुली हैं। इनमें से दो उत्तर प्रदेश में हैं। केन्द्रीय औषधि अनुसंधानशाला तो लखनऊ में ही स्थित है।

आपने आगे कहा, मैं एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। यह है देश का कृषि उत्पादन बढ़ाना और मिट्टी का कटाव रोकना। यह दोनों ही हमारे जीवन से संबंध रखनेवाली समस्यायें हैं।

हमारे यहाँ जनसंख्या बहुत अधिक है और यह १२॥ प्रति हजार के हिसाब से बढ़ रही है। हमें न सिर्फ बढ़ती हुई जनसंख्या की बल्कि बढ़ती हुई पशु-संख्या के भी भोजन की व्यवस्था करनी है। अतः विज्ञान को मिट्टी, पौधों और पशुओं की समस्या की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। नये प्रकार के अन्न और पौधे उगाने तथा भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के उपाय ढूंढ़ने का प्रयत्न होना चाहिए।

श्री मुंशी ने आगे कहा, भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के साथ ही मिट्टी, पानी, पौधों और पशुओं की क्षमता बढ़ाने के आधुनिक उपायों पर शोध होना चाहिए। सूर्य-रश्मियों का भी खाद्य समस्या हल करने में उप उपयोग हो सकता है।

अंत में आपने कहा, मैं नम्रता पूर्वक इस कांग्रेस का ध्यान भौतिक विज्ञान की क्षमता और सीमा की ओर दिलाना चाहता हूँ। पिछली दो शताब्दियों में विज्ञान ने बहुत प्रगति की है और प्रकृति पर विजय पायी है। किन्तु साथ ही विज्ञान की यह विजय मनुष्यों के हाथ में पड़कर मानसिक और नैतिक दृष्टि से खतरनाक साबित हो रही है। विज्ञान ने हमें शक्ति दी है लेकिन हमारा दिमाग, जिससे इसका उपयोग करना है, स्थिर बना हुआ है। फलतः विज्ञान की शक्ति और क्षमता सीमित रह जाती है और जीवन की उदात्त भावनाओं का व्यापक दृष्टिकोण उसमें नहीं आ पाता।

आपने कहा, विज्ञान इस तरह एकांगी नहीं होना चाहिए। वैज्ञानिकों को यह न भूलना चाहिए कि ज्ञान का उद्देश्य है अभाव और भय से मानवता को मुक्त करना और सत्य, शिव तथा सुन्दर की भावना पैदा करना।

प्रधान सभापति का वैज्ञानिक भाषण

पचास वर्ष पूर्व आचार्य जगदीश चंद्र बोस ने १६२० ई० में एक पुस्तिका "जीवधारी तथा निर्जीवी में संवेदन-शीलता" शीर्षक पर प्रकाशित कराई थी। उसके निष्कर्ष सर्वेश्वरवादी रूप के होने के कारण उस पर हमारे देश के शिक्षित वर्ग का अत्यधिक ध्यान आकर्षित हुआ। जीवन का स्वरूप उत्तेजना के कारण वैद्युतिक प्रत्युत्तर मानकर आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने यह व्यक्त किया कि समान स्थितियों में विद्युत प्रभाव जीवधारी तथा निर्जीवी दोनों में ही उत्तेजना द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। इन खोजों का प्रारंभ वैद्युतिक धाराओं से किया गया। आचार्य जगदीश चन्द्र के उपकरण का विद्युत धारा ग्राहक यंत्र कोहियरर (संकोचक) नाम से ज्ञात था। वैद्युतिक विकिरण के प्रहार से उसकी निरोधशक्ति विलीन रूप से क्षीण हो जाती थी। इसे अनुभव करने के लिए कोहियरर (संकोचक) को विद्युत् मापक यंत्र से विचलित होने का दृश्य देखा जा सकता था।

सन १८६६ ई० में भी आचार्य बोस जीव-वैज्ञानिक भौतिक शास्त्री थे। उन्होने कोहियरर (संकोचक) को विद्युत् क्षेत्र, सम्बन्ध-स्थापक सूत्रों को चाक्षुष स्नायु तथा विद्युत् मापक को मस्तिष्क नाम दिया। यह जीववैज्ञानिक उपमा उन्हें उस समय ध्यान देने के लिए विवश कर सकी जब उन्होंने देखा कि यह कोहियरर (संकोचक) यंत्र श्रम से क्लान्त हो जाता है तथा तथा यथेष्ट विश्राम देने पर पुनः शक्ति प्राप्त कर लेता है, उन्होंने नेत्रों के अनेक नमूने बनाए जिनमें निम्न लिखित उपकरण नेत्र के बहुत कुछ अनुरूप था। एक खोखले रजत प्याले में भीतरी परत ब्रोमाइन की भाप से प्रभावित की गई होती, तथा वह स्रवित (डिस्टिल्ड वाटर) जल से भरा था। यह नेत्र एक विद्युत् मापक यंत्र क विचलन को प्रकाशमान करने के लिए निर्मित था। इन प्रयोगों से उन्होंने दो निष्कर्ष निकाले। पहला यह कि कोई ऐसी विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती जो भौतिक प्रक्रियाओं से शरीरवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को पृथक करती, शरीरवैज्ञानिक प्रक्रिया भौतिक रसायनिक प्रक्रिया की एक अभिव्यक्ति ही हैं। दूसरे यह कि निर्जीवियों में जीवन के प्रत्युत्तरदायक विधान झलकते पाए जा सकने हैं तथा कहीं अकस्मात् विच्छेद नहीं है प्रत्युत नियम की अविरलता ही है। यह प्रथम प्रयोग कहा जा सकता है जो जीवधारी तथा निर्जीवी के विधान में उत्तेजना के प्रत्युत्तर को एक उभयपक्षी शरीर वैज्ञानिक नियम रूप में आभासित करता था। मैं यहाँ आचार्य बोस द्वारा वनस्पति तथा जन्तुओं के जीवन प्रक्रियाओं की एकता प्रदर्शित करने वाले अन्य प्रयोगों की चर्चा नहीं करूंगा।

विज्ञान का ध्येय हमारे इन्द्रियजन्य अनुभव से प्राप्त प्रमाणों को न्यूनतम कल्पनाओं का उपयोग करते हों तार्किक रूप में व्याख्या करना है। एक समस्या यह है कि यह ज्ञात किया जाय कि भौतिक तथा रसायन विज्ञान के ज्ञात नियमों की दृष्टि से जीवनधारी के व्यवहार की व्याख्या कहाँ तक की जा सकना सम्भव है तथा यह भी ज्ञात करना है कि अतिरिक्त कल्पनाएँ कहाँ पर अपेक्षित हो सकती हैं तथा उनका प्रकार क्या है।

गमनागमन तथा नियंत्रण के इस युग में यह ज्ञात हुआ कि अनेक यान्त्रिक संस्थानों के व्यवहार की व्याख्या शरीरवैज्ञानिक धारणाओं की दृष्टि से की जा सकती है। जगदीश चन्द्र बोस इस दिशा में अध्ययन के अग्रणी भी थे। उन्होंने ज्ञात किया कि उनके द्वारा निर्मित अनेक निर्जीवी ढाँचों के व्यवहार को कतिपय शरीर वैज्ञानिक धारणाओं जैसे उत्तेजना, प्रत्युत्तर क्लान्ति आदि की दृष्टि से विवेचित किया जा सकता है।

पचास वर्ष पश्चात् संग्राहक यन्त्र की भाँति शरीर-वैज्ञानिक धारणा प्रकट करने वाले दूसरे उपकरण ज्ञात हुए जो प्रेषक यन्त्र को दिए गए आदेशों तथा संदेशों को

ग्रहण करने के लिए केन्द्रीय सन्देश-विनिमय में माध्यम तुल्य हों। इनके द्वारा रैडर या विद्युताणविक गणक यन्त्र सरीखे यन्त्रों के कार्यों की व्याख्या की जा सकती है। इन में से किसी में स्मरण शक्ति की विशेषता है, तथा किसी में निर्णायक विवेक है। जीवधारियों में निहित गमनागमन, तथा नियन्त्रण-क्षमता की शरीरवैज्ञानिक प्रक्रिया निर्जीवियों में भी पुनरुत्पत्ति की घटना जीवधारियों के व्यवहार की यान्त्रिक व्याख्या करने में एक विशेष उन्नति है,

इस प्रकार शरीर विज्ञान की दृष्टि से मानव तथा यन्त्र दोनों को ही एक शक्ति संस्थान कहा जा सकता है जिस की क्रियाओं को भौतिक तथा रसायन के नियमों की दृष्टि से वर्णित किया जा सकता है। दूसरी ओर उच्चवर्गीय स्तनपायियों, विशेषतया मनुष्य में केन्द्रीय स्नायु संस्थान द्वारा नियन्त्रित क्रियाएँ संवेदना, इच्छाशक्ति तथा अनुभूति आदि के मानसिक संलग्न क्रिया कलापों की सहगामी होती हैं। ये मानसिक प्रक्रियाएँ एक कालक्रम से घटित होती हैं किन्तु एक स्थानीय नहीं होतीं अतएव वे उस श्रृंखला का अवयव नहीं हो सकतीं जो सभी मानसिक क्रियाओं की सहगामी रासायनिक तथा भौतिक प्रक्रियाएं होती हैं। एक आलोचक दल के अनुसार मानसिक प्रक्रिया भौतिक क्रियाशीलता की एक गौण उत्पत्ति की घटना है यह असंतोषजनक व्याख्या है क्यों कि मनुष्य की सभी सृजन या नवीनता उत्पादक क्रियाएं मानसिक वृत्तियों पर ही आधारित हैं जो कलाकार, गणितज्ञ, वैज्ञानिक, दार्शनिक आदि के कार्यों में अभिव्यक्त होती हैं।

बोली की कला तथा मानवअनुभव को केवल अपनी ही पीढ़ी के मानवों के मध्य ही नहीं, बल्कि क्रमागत पीढ़ियों के मानवों के मध्य भी वहन करने के साधनों के विकास द्वारा उन्नति की एक नई कला ज्ञात हो सकी है। मानव समाज में अविच्छिन्नता तथा परिवर्तन मुख्यतया परम्परा या उसके परिवर्तन के लिए उपयुक्त साधनों द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं वंशपरम्परा, मानव समाज के जनन विज्ञान को सामाजिक रूप से वहनसाध्य भावों, आवेगों, या वृत्तियों के मानसिक या मनोवैज्ञानिक आधार पर निर्भर पाया जाता है। यह जीव-जनन विज्ञान की विधियों से बहुत अधिक उन्नत रूप का प्रतीक है। मानव समाज के जनन विज्ञान में चेतना होती है अतएव वह दूरदर्शिता तथा योजना का उपयोग कर सकता है। सामाजिक विकास की विधि उद्देश्य पूर्ण हो सकती है, इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत अनुभवों के संचयन की भी सम्भावना होती है। अतएव यह आवश्यक रूप से एकत्रीभूत होती हैं तथा रेखागणितीय अनुपात में परिवर्तन घटित कर सकने में समर्थ हो सकती है। इस प्रकार सभ्यता की उन्नति सामाजिक विकास का एक पहलू है। जीवधारी के विकास को किसी सोपान पर लक्षित मस्तिष्क का उदय संसार के उपादन के प्रकार के सम्बन्ध में कुछ और भी कल्पना करने के लिए विवश करता है कि यह केवल एक कणमय ही नहीं होता प्रत्युत मस्तिष्कमय भी होता है। यह तत्त्व जीवधारी के विकास की किसी अवस्था में प्रत्यक्ष मस्तिष्क रूप में उद्भूत होता है।

सामाजिक जनन विज्ञान में अविच्छिन्नता एवं परिवर्तन प्रस्तुत करने में मस्तिष्क के कार्य को एक अवयव स्वीकार करना इस प्रश्न को भी खड़ा कर देता है कि मनोविकार, जिसे हमें प्रत्येक जीवधारी में विद्यमान होना आवश्यक ही मान लेना पड़ेगा, हमारे द्वारा एक प्रत्यक्ष मस्तिष्क की भाँति परिलक्षित होने के पूर्व भी जनन-सूत्र विन्दु (पित्र्यैक या जिनी) के परिवर्तन पर कोई अनुरूप प्रभाव डालता है जो अविच्छिन्नता तथा परिवर्तन प्रस्तुत करने के लिए जीववैज्ञानिक उपकरण है। कीटाणु कोषों के केन्द्रकगर्भी सूत्र (क्रोमोसोम) में जो पित्र्यैक या जनन-विन्दु होते हैं वे वंशानुगत रूप से जीव की पैत्रिक शक्तियों को वहन करने वाले माने जाते हैं। यदाकदा जनन-विन्दु (पित्र्यैक या जिनी) परिवर्तन के वशीभूत होता है जिससे नवीन पीढ़ी का वंश माता पिता से कुछ बातों में विभिन्न होता है। ऐसे छोटे परिवतनों का संचयित परिणाम यह हो सकता है कि यदि निदिष्ट वातावरण में जीवित रह सकने के लिये रूपान्तर अधिक परिष्कृत हों तो धीरे धीरे जीवन धारण किए रह सकने की विभिन्न क्षमता के कारण समरूप परिष्कृत जीव का स्थान ग्रहण कर सकते हैं। अतः प्राकृतिक निर्वाचन का सिद्धान्त, ऐसे संचयित रूपान्तर से प्रभावशील हो कर वह उपकरण बनाता है जिसे जीव अपने वातावरण के अनुकूल रूप परिष्कार कर सके तथा विकास हो सके। नूतन डारविनवाद के अनु-

[शेष पृ० १७५ पर]

मवेशियों की उचित रक्षा

भारतीय विज्ञान सम्मेलन के चिकित्सा तथा पशुरोग विज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद से डा० एस० दत्त ने निम्न भाषण दिया :

"मवेशी जितने दुर्बल होंगे उपज भी उतनी न्यून होगी तथा देश उतना ही अशक्त होगा।" उपर्युक्त लोकोक्ति का उद्धरण देकर डा० दत्त ने कहा:—

मानव तथा पशु चिकित्सा विज्ञान के गंभीर संपर्क को व्यावहारिक रूप में इंगलैंड में राजकीय चिकित्सा परिषद तथा ब्रिटिश चिकित्सक समिति रूप में चिकित्सा शोध संस्थाओं में देखा जा सकता है जहाँ तुलनात्मक चिकित्सा का विषय विकसित करने में पशुरोगवेत्ता क्रियात्मक भाग लेते हैं। कैम्ब्रिज तथा लिवरपुल विश्वविद्यालयों में कुछ अवस्था तक चिकित्सा तथा पशु रोग विज्ञान के छात्रों की संयुक्त कक्षाएँ ही बैठती हैं, उधर लंदन विश्वविद्यालय में शरीर विज्ञान का आचार्य राजकीय पशु चिकित्सा महाविश्वविद्यालय में भी शरीर विज्ञान विभाग का अध्यक्ष होता है। लंदन स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन (लंदन का उष्ण देशीय चिकित्सा विद्यालय) तथा मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में कीटाणु विज्ञान का प्रमाण पत्र चिकित्सा तथा पशु रोग विज्ञान दोनों के ही शोध-छात्रों को दिया करता है। पास्च्युर इंस्टिट्यूट, पेरिस में चिकित्सा तथा पशु रोग विज्ञान के अनुसंधान साथ साथ ही किए जाते हैं।

अपने देश की ओर ध्यान देने पर हम राजकीय कीटाणविक अनुसंधानशाला के डा० ए० लिगर्ड तथा सर लियोनोर्ड रोजर्स को मुक्तेश्वर कमायूं तथा इज्जतनगर की भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधानशाला के प्रथम संचालकों रूप में चिकित्सा वैज्ञानिक नाम से पुकारे जाते पाते हैं। किन्तु अन्य चिकित्सकों ने भी अपना मार्ग ग्रहण किए रह कर ही पशु चिकित्सा सम्बन्धी महत्वपूर्ण खोजें की हैं। यह उल्लेख करना मनोरंजक हो सकता है कि १८९६ ई० में भारत सरकार के गृह विभाग द्वारा चिकित्सा तथा पशु चिकित्सा विभाग के अध्यक्षों की एक सम्मिलित समिति बनी थी और इस समिति ने छः वर्षों पूर्व मुक्तेश्वर में स्थापित पशु रोग कीटाणविक अनुसंधानशाला के साथ ही एक केन्द्रीय चिकित्सा अनुसंधानशाला स्थापना करने का परामर्श दिया।

इस प्रकार भारत में जहाँ इन दोनों उपादेय विज्ञानों का सम्बन्ध जहाँ स्वीकार किया जा चुका था, वहाँ यह आश्चर्य की ही बात है कि अन्य देशों की भाँति ये दोनों विभाग पारस्परिक लाभ की दृष्टि से अधिक निकट संपर्क में काम नहीं करते रहे हैं। इंडियन साइंस काँग्रेस तथा नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंस ने निस्संदेह इन दोनों बन्धुवत विज्ञानों के निकट करने का आयोजन किया है किन्तु यहाँ भी लगातार रूप से लक्ष्य की पूर्ति का ध्यान नहीं रक्खा गया है। किन्तु प्रत्यक्ष निर्देश मिल रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय परिषद की विशेष समितियों ने इन दोनों एकमार्गी समस्याओं पर सहयोगात्मक प्रयत्न विकसित करने का मार्गप्रदर्शन प्रारंभ कर दिया है। उदाहरणार्थ डब्ल्यू० एच० ओ० तथा एफ० ए० ओ० की संयुक्त समिति ने मुक्तेश्वर में ब्रुसेलोसिस केन्द्र खोलने का आदेश दिया है जहाँ इस सम्बन्ध में शोध कार्य होगा। इसी प्रकार पशुओं तथा मनुष्यों में पागल जंतुओं के काटने के स्नायविक विकार के नियन्त्रण की योजना इज्जत नगर में संचालित हो रही है। इन नई योजनाओं पर भारत सरकार विचार कर रही है। मानव तथा पशु रोगों की चिकित्सा सम्बन्धी शोधों को लाभ पहुँचाने के संयुक्त प्रयत्न अवश्य बढ़ेंगे तथा इस में सन्देह नहीं कि चिकित्सा-अनुसन्धान की भारतीय परिषद इस कार्य को सम्भव बनाएगी। जहाँ चिकित्सा विज्ञान का मुख्य ध्येय मनुष्य के रोगों का अवरोध तथा निवारण है तथा जनता की स्वास्थ्य वृद्धि करना है, वहाँ पशु रोग चिकित्सा विज्ञान का ध्येय भी पशु रोगों को दूर

कर तथा जान्तव स्रोतों से प्राप्त दूध घी, मक्खन आदि तथा अन्य खाद्य द्रव्य जनता के सुख स्वास्थ्य के लिए प्रस्तुत कर समाज को सम्पन्न बनाना है।

भारत में पशुपालन एक उपेक्षित कला तथा विज्ञान रहा है। इसको केवल कृषि की आवश्यकता भर के लिए ही गौण स्थान दिया जाता रहा है। उचित महत्व की दृष्टि से स्वतंत्र विषय की भाँति इस की उन्नति करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया। अतएव पशुपालन धंधों को यह अवसर ही नहीं दिया गया कि यह भारत की आर्थिक दशा स्थिर करने में योग दान करे तथा संघर्षमय जीवन व्यतीत करने वाले बहुसंख्यक गरीब किसानों की सुख समृद्धि तथा जीवन में अन्तर उपस्थित कर सके। सर ए० बी० हिल ने ठीक ही कहा है कि पशुपालन की उपेक्षा हमारी कृषि अर्थ व्यवस्था तथा 'अन्न अधिक उपजाओ' आंदोलन की सब से दुर्बल कड़ी है। पशुओं और विशेष कर मवेशियों द्वारा लोगों के जीवन तथा समृद्धि में प्रमुख साधन बनने के तथ्य का अनुभव नहीं किया गया है। जब तक पूरे आँकड़ों का व्यौरा प्रस्तुत न किया जाय तब तक जनता की पूर्ण अभिरुचि जाग्रत करने तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान की योजना में पशु धन की उन्नति पर उचित बल दे सकने में सफलता नहीं मिल सकती।

भारत में पंद्रह करोड़ से भी अधिक मवेशी है जो कुल संसार के मवेशियों के चतुर्थांश से अधिक हैं। इस के अतिरिक्त ४ करोड़ ३० लाख भैंस तथा भैंसे, १५ लाख घोड़े तथा टट्टू, ८ करोड़ ७० लाख भेड़ बकरियाँ, ४० लाख सूअर, ७ करोड़ ३७ लाख सभी प्रकार के मुर्गे मुर्गी, १० लाख खच्चर तथा ५ लाख ऊँट हैं। कृषिजन्य उपज के वहन करने में अनुमानतः तीन अरब रुपए का कार्य मवेशी करते हैं। कृषिजन्य उपज के मूल्य पर प्रति रुपया एक आना ढुलाई मानकर यह हिसाब लगाया गया है इसी प्रकार खेत जोतने बोने के श्रम का मूल्य दस अरब रुपय है। यह इस हिसाब के अनुसार है कि एक जोड़ी बैल १० एकड़ खेत जोत सकता है और उन के पालने में ४५०) वार्षिक व्यय बैठता है। इस तरह एक एकड़ खेत जोतने का व्यय ४५) हुआ अतएव भारत संघ में कुल २२ करोड़ एकड़ खेतों की जुताई बुआई का व्यय १० अरब रुपया हुआ। यदि बैलों और घोड़ों द्वारा यातायात कार्य का २ अरब मूल्य जोड़ लिया जाय तो पशुओं के श्रम का कुल मूल्य १५ अरब रुपया हुआ।

भारत में प्रति वर्ष ४८ करोड़ मन दूध होता है, जिस में से ३६% तरल दूध की भाँति प्रयुक्त होता है तथा शेष को संचित करने तथा वहन करने की कठिनाई होती है। इस दूध तथा दूध से उत्पादित वस्तुओं का मूल्य कम से कम ७ अरब ५० करोड़ रुपया कूता जा सकता है। भारत में माँस की कुल खपत २१६ लाख मन है उसका मूल्य एक अरब ३० करोड़ रुपया होता है। अंडों की उत्पत्ति २ अरब की संख्या में होती है अतएव उससे भी ४० करोड़ रुपए वार्षिक की आय होती है। कमाए तथा बिना कमाए चमड़े का ५ करोड़ ८३ लाख की संख्या में उत्पादन होता है जिनका मूल्य ४० करोड़ रुपया हुआ। ऊन की वार्षिक उत्पत्ति भी ६ करोड़ रुपये की होती है। हमारे मवेशी प्रति वर्ष एक अरब टन गोबर देते हैं जिस में ६७% ईंधन के काम आता है तथा शेष का उपयोग प्रायः खाद की भाँति होता है। प्रति टन १०) का मूल्य लगाया जाय तो इस अधार से पूर्ण आर्थिक आय १० अरब रुपए की हुई। इन सभी संख्याओं को जोड़ा जाय तो पशुओं से सम्पूर्ण वार्षिक आय लगभग ३५ अरब रुपए हुई। हमारे मस्तिष्क में जो औद्योगिक तथा कृषिजन्य उत्पादन चक्कर लगाते रहते है उनकी आय से इस आय की तुलना की जा सकती है। अयस (लोहा) तथा वज्रायस (फौलाद) उद्योग की १६४६-५० में वार्षिक आय ५२ करोड़ थी। उसी वर्ष सूती तथा वस्त्र व्यवसाय की वार्षिक आय १ अरब ५० करोड़ रुपए की। पटसन की आय ७८ करोड़ २० लाख, चीनी उद्योग की ५४ करोड़ ५० लाख वार्षिक थी।

कोयले का वार्षिक उत्पादन ३० लाख टन है जिसका मूल्य ५ अरब हुए, हमारा लक्ष्य इन प्रमुख उद्योगों का महत्व न्यून करना नहीं हैं, प्रत्युत राष्ट्र का आर्थिक जीवन दृढ़ करने के लिए देश के शीघ्रतया औद्योगीकरण की नितान्त आवश्यकता पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए परन्तु यहाँ मैं जिस बात पर बल दे रहा हूँ वह यह है कि पशु या उनके उत्पादित पदार्थ विशेषतया हमारे देश की मौलिक तथा अत्यंत महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सम्पत्ति का निर्माण करते

हैं और यह संसार के पशुओं तथा उनसे उत्पन्न पदार्थों के सम्पूर्ण साधनों का एक बड़ा भाग प्रकट करता है जिस का विकास करना मानवता की वृद्धि के लिए अत्यावश्यक है।

अतएव यह उपयुक्त समय है कि हमारा ध्यान पशु और विशेषतया मवेशियों की उन्नति की ओर जाय। आज के अधोपतित मवेशियों से भी हमें प्रति वर्ष ३५ अरब रुपये की वार्षिक आय हो रही है। यह भारी संख्या प्रश्न के एक पक्ष को ही प्रकट करती है। प्रति मवेशी आय का हिसाब १२०) वार्षिक आता है। उचित चारा तथा व्यवस्था से यह आय १५०) वार्षिक की जा सकती है क्यों कि यह प्रत्यक्ष देखा गया है कि पुष्ट भोजन की व्यवस्था से दूध देने वाले जानवर ५०% अधिक दूध देने में समर्थ हो सकते हैं तथा श्रमिक मवेशी २०% अधिक श्रम कर दिखाते हैं। भारत में पशु पालन कोई लाभकर व्यवसाय नहीं जान पड़ता किन्तु इस बात पर फिर बल दिया जा सकता है कि यह आर्थिक व्यौरा एक अविकसित उद्योग का है जहाँ का कच्चा पदार्थ केवल पशु ही हैं जो शताब्दियों की उपेक्षा से अधःपतित अवस्था में हो गए हैं।

कुछ अर्थशास्त्री यह तर्क रखते हैं कि भारत में ढोरों की आवश्यकता भारी संख्या में है तथा सुलभ भूमि इनका भारी बोझा सँभालने में असमर्थ है। यदि कुल दूध की उत्पादित मात्रा केवल तरल रूप में ही प्रयुक्त की जाय तो कुल जन संख्या के प्रति व्यक्ति को केवल ५ औंस दी जा सकती है। आधुनिक भोजन विज्ञान की दृष्टि से प्रति मनुष्य की दैनिक आवश्यकता, कम से कम १० औंस, अन्यथा १६ औंस दूध की है अतएव जब तक हम अपना दुग्ध उत्पादन बढ़ा कर इस सीमा तक न पहुँचा लें तब तक उसे आवश्यकता से अधिक कहना अनुचित है। दूसरे उत्कृष्टतर चारा देने से ही पशुओं की दूध देने की शक्ति बढ़ाई जा सकती है। कुल कृषि की भूमि आज भारत में २३ करोड़ एकड़ है। यह बढ़ा कर ३० करोड़ एकड़ की जा सकती है जिसके लिए कुछ बंजर पड़ी खेती योग्य भूमि में खेती प्रारम्भ करनी होगी, इसी को बढ़ा कर ४० करोड़ एकड़ कर देने से मनुष्य तथा पशु दोनों की आवश्यकता पूर्ति के लिए उपज हो सकती है। इतनी भूमि में खेती के लिए ६ करोड़ कृषि योग्य पशु की आवश्यकता होगी। भारत में आज केवल ६ करोड़ बैल हैं अतएव यह संख्या दुग्धदाता या श्रमिक पशुओं के वर्ग में अत्यधिक नहीं कही जा सकती। पशु रोगों के कारण मवेशियों की संख्या बहुत कम होते जाने की आशंका है जिस में मवेशियों का दाम बढ़ता ही जा रहा है। कृषि प्रसार के वेग को संचालित रखने के लिए, जो हमारे देश की उपज की गंभीर आवश्यकता है, यह आवश्यक है कि हमारे पशुओं की उत्कृष्ट व्यवस्था हो। पशुओं का स्वास्थ्य उत्तम चारा तथा रोगों के अवरोध पर ही निर्भर रहता है।

संक्रामकरोगों से मृतपशुओंकी संख्या प्रतिवर्ष एकलाख है, परन्तु इन रोगों से आक्रान्त हुए पशुओं की संख्या ५ लाख तक पहुँचती है जिनमें से ३½ लाख केवल मुख और पैर रोग से ग्रसित होते हैं। बहुसंख्यक रोगग्रस्त पशुओं की सूचना अधिकारियों तक न पहुँचने से हम यह अनुमान कर सकते हैं कि प्रति वर्ष संक्रामक रोगों से मृत पशुओं की संख्या २ लाख तथा रोगग्रस्त पशुओं की संख्या २० लाख होगी। यदि प्रति पशु का मूल्य १५०) मान लिया जाय तो केवल मृत पशुओं से ३ करोड़ रुपए की हानि प्रति वर्ष होती है। यदि पशुओं के अभाव से होने वाली अन्न उत्पादन तथा दुग्ध उत्पादन की व्यक्तिगत हानियों का हिसाब जोड़ा जाय तो यह हानि कई गुनी हो सकती है। रोगग्रस्त पशुओं की संख्या भारत के कुल पशुओं का एक प्रतिशत है। यह माना जा सकता है कि दुर्बलता के कारण रोगग्रस्त पशु की उत्पादन शक्ति ३०% न्यून हो जाती है। उस अवस्था में यह हानि पशुओं से प्राप्त होने वाली कुल आय का ०·३ प्रतिशत अर्थात् दूसरे शब्दों में १२ करोड़ रुपये हुई। इस हानि में उन पशुओं की गिनती नहीं है जिनकी सूचना नहीं मिल पाती, परन्तु किसी उपयोग के सर्वथा अयोग्य हो चुके होते हैं। सारांश यह कि केवल पशु संक्रामक रोगों में ही प्रति वर्ष लगभग २० करोड़ रुपये की हानि होती जा रही है। इसके अतिरिक्त अन्य रोगों से भी पशु ग्रस्त होते हैं। इन अन्य रोगों से पशुओं की मृत्यु तथा निकम्मी होने की घटना बहुसंख्यक होती हैं। ऐसी घटनाओं का लेखा न होने से इनसे होने

वाली हानियों का रुपए आने में मूल्यांकन कठिन ही है। एक स्थूल उदाहरण रूप में यह कहा जा सकता है कि केवल विषाक्त मक्खी जनित रोग से ही चमड़े का मूल्य-ह्रास प्रतिवर्ष १॥ करोड़ रुपए का होता है।

पशु-संक्रामक रोगों के नियंत्रण का वर्णन मनोरंजन हो सकता है। भारत की विशालता तथा विभिन्न भूमि तथा वातावरणों में रहने वाले विभिन्न प्रकार के पशुओं की संख्या देखकर हम अपने देश में केवल एक अनुसंधानशाला पाते हैं जो प्रचलित रोगों के रूपों की खोज करने तथा निरीक्षण, शिक्षण तथा शोध की उच्च शिक्षा देने का कार्य करता है।

सन् १८६० ई० में स्थापित भारतीय पशुरोग अनुसंधानशाला इंडियन वेटेर्नरी रिसर्च इन्स्टिट्यूट देश भर में प्राचीनतम संस्था है। यह विस्तृत रूप में फैले पशु प्लेग से पशुओं की रक्षा करने को तत्कालीन आवश्यकता प्रदर्शित करती है, उस संस्था को ही विशेषतया परिवर्द्धित करने तथा साधारण रूप में भारत में पशु रोग विद्या के संवर्द्धन की ओर उचित ध्यान तथा प्रश्रय नहीं दिया जा सका है जितना यह हमारे देश के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न है। फिर भी देश के पशुरोगवेत्ताओं ने अत्यधिक सीमित साधनों के आधीन ही रह कर पशुओं की उन रोगों से रक्षा के प्रबल अस्त्र प्रस्तुत किए हैं जो देश में भयंकर रूप से फैले हैं तथा पशुओं के आहार, अभिजनन और शिल्प सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया हैं। यथार्थ में आज अधिक गहरी खोज की आवश्यकता है और काम के जितने अधिक मार्ग ग्रहण तथा विकसित किए जाते हैं, वे अनेक हैं। भारतीय औषधियों के द्वारा पशु रोगों की प्रभावोत्पादक तथा सुलभ चिकित्सा फैलाने के आशान्वित क्षेत्र में व्यवस्थित, शोधकार्य बिल्कुल ही नहीं हो सका है। पशु रोगों के नियन्त्रण के लिए मुख्य कार्य रोग-अवरोध के साधन प्राप्त करना है। रोगग्रसित पशु की चिकित्सा व्यावसायिक दृष्टि से लाभकर नहीं। एक पशु की चिकित्सा में उस पशु के मूल्य से अधिक व्यय हो सकता है। यथार्थ में विदेशों में ऐसे पशुओं को निर्दयता पूर्वक बध कर दिया जाता है जिन में संक्रामक रोग का सन्देह हो जिससे पशु महामारी (रिंडरपेस्ट) तथा मुखपद रोग या खुरपका (फुट और माउथ रोगों) सरीखे भयंकर रोगों का देश से अन्त हो जाय। इस प्रकार रोग की चिकित्सा के स्थान पर अवरोध ही पशु-चिकित्सा का आधार है।

दूसरी बात यह है कि ढोरों के पूरे गिरोह की हीं साथ चिकित्सा आवश्यक हो सकती है। यह आवश्यक है कि सभी उपादेय पशुओं में वैक्सीन का टीका लगा कर लम्बी अवधि तक के लिए रोग-अवरोधित रक्खा जा सके। देश में पशुओं की संख्या बहुत अधिक है अतएव ऐसी अवरोधक औषधियों का व्यय बहुत कम होना चाहिए अन्यथा औषधि का व्यय किसान या सरकार की सामर्थ्य से बाहर की बात हो सकती है। उदाहरणार्थ मुक्तेश्वर में एक विश्वसनीय वैक्सीन निकाली गई है जो लम्बी अवधि तक के लिए खुरपका रोग से रक्षित रख सकती है जिसका मूल्य प्रति मात्रा ५) है। पशुओं की संख्या पर विचार किया जाय तो २० करोड़ की संख्या में पशुओं को टीका लगने का व्यय केवल वैक्सीन के मूल्य रूप में एक अरब रुपया हुआ। घर घर जाकर टीका लगने वाले विशेष कर्मचारियों का व्यय और भी अधिक होगा। उसे एक अरब अतिरिक्त व्यय रूप में समझ लें। यह स्पष्ट है कि इतना व्यय कुछ वर्षों हक हमारे देश के लिए असाध्य होगा। हमारा लक्ष्य सस्ती तथा उत्तम वैक्सीन उत्पन्न करना है। एफ० ए० ओ० की शिल्पीय सहायता से उत्पादन साधनों को समुन्नत करने तथा केन्द्रीय अनुसंधानशाला में आधुनिकतम यन्त्रों को स्थापित करने की व्यवस्था हो रही है। निरंतर शोध द्वारा इस कार्य में कैसे सफलता मिल सकती है, इसका उदाहरण पशु महामारी (रिंडरपेस्ट) के नियन्त्रण की कथा में देखा जा सकता है।

पशु महामारी एक विश्व समस्या है। यह सदा से ही सब से प्रमुख पशु-संक्रामक रोग रहा है तथा यथार्थतः आज भी है। यह सभी जुगाली करने वाले पशुओं पर आक्रमण करता है और मृत्यु संख्या बहुत अधिक होती है। १८६० ई० में पशु महामारी भयंकर रूप से फैली थी और प्रति वर्ष दस लाख पशुओं का अन्त कर रही थी। अनेक विस्तृत क्षेत्रों में कृषि कार्य सर्वथा बन्द हो गया। तत्कालीन सरकार ने राजकीय कीटाणविक अनुसंधानशाला

स्थापित की जिसमें इस रोग की निवारक औषधि निर्मित की जा सके। राबर्ट काच को मुक्तेश्वर में परामर्श के लिए आमंत्रित किया गया। इस अनुसंधानशाला के स्थापित होने के नौ वर्ष के भीतर ही एक पशुमहामारी ध्वंसक सिरम तैयार किया जा सका। यह पहले व्ययसाध्य था और थोड़ी अवधि के लिए ही पशुओं को रोगरक्षित रख सकता था। अतएव महामारी फैलने के क्षेत्र में अल्पकालीन रोगावरोध के लिए इसका उपयोग किया जाता। भविष्य में खोज होते रहने से एक मात्रा का मूल्य एक आना तक उतर आया परन्तु अल्पकालीन रोगावरोध के परिणाम के कारण केवल मूल्यवान पशुओं को ही रोगरक्षित बनाया जा सकता। १६२७ ई० में रोगाणु को बकरी में प्रवेश करा कर बकरी की तिल्ली की वैक्सीन बनाई गई जो पशुओं को आजीवन रोगरक्षित बना देती। औषधि का मूल्य भी न्यून ही था। १०० मात्रा का मूल्य केवल एक रुपया दो आना होता। इस रोगावरोधक साधन से देश के सभी भागों में बड़े पैमाने पर पशुओं को महामारी से रक्षित करने का कार्य सम्भव हुआ जिससे अब पशुमहामारी से मृत्यु संख्या ६० प्रतिशत न्यून हो गई है। इस वैक्सीन का मूल्य प्रति पशु एक पैसे से भी कम पड़ने पर भी एक दोष था कि भैंस में यह भारी प्रतिक्रिया तथा मृत्यु संख्या का कारण होता अतएव उस में सिरम विरोधी औषधि मिश्रित करनी पड़ती है जिससे व्यय बढ़ जाता है। इन दोषों के कारण भारत में पशुओं को इस रोग से पूर्ण रक्षित करने का कार्य पूर्ण नहीं हो सका है। हाल में ही हम लोगों ने एक दूसरी सस्ती वैक्सीन निकाली है जो बिल्कुल ही प्रतिक्रिया नहीं करती किन्तु दृढ़ रोगावरोध शक्ति उत्पन्न करती है। समय आ गया है कि भारत से पशु महामारी का सर्वथा अन्त कर दिया जाय।

सभापति का वैज्ञानिक भाषण

[पृ० १७० का शेषांश]

सार जननसूत्र बिन्दु या पित्र्यैक का रूपपरिष्कार स्वतः या कृत्रिम रूप से प्रस्तुत होना अनिश्चित गुण ही है। वे जीव के कार्य-कलाप तथा उसके विद्यमान होने की अवस्था से सम्बन्धित नहीं होते। जुलियन हक्सले के कथनानुसार जीवित जीव के वंशोत्पादन की क्षमता विकास की विस्तृत प्रेरणा करता है तथा प्राकृतिक निर्वाचन निर्देश देता है। इस बात को बहुतों ने निर्मूल बताया है कि जननसूत्रबिन्दु (पित्र्यैक) का रूपपरिष्कार केवल एक आकस्मिक घटना मानी जानी चाहिए। मैंने ऐसे अनेक उदाहरण संग्रहीत किए हैं जिनमें विकासगत स्तर पर विभिन्न सोपानों पर या दूर दूर अवस्थित वंशों ने वातावरण की स्थितियों के अनुरूप समरूप या अंग का सदृश कलेवर विकसित किया है।

ऐसे उदाहरण जिन्हें समानान्तर विकासवाद का फल कहा जाता है, प्राकृतिक निर्वाचन के प्रभाव से ही उत्पन्न केवल आकस्मिक रूपपरिष्कार का परिणाम मानना बोधगम्य नहीं मालूम पड़ता। जननबिन्दु के अणुगुच्छ को कोई मनोविकृति सम्बन्धी शक्ति आंशिक रूप से निर्देशित करती है। इस समस्या पर मैंने विवेचन किया है। मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, वह यह है कि जीवित जीव का व्यवहार इसके दोनों ही स्वभावों में, प्रथमतः कर्बोज (कारबोहाइड्रेट) के ओषजनीकरण की शक्ति पर चलित इन्जिन की भाँति तथा द्वितीयतः बाह्य उत्तेजना से निःसृत उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं के सम्पादन के यान्त्रिक उपकरण रूप में भौतिक तथा रसायन विज्ञान के ज्ञात नियमों की दृष्टि से विवेचन कर सकना सम्भव है। इस वर्ग की क्रियाओं के सम्बन्ध में ही जे० सी० बोस का यह निष्कर्ष कि जीवधारी तथा निर्जीवी में प्रत्युत्तर को एक समान शरीर वैज्ञानिक नियमों द्वारा विवेचित करना सम्भव है, आज भी सत्य बना हुआ है। दूसरी ओर चेतना तथा अचेतना मय पहलुओं के साथ मस्तिष्क तथा जीवित संस्थानों की स्वच्छन्द स्थिति के सदृश अतिरिक्त धारणाओं को भी विकास के कुछ सोपानों पर जीवों के व्यवहार की व्याख्या में समाविष्ट करना पड़ेगा।

कृषि में जनन विज्ञान का महत्व

डा० पार्थ सारथी ने कृषि विज्ञान विभाग के अध्यक्ष के पद से निम्न भाषण दिया :—

इस विभाग के अध्यक्ष पद से दिए भाषण में श्री रमैया (१९४१) ने वनस्पतियों की वंशोत्पत्ति तथा जनन विज्ञान सम्बन्धी भारत में हुए उद्योगों का सिंहावलोकन कर दो महत्वपूर्ण फसलों चावल तथा कपास की चर्चा की थी जिन से वे परिचित थे। पिछले दस वर्षों में और वास्तव में मेंडल के सिद्धान्तों के पुनः स्थापन के पश्चात् लगभग ६० वर्षों में जननविज्ञान ने अपने आधुनिक कालीन अवस्था से विशाल उन्नति कर ली है। जोहन्नसेन द्वारा प्रतिपादित केवल काल्पनिक तथ्य या पित्र्यैक (जिनी) के स्थान पर आज हम लोगों के सामने एक भौतिक कण या इकाई है जिसके अन्तर्गत निजी क्षमता तथा केन्द्रक का पूर्ण रूप निहित है जो अपने सहयोगियों से रेखाकृति मिलन पर अवलम्बित होता है पित्र्यैक या जनन विन्दु के गुण स्वभाव तथा उनके क्रिया कलाप की विधि समझने के प्रयत्न में जननविद्या या पित्रागति विद्या का जन्म हो सका है जो अन्य विज्ञानों पर भी छा रहा है क्यों कि यह जीवन की मौलिक एकता का अध्ययन करती है। जननविन्दु या पित्र्यैक का अध्ययन जीवन के लघुतम रूप, न्यूरोस्फोरा समान जीव से किया जा रहा है। इन अध्ययनों का परिणाम एक नई व्यवस्था रूप में व्यक्त हो रहा है जिसे जीव रासायनिक जननविद्या नाम दिया जा रहा है तथा जीव रसायन जनन शास्त्र अपनी जानकारी में बृहत्तम अणुगुच्छ रूप में पित्र्यैक (जनन विन्दु या जिनी) का अध्ययन कर रहा है। अतएव आधुनिक जनन विज्ञान समस्त विज्ञानों का एकीकरण है तथा इसकी पहुँच रसायन, भौतिक, भौतिक रसायन, जीववंशोत्पत्ति आदि तक हैं। समन्वय के कारण वनस्पति तथा जन्तु विज्ञान एक बन गए हैं। भौतिक, रसायन तथा गणित की आधुनिक खोजों ने इन विज्ञानों का जीवोत्पत्ति या जननविज्ञान से एकीकरण तथा जनन-विन्दु का मर्म अधिक स्पष्ट करने में बड़ी सहायता की है। इस ज्ञान ने जनन शास्त्री के हाथ में एक ऐसा शुद्ध तथा ठीक उपकरण आज उपलब्ध करा दिया है जो अभी तक सुने भी न जा सके। किण्वविज्ञान, (इंजाइमालोजी), सूक्ष्मदर्शकीय गणक यंत्र, शोषण किरणमापन तथा विद्युताणवीय सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के आविष्कारों से ज्ञात शिल्पों को उन थोड़ी बातों में से समझा जा सकता है जिनका उपयोग जनन विज्ञान की खोजों में आज हो रहा हैं। परिणामतः जननविन्दु (जिनी) के कार्यकलाप की विकट दुरूहता का मर्मभेदन यद्यपि अंशतः ही होने जा रहा है, यदि ड्रोसोफिला सम्बन्धी खोज से जंतु जनन तथा वनस्पति जनन शास्त्र एकीकरण पर प्रकाश पड़े तो सूक्ष्मदर्शकीय जीव न्यूरोस्पोरो सरीखे की जीव रसायनिक जननविद्या को रसायन तथा जननविज्ञान का एकीकरण प्रकट करते कहा जा सकेगा। मनुष्य के लिए जननविद्या के अध्ययन का बड़ा महत्व है। फसलों की उन्नति के अतिरिक्त यह समाज की उन्नति में भी सहायक बनने की आशा की जा सकती है या सहायता कर भी रहा है एक्स किरण तथा रसायनिक द्रव्यों से क्रोमोसोम या केन्द्रकगर्भी जननसूत्र भग्न किया जा सकता है। केन्द्रकों को परिष्कृत, संयुक्त या पृथक किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ क्षणों में ही हम लाखों प्रकार की विभिन्नरूपता सम्पादित कर सकते हैं। जो जातियाँ एक दूसरे से जननविन्दु का संयोग नहीं होने देती थीं, वे उत्पादन शक्ति युक्त बनाई जा सकती हैं। उनमें अनेक रूपान्तर उत्पन्न किए जा सकते हैं जो वंशानुगत चल सकें। अतएव ये शिल्प वनस्पति तथा जन्तुओं की वंशवृद्धि को बल प्रदान करते हैं। घरेलू रूप में उगाए वनस्पति तथा पालतू जन्तु मनुष्य के उपभोग के लिए निर्धारित माप दंड के बनाए जा सके हैं। रोग तथा रोगवाही कीटों से सुरक्षित रहने की शक्ति

उत्पन्न करने के लिए अनेक साधनों से सम्बंधित जातियों का उपयोग किया गया है।

कृषि घरेलू उत्पादन ही है। यह घरेलू धन्धा प्राक्-ऐतिहासिक काल में ही प्रारम्भ हुआ तथा मुख्य खाद्य वनस्पतियों के निर्वाचन तथा उत्पादन में उन्नति होती रही। घरेलू रूप से उत्पन्न होने वाले वनस्पतियों तथा जन्तुओं में डार्विन ने एक विकासवाद के पारखी के रूप में विभिन्नरूपता का अवलोकन किया तथा प्रकृति में विकासक्रम का विस्तृत रूप अनुमानित करने का प्रयत्न किया। उस के मतानुसार रूपभिन्नता के कारण दोगली नस्ल होना, निर्वाचन तथा एक प्रकार की जाति के परस्पर सेचन से उत्पन्न होना कहे जा सकते हैं। डार्विन के पश्चात् दो युगान्तरकारी खोजों ने रूपभिन्नता पर विशेष प्रकाश डाला है जिस पर विकासवाद आधारित पाया जाता है। उनमें से पहली मेंडल द्वारा अनुसन्धानित उत्तराधिकार का सिद्धान्त है तथा दूसरी विकास की सरल बोधगम्यता के लिए इन सिद्धान्तों का गणितीय उपयोग। कृषि में इन अध्ययनों के उपयोग का महत्व इस बात में पाया जा सकता है कि वे यह व्यक्त करते हैं कि विकासवाद के जनन साधन प्रकृति के वातावरण से बिल्कुल भिन्न स्थिति में किस प्रकार क्रिया या प्रतिक्रिया दिखाते हैं। घरेलू रूप में उत्पन्न वनस्पतियों का प्रमाण १०००० वर्षों पूर्व तक मिलता है। प्रस्तरावशेषों की रेडियमधार्मिता को देख कर इनके जन्म की ठीक तिथि ज्ञात करना सम्भव होता है। विकासवाद के दृष्टिकोण से यह अवधि बहुत ही थोड़ी है। और यह विचार करना महत्वपूर्ण है कि घरेलू उत्पन्न वनस्पतियों में से अधिकांश जातियाँ क्रमिक विकास का परिणाम नहीं हैं, बल्कि मानव प्रयास की देन हैं। उसने उनको निर्वाचित किया है मानवकृत वातावरण में ही उत्पादित किया है, प्राकृतिक वनस्पति दूर काट फेंके गए, मिट्टी की रासायनिक तथा जीववैज्ञानिक स्थिति परिवर्तित कर दी गई हैं वनस्पतियों की रोगों तथा कीड़ों से रक्षा की गई तथा सिंचाई करने से बहुत कुछ जलवायु में भी परिवर्तन उपस्थित कर दिया गया तथा अन्य वनस्पतियों द्वारा संघर्ष भी न्यूनतम कर दिया गया। अतएव स्वभावतया ही इस परिवर्तित वातावरण में विकासवादी साधनों का अध्ययन कृषि में जनन-विज्ञान के प्रभाव को व्यक्त करने का प्रबल स्रोत सिद्ध हो सकता है।

कृषि से सम्बन्धित मुख्य जनन वैज्ञानिक साधन निम्न हैं :—

(१) उत्परिवर्तन (रूपपरिष्कार, म्युटेशन) बीज प्रसंकरण (दो नसली उत्पत्ति या (हिब्रिडेशन) तथा (३) निर्वाचन। इनके अलावे भी अन्य साधन जैसे पृथक्करण के उपकरण तथा वातावरण में परिवर्तन, जो इन साधनों के द्वारा ही संचालित हैं तथा ये सभी प्रकृति में क्रियाशील पाए जाते हैं मनुष्य द्वारा घरेलू उत्पत्ति की अवस्था में एक अन्य भी उपादान है। उसे मानव उपादान कह सकते हैं। मनुष्य ने एक उल्लेखनीय सीमा तक इन साधनों को प्रवर्द्धित या अतिरंजित किया है। मनुष्य ने कुछ अपने प्रिय वनस्पतियों को सुन्दर नवीन आश्रय प्रदान किया है जो उसके लिए उपयोगी थे और इस प्रकार उनके विकास ने नवीन पथ ग्रहण किया। प्राकृतिक अवस्था में इन वनस्पतियों में से अधिकांश जीवन संघर्ष कर सकने में बहुत ही दुर्बल थे और मनुष्य का हस्तक्षेप न हुआ होता तो वे लुप्त ही हो गए होते। ठीक इस प्रकार का एक नमूना कहा जा सकता है। यह देखा जाता है कि बहुतेरे खेत में उपजाए जाने वाले वनस्पति वन्य अवस्था में उगते नहीं पाए जाते। साधारण गेहूँ इस का एक उदहरण है। जो वनस्पति जातियाँ कभी मध्य एशिया में सीमित क्षेत्र में ही प्रसारित थीं, वे पृथ्वी के तल पर आज ४० करोड़ एकड़ भूमि में उत्पन्न की जाती है। अतएव एक मनोरंजक अध्ययन का विषय है कि मनुष्य ने इन को खेतों में उत्पन्न होने की सुविधा दी है उस नवीन प्रश्रय स्थल में उगने के लिए वनस्पतियों के विकास के साधनों ने क्या प्रक्रिया की है तथा वनस्पति का जो पदार्थ रूप होता है उसको उत्कृष्टतम बनाने के लिए विकासगत जननवैज्ञानिक शक्तियों की जानकारी हमें कहाँ तक सहायता प्रदान करती है। अतः ये समस्याएं, फसल को उन्नत रूप देने के लिए प्रमुख हैं। यथार्थ में वनस्पति अभिजनन विकासवादी अध्ययनों का उत्कृष्ट रूप है। यह विकासवादी विधियों के अध्ययन का व्यावहारिक प्रयोग ही

है। अभिजनन द्वारा एक नया प्रकार विकसित करना प्रकृति में विभिन्न विद्यमान वनस्पति-वर्गों में विवेकपूर्ण निर्वाचन द्वारा मनुष्य के हस्तक्षेप का फल है या वनस्पति प्रसंकरण (दो नसली उत्पत्ति) द्वारा कृत्रिम रूप से प्रस्तुत है। इस प्रकार का फसल उन्नति करने का साधन ही कदाचित एक ऐसा उदाहरण है जिसमें कृषक की आदेश पालन वृत्ति के अतिरिक्त उसे व्यय करने, चतुराई दिखाने, बुद्धि लगाने या किसी प्रकार के अन्य प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। अतएव यही एक विधि है जिसके लिए खेतों के प्रबन्ध में परिवर्तन अपेक्षित नहीं है। यह विधि वनस्पति अभिजनन है।

१६०० ई० में मेंडल के सिद्धान्तों को पुनः खोज होने के पश्चात् से भारत में वनस्पति अभिजनन के बहु संख्यक प्रयोग होते रहे हैं तथा बहुतेरी उत्कृष्ट फसलों की जातियाँ खोज निकाली गई हैं। इन उत्कृष्ट जातियों के उत्पादन का लाभ अब भली भाँति समझा जाने लगा है अतएव उत्कृष्टतर जाति की फसलों की माँग दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। संसार भर में वनस्पति जननविद्या की वृद्धि को व्यावहारिक उत्पादन में प्रयुक्त किया जा रहा है।

आज कल वनस्पति अभिजनन की उन्नति के लिए प्रारंभिक सामग्रियों का अभाव नहीं हैं। अन्तर्राष्ट्रीय परिषद की अन्न उत्पादन संचालक समिति (एफ० ए० ओ०) द्वारा सहयोग कार्य प्रारम्भ होने रूप में गेहूँ, चावल, चारा खिलाने वाले वनस्पति आदि सरीखी विभिन्न फसलों की जननवैज्ञानिक जातियों की विश्वतालिका तैयार हो रही है। यह किसान के लाभ की ही बात है कि वह पारस्परिक आदान प्रदान के सिद्धान्त पर प्रारम्भिक सामग्री प्राप्त करे तथा उनका उत्पादन कर स्थायी बनाए रक्खे। ऐसे सहयोग के कार्य में कुछ और उन्नति का नमूना एफ० ए० ओ० का अन्तर्राष्ट्रीय धान प्रसंकरण योजना का कार्य है कटक में संचालित हो गई है। दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न देशों से अनेक स्थानीय नसलों का धान संग्रह कर जपोनिका नसल के धान का उन से मेल कर प्रसंकर दो नसले धान उत्पन्न किए जाते हैं तथा वे विभिन्न स्थानों में निर्वाचन के लिए भेज दिए जाते हैं।

मुख्य उद्देश्य यह है कि खाद आदि द्वारा उत्कृष्ट स्तर की खेती में इन के गुणों को प्रचारित किया जाय। साथ ही रोग प्रतिरोधक या स्वस्थ डंठल के फसलों की उत्कृष्ट जातियाँ फैलाई जायँ। मुझे विश्वास है कि अन्ताराष्ट्रीय सहयोग और विशेषकर बोने के बीजों की जातियाँ तथा नई वस्तुओं की अदला बदली से विभिन्न देशों में अभिजनन की प्रगति में वृद्धि होगी और उर्वर नसलें उत्पन्न होंगी। इस सम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि संयुक्त राष्ट्र, रूस तथा आस्ट्रेलिया सरीखे उत्पन्न देशों में अत्यधिक संगठित वनस्पति प्रचारक संस्थाएं हैं। भारत में ऐसी वनस्पति प्रचारक संस्था की अत्यन्त आवश्यकता है। यह बात उचित अधिकारियों के सम्मुख कई बार रक्खी जा चुकी है किन्तु यथेष्ट धन के अभाव में यह योजना स्थगित ही रहती आई है। जब वनस्पति सामग्री के आदान-प्रदान में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग इतना बढ़ रहा हो तो भारत सरीखे विशाल देश के लिए ऐसी संस्था की स्थापना नितान्त ही आवश्यक है। ऐसी संस्था खड़ी करने से भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न वनस्पति जनन वैज्ञानिक जातियों की उपयोगिता तथा पूर्ण मूल्यांकन सुगम हो जायगा।

वनस्पति जनन विज्ञान में तीव्र उन्नति होने पर भी जिसके सिद्धान्तों का उपयोग प्रत्यक्षतः ही फसलों के तथा पशुपालन में उन्नति करने में हो सकता है। तथा जब जनन विज्ञान के अध्ययन का महत्व अनेक देशों में स्वीकृत किया जा चुका है, यह देखकर अवश्य ही खेद होता है कि अब तक भारत के किसी विश्वविद्यालय में इस विषय को वह महत्व देने का गम्भीर प्रयत्न नहीं किया गया है, जितना इस विषय का होना उचित है।

विज्ञान तथा उद्योग-धंधों का विकास

डा० यू० पी० वसु, अध्यक्ष, रसायन विभाग, भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भाषण का सारांश

हमारे देश में विज्ञान के खोजों सम्बन्धी कार्य का अभाव नहीं है किन्तु अभी हाल तक भी यह औद्योगिक अनुसन्धानशालाओं के स्थान पर केवल शैक्षण अनुसंधानशालाओं में ही संचालित रहता आया है। समाज को लाभ पहुँचाने के लिए विज्ञान का उपयोग करने की विधि के लिए आवश्यक है कि शैक्षण तथा औद्योगिक दोनों ही प्रकार की अनुसंधानशालाओं के वैज्ञानिकों में सहयोग स्थापित हो। कुछ लोगों का कथन है कि सार्वजनिक संस्थाओं का व्यय देश के कर-दाताओं के कंधे पर होता है अतएव उनके वैज्ञानिकों को उन व्यक्तियों से सहयोग करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। किन्तु इस दृष्टिकोण पर भली भाँति विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि देश के किसी औद्योगिक कारखाने की सुव्यवस्था देश के प्रत्येक नागरिक के नितान्त लाभ की ही बात है, तथा उसकी उन्नति समस्त देश के उत्कर्ष का कारण होती है।

एक सिंहावलोकन से उन लाभों का निर्देश किया जा सकता है, जो जनता को व्यक्तिगत उद्योग-धंधे तथा प्रतिद्वन्दिता द्वारा प्राप्त होते हैं। रसायन उद्योग के किसी भी विभाग में प्रतिद्वन्दिता की मात्रा इतनी अधिक नहीं है जितनी सूक्ष्म रसायन तथा औषधि निर्माण विज्ञान में है। इस दिशा में कितने ही नवीन अनुसंधानों ने बहुत से सुसंचालित उद्योगों को नितान्त निरर्थक सिद्धकर दिया है। उदाहरणार्थ सल्फा औषधियों के आगमन ने कीटाणु विरोधी प्रसरों (एंटी बैक्टीरियल सिरम) को एक प्रकार से सर्वथा निरर्थक ही बना दिया। अब जो नवीन कीटाणु ध्वंसक (पेनिसिलिन आदि औषधियाँ) निकली हैं, उनसे सल्फा औषधियों के भविष्य को चिन्ताग्रस्त पाया जा सकता है। यह अवश्य ही कहा जा सकता है कि हमारे देश में इस प्रकार के विवाद की आवश्यकता ही कैसे उठ सकती है क्योंकि हमारे औद्योगिक प्रयास की संसार के बहुत से समुन्नत देशों से कोई तुलना नहीं की जा सकती! किन्तु जो देश उन्नति करना चाहता है। उसे अपनी दुर्बलता का ज्ञान होना चाहिए तथा उसके निराकरण का उचित उद्योग होना चाहिए। पहला प्रश्न यह उठ सकता है कि भारत में औद्योगिक कार्यों की उन्नति में कौन से कारण बाधक रहे हैं। किसी भी सिंहावलोचन में यह देखा जायगा कि भारत में यद्यपि कच्चे माल की प्रचुरता है, तथापि देश के अंतर्गत ही उनका पूर्ण उपयोग नहीं किया गया है। दूसरे औद्योगिक कार्य में चार प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है अर्थात् कारीगर (आर्टिजन) या शिल्प-श्रमिक, मिस्त्री या शिल्पी (टेकनीशियन), शिल्पकलाविद (टेकनालाजिस्ट) तथा वैज्ञानिक (साइंटिस्ट)। बहुत से शिल्प-श्रमिक अपने कार्य में पूर्णदक्ष हैं। कुछ वर्षों पूर्व विजगापट्टम के जहाजी कारखाने का निरीक्षण करते हुए कुछ विदेशी विशेषज्ञों ने सम्मति प्रकट की थी कि "कुछ युवक तो इस उत्तमता से कार्य करते हैं कि अंग्रेजी जहाजी कारखाने में काम करने वालों को सीख सकने में आजीवन लगे रहना पड़ सकता है।" भारतीय शिल्पश्रमिक (कारीगर) तथा शिल्पी (मिस्त्री) अन्य क्षेत्रों में भी अपनी कुशलता प्रदर्शित कर सके हैं। किन्तु उद्योग-धंधों में जहाँ शिल्प-कलाविद (टेकनालाजिस्ट) तथा वैज्ञानिक का प्रश्न आता है, उनको अपने देश में कुछ दुर्लभ ही पाया जाता है। अनेक कारणों से कुशल वैज्ञानिक उद्योग-धंधों में कार्य करना पसन्द नहीं करते।

बड़े पैमाने पर उद्योग-धंधे विकसित न हो सकने के अनेक कारण हैं। कुछ मुख्य कारण निम्नांकित हैं:—

(१) *सरकार की नीति*—पहले सरकार ऐसे उद्योग-धंधे खड़ी करने का प्रोत्साहन देती थी जिसमें या तो विदेश

से आई सामग्री प्रयुक्त हो या ऐसी सामग्री तैयार हो जो विदेशों को निर्यात की जा सके। जो उद्योग-धंधा भारतीयों के प्रयत्न से भारत के लिए खड़ा किया जाता उस पर सरकार अनेक बाधाएं खड़ी करती। उस प्रकार की ही वस्तु विदेशों से मँगाकर सस्ते दर पर बिकवाती, या ऐसे उद्योग-धंधों के लिए यंत्र अथवा आवश्यक पदार्थ ही न मँगाने देती। कायदे कानून देश की औद्योगिक उन्नति में भारी बाधक थे।

(२) *शिक्षण तथा संयुजन का अभाव*—सरकार की कोई निश्चित औद्योगिक नीति नहीं थी जिसका परिणाम यह होता कि कुशल प्रशिक्षित, व्यक्तियों द्वारा औद्योगिक अनुसंधान कराने की व्यवस्था कदाचित ही किसी संस्था, विश्वविद्यालय आदि में होती। कुछ कारखाने प्रयत्न करते परन्तु वे सहयोग से कार्य नहीं करते। वैज्ञानिक प्रशिक्षण भी इस रूप का था कि छात्र उद्योग-धंधों में उसका उपयोग न कर पाते।

(३) *उद्योगपतियों में सहयोग का अभाव*—भारतीय उद्योग-पति सहकारिता से कभी भी काम न करते। एक कारखाना दूसरे कारखाने की सहायता करने के स्थान पर उसकी उत्पन्न की वस्तुओं का अनुकरण करता और उसके विशेषज्ञों को भड़का कर अपने यहाँ लाने का प्रयत्न करता।

(४) *राष्ट्र के प्रति अनुरक्ति तथा सेवा का अभाव*—प्रायः यह देखा जायगा कि हम लोग व्यक्तिगत स्वार्थों की चिन्ता में ही ग्रस्त रहते तथा देश के स्वार्थों की उपेक्षा करते। हाल में ही कुछ कारखानों ने विदेशी कारखानों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है। किन्तु ये अधिकांश भारतीय कारखाने उन विदेशी कारखानों के गुमाश्ते की ही भाँति काम करते हैं। भारतीय कारखानों की स्थिति उन विदेशी कारखानों की हैसियत के समक्ष बिलकुल नगण्य ही है। प्रत्येक विदेशी पूंजी के उपयोग की भली भाँति छान-बीन करने की आवश्यकता है

(५) *उद्योगपतियों में साहसिक प्रयोग का अभाव*-प्रत्येक औद्योगिक रूप से उन्नत देश के लिए अनुसंधान उद्योगधंधे की रीढ़ माना जाता है किन्तु भारत में विरले उद्योगपति ही अनुसंधान में विश्वास रखते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश अवस्थाओं में वे कच्चामाल निर्यात करने तथा तैयार माल बाहर से आयात करने में ही भारी मुनाफा कमाते रहे हैं। अतएव वे अधिकतर व्यापारी ही थे, उद्योगपति नहीं थे।

(६) *वैज्ञानिकों का दृष्टि कोण*—राज्य या विश्व-विद्यालयों के वैज्ञानिक कार्य कर्ताओं ने भी सहयोगात्मक अनुसंधान की आवश्यकता अनुभव नहीं थी। किसी भी अनुसंधान गुट्ट को विशेषज्ञों का सावधानतया संयुजित तथा संयुक्त दल होना आवश्यक है, जिस में प्रत्येक अपने विशेषज्ञता के क्षेत्र में ही प्रायः संलग्न रहे किन्तु कुशल नियंत्रण तथा व्यवस्था सूत्र में आबद्ध भी रहे। उन में एक दल की भांति शरीर तथा मस्तिष्क से एक हो कर अग्रसर होने का अभ्यास होना चाहिए।

(७) *विश्वास का अभाव*—विभिन्न जीवन क्षेत्र के व्यक्तियों को अपने में निश्चित रूप से विश्वास होना चाहिए और उन्हें यह समझना चाहिए कि दूसरे भी समाज तथा राष्ट्र की सेवा भावना से कार्य कर रहे हैं।

पेटेंट व्यवस्था

स्विजलैंड तथा स्वीडेन सरीखे ऐसे देश हैं जो अनेक कच्चे माल के अभाव में भी असीम औद्योगिक उन्नति करने में समर्थ हो सके हैं। उन्होंने कार्यों का संयुजन किया है तथा अपने कार्यकर्ताओं में रसायन शिल्प विज्ञान की कला उन्नत की है तथा फलतः तीव्र उन्नति की है। इस विषय में उन्नत देशों में पेटेंट व्यवस्था चालू करने की बात की चर्चा की जा सकती है जिस से उनके राष्ट्रीय उद्योग धंधे पनप सके। भारत में लगभग एक शताब्दी से पेटेंट व्यवस्था चालू है। किन्तु भारतीय उद्योगपतियों ने उद्योगधंधों की उन्नति करने के लिए इस के उद्योग का प्रयत्न नहीं के बराबर ही किया है। भारत में पेटेंट व्यवस्था से लाभ क्यों नहीं हो सका है, इसकी छान बीन करने के लिए १९४८ ई० में भारत सरकार द्वारा एक जांच कमेटी बैठाई गई। उसने १९५० में अपना जांच ब्यौरा प्रस्तुत किया। यह विचाराधीन है।

उद्योगधंधों के प्रवर्द्धन में पेटेंट व्यवस्था द्वारा लाभ पहुँचने की बात विश्व भर में स्वीकृत की गई है। किन्तु दुर्भाग्य वश भारतीय वैज्ञानिकों तथा उद्योगपतियों ने भूत

काल में इस की उपयोगिता को न समझा। रूस में भी जहाँ व्यक्तिगत प्रयास या एकाधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं है, एक पेटेंट व्यवस्था चालू है। एकाधिकार संपन्नों के प्रति स्पर्द्धा के कारण हालैंड ने १८६९ ई० में अपने देश से पेटेंट व्यवस्था उठा दी थी जिस समय वह भी इंगलैंड, फ्रांस तथा बेलजियम की भांति एक औद्योगिक देश था। पेटेंट व्यवस्था हीन स्थिति के ४० वर्षों के अनुभव के अनुभव के पश्चात् हालैंड ने देखा कि तैयार माल का निर्यात बहुत ही न्यून हो गया है तथा वह एक खेतिहर देश मात्र रह गया है। यह परिणाम हालैंड वासियों की प्रयत्न-हीनता का नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे परिश्रमी लोग हैं। हालैंड ने देखा कि यह पेटेंट व्यवस्था हीन होने का परिणाम है, १९१२ ही में उसने पेटेंट व्यवस्था पुनः संचालित की। तब से वह अपना पूर्व गौरव तथा स्थिति प्राप्त करने में समर्थ हो सका है। तथा पेटेंट व्यवस्था को उत्साह पूर्वक संचालित रख रहा है।

उद्योग धंधों की उन्नति में पेटेंट व्यवस्था द्वारा लाभ पहुँचने का दूसरा उदाहरण स्विजरलैंड में पाया जाता है। स्विजरलैंड अपेक्षाकृत औद्योगिक देश था, उसकी विश्व भर में घड़ियां तथा अन्य पदार्थ निर्मित कर निर्यात करने में बड़ी प्रसिद्धि थी, परन्तु अमेरिका की पेटेंट व्यवस्था समुन्नत शिल्प वैज्ञानिक सफलताओं ने उसे घोर प्रतिस्पर्द्धी औद्योगिक देश सिद्ध किया। अतएव १८८८ ई० में स्विजरलैंड ने पेटेंट व्यवस्था चालू की। तब से लोहा कोयला आदि की दुर्लभता की भारी कठिनाई होने पर भी वह आज संसार का एक प्रमुख औद्योगिक देश बना हुआ है। उसके यान्त्रिक उपकरण तथा सूक्ष्म रसायनिक द्रव्य का व्यवसाय संसार में बेजोड़ है।

पेटेंट एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं जिससे एक ही क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति नवीन आविष्कार करने की अनुप्रेरणा प्राप्त करते हैं। सल्फा औषधियों या कीटाणु ध्वंसक औषधियों की समृद्धि का कारण पेटेंट व्यवस्था ही है। उन औषधियों को निर्माण करने के लिए प्रतिस्पर्द्धी कारखाने उनके मुकाबले की दूसरी औषधि बनाने में संलग्न होते हैं जिसे वे एक दूसरे का अधिकार भंग किए बिना ही निर्मित कर विक्रय कर सकें और वे प्रायः पहले से उत्तम तथा सस्ती औषधि प्रस्तुत कर लेते हैं। फलतः हम देखते हैं कि उपयुक्त विषयों में प्रत्येक के सम्बन्ध में ६ या ७ दर्जन तक पेटेंट आज विद्यमान हैं। यदि इस तथ्य पर विशेष ध्यान दिया जाय तो हम देखेंगे कि एक ही पदार्थ को दूसरे मार्ग से उत्पन्न कर सकने की खोज द्वारा वैज्ञानिक साधकों तथा विचार धाराओं में कितनी भारी प्रगति हो पाती है।

सर्व साधारण को अर्पित कोई आविष्कार प्रतिस्पर्द्धा से संरक्षित न होने के कारण यथार्थ में व्यर्थ जाता है तथा औद्योगिक दृष्टि से लुप्त हो जाता है। यह राष्ट्रीय धन का ह्रास ही कहा जा सकता है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने खाद्य द्रव्य के अनु विकिरण (रेडिएशन) के सम्बन्ध में उपेक्षा कर पेटेंट कराने की बात नहीं सोची। किन्तु कुछ ही समय में अमेरिका में ऐसी ही कुछ परिष्कृत विधि के लिए विसकांसिन विश्व विद्यालय के स्टीनवाक को पेटेंट अधिकार प्रदान किया गया। विसकांसिन विश्व-विद्यालय ने इंगलैंड में इस विधि के प्रयोग पर ही पारिश्रमिक माँगना प्रारंभ नहीं किया, बल्कि विटामिन डी के निर्माण पर भी नियंत्रण करना प्रारंभ किया क्योंकि यह अनुविकिरण का ही परिणाम सिद्ध हुआ। इसी प्रकार प्रारंभ काल में ब्रिटेन के रंग निर्माण व्यवसाय का ह्रास हो रहा था। अंग्रेज वैज्ञानिकों ने अपने आविष्कारों को पेटेंट नहीं कराया किन्तु इसके विपक्ष जर्मनी ने बिल्कुल प्रारंभ से ही पेटेंट करा कर इस क्षेत्र में एकाधिकार प्राप्त कर लिया। इस विकट अवस्था से त्राण पाने के लिए इंगलैंड ने तुरन्त ही अपने कानून में परिवर्तन कर जर्मनी में पेटेंट कराई हुई रंग निर्माण विधि की पर्याय विधि को पेटेंट कराने का अधिकार प्रदान किया।

औद्योगिक उपयोग में आ सकने के पूर्व आविष्कारों के यथार्थ विकसित करने की आवश्यकता होती है। इसमें पुष्कल धनराशि तथा श्रम की आवश्यकता होती है। अतएव परिणाम की रक्षा के लिए पेटेंट व्यवस्था न हो तो उद्योगपति इतना जोखिम नहीं उठा सकता। पेटेंट के आधीन-प्राप्त विशेषाधिकार से यह संभव होता है कि उसका अधिकारी व्यक्ति अपनी विधि का अन्य उद्योगपतियों के सम्मुख निर्भय होकर व्यक्त कर दे। व्यावसायिक ढंग

[शेष पृ० १८४ पर]

अखिल भारतीय औषधालय महासभा

अखिल भारतीय औषधालय कान्फ्रेंस के तेरहवें अधिवेशन तथा भारतीय औषधालय कांग्रेस के पंचम अधिवेशन के संयुक्त समारोह का कानपुर में उद्घाटन करते हुए संघीय स्वास्थ्य मंत्राणी श्री राजकुमारी अमृत कौर ने कहा: —

"यहाँ पर एकत्र गरायमान्य पुरुषों का समारोह यह प्रकट करता है कि औषधालय के व्यवसाय में कितनी अधिक रुचि बढ़ रही है तथा यह इसके भविष्य में समुचित मार्ग से प्रवर्द्धित होने का शुभ लक्षण है। एक समय था जब अधिक लोग इस ओर आकर्षित नहीं होते थे और जो इस धंधे में आते भी थे उनमें से ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं होती थी जिन्हें भलीभाँति प्रशिक्षित कहा जा सके। यथार्थ में कुछ वर्षों पूर्व तक उचित रूप से प्रशिक्षित ढंग के औषधिविक्रेता भारत में नहीं थे। हां, कंपाउंडर नाम के व्यवसायी अवश्य थे, जो प्रशिक्षित डाक्टरों के अनुचर की भाँति कार्य करते किन्तु यह अनुचर वर्ग बहुत असंतोषजनक था। औषधि वितरण तथा रोगों के अवरोध में उन्नति के लिए अनुचर वर्ग की सहायता प्रशिक्षित डाक्टर के लिए सदा ही प्रमुख प्रश्न रहेगा। अन्यथा डाक्टर की उपयोगिता बहुत कुछ न्यून हो जायगी।"

राजकुमारी अमृत कौर ने १९४८ में स्वीकृत हुए औषधालय कानून की चर्चा करते हुए कहा कि धीरे धीरे प्रशिक्षित औषधि विक्रेता ही इस धंधे में रह सकेंगे। उस कानून के अनुसार न्यूनतम प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना कोई व्यक्ति औषधिविक्रेता का धंधा न कर सकेगा। औषधिनिर्माण की चर्चा करते हुए आपने कहा कि पहले विदेशों से ही औषधियाँ बनकर आती थीं, छोटे मोटे औषधिनिर्माता कुछ मामूली औषधियां देश में बनाते। उनकी भी पूछ न होती। परन्तु महायुद्ध के कारण 'विदेशों से औषधियां न बन सकने के कारण रसायन तथा औषधालय व्यवसाय के व्यवसायियों के प्रयत्न से औषधियों का अधिक निर्माण तथा प्रचार होने लगा। अब सरकार भी इस ओर ध्यान दे रही है तथा औषधियों के उत्तम प्रकार की भी कोशिश की जा रही है। अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य परिषद के सहयोग से पेनिसिलिन बनाने का सरकारी कारखाना खुल रहा है। मलेरिया के मच्छड़ों का ध्वंस करने वाली डी० डी० टी० औषधि के निर्माण की भी व्यवस्था हुई है। भविष्य में सल्फा औषधियों के निर्माण का भी आयोजन हो रहा है। देशी व्यवसायी भी पग आगे बढ़ाकर कुछ उन्नत औषधिएं बनाने में प्रवृत्त हैं। कुष्ट नाशक तथा क्षय अवरोधक औषधियों के बनाने में कुछ औषधिनिर्माता सफलता दिखा रहे हैं। प्रयत्न यह किया जा रहा है कि उत्तम औषधियां बनाकर केवल देश की ही आवश्यकता पूरी न की जाय, बल्कि बाहर के देशों में भी उन औषधियों की खपत हो सके। औषधियों के उत्तम प्रकार के लिए १९५० में एक औषधि कानून भी सरकार बना चुकी है। औषधि में ठगपने तथा धोखाधड़ी के दमन का भी प्रबन्ध हो रहा है।

सभापति डा० टी० ए० शिंजेल का भाषण

अखिल भारतीय औषधि विक्रता कान्फ्रेंस तथा भारतीय औषधि विक्रेता कांग्रेस का सम्मिलित अधिवेशन विशेष महत्व का है, क्योंकि यह पहले-पहले औषधि विक्रेता व्यवसायियों का एक सयुंक्त संगठन है। पारस्परिक आदर तथा सहिष्णुता की भावना भारतीय राष्ट्र का एक मौलिक गुण है जिस के कारण यह सम्मिलित अधिवेशन हो रहा है। जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो संकीर्ण राष्ट्रवादी हो कर उसने यह भावना प्रकट नहीं की। स्वतंत्रता का अर्थ भिन्न विचारों के व्यक्ति तथा दुर्बलों को पददलित करना नहीं है। स्वतंत्रता का अर्थ सहिष्णुता है।

वैज्ञानिक शोध के लिए भी सहिष्णुता आवश्यक है। अनुसंधान इस व्यवसाय की रीढ़ है तथा औषधि तथा कृषि व्यवसाय पर ही देश की सम्पन्नता निर्भर करती है। अतएव प्रत्येक उन्नतिशील देश अनुसंधान को प्रश्रय देता है किन्तु आधुनिक रूप के राष्ट्र ही वह स्वतंत्रता प्रदान करते हैं जो उच्च कोटि के फल प्राप्त करने के लिए विज्ञान के लिए अवश्यक होता है। प्राचीन समय में विज्ञान और राष्ट्र में प्रायः विरोध रहता था क्योंकि रूढ़िवादी धार्मिक विश्वासों का विज्ञान से मेल नहीं खाता था। आधुनिक काल में भी सरकारी विचारों से विरोध होने पर अनुसंधान कार्य को दबा दिया जाता रहा।

जब उन्नतिशील राष्ट्रों ने उदार विचार रखना प्रारंभ किया तो युद्ध तथा आर्थिक आवश्यकताओं के कारण अनुसंधान को प्रश्रय देना अत्यावश्यक हो गया। जहाँ सरकार को सद्यः परिणाम की शोध आवश्यक होती है. वहाँ मौलिक तथा सैद्धान्तिक अनुसंधान की अवहेलना हो जाती है क्योंकि उसका परिणाम विलंब से निकल सकता है। अदूरदर्शी राष्ट्रीय नियंत्रण से भी दिखावटी कार्य ही हो पाता है क्योंकि शोधकर्त्ता के हाथ परिणाम तथा समय की दृष्टि से बँधे होते हैं।

पाश्चात्य देशों में सरकारी उद्योगों के पूर्व व्यक्तिगत व्यवसायियों के प्रश्रय से सफल अनुसंधानशालाएँ स्थापित हो सकी थीं। आज के औषधि संबंधी अधिकांश अनुसंधान ऐसे व्यक्तिगत अनुसंधानशालाओं के ही परिणाम हैं।

व्यक्तिगत उद्योगपतियों के लिए अत्यधिक व्ययसाध्य अनुसंधान कार्यों के लिए सरकारी सहायता अत्यावश्यक हो जाती है। यह सहायता राष्ट्रीय अनुसंधानशालाओं द्वारा दी जा सकती है। भारत में ऐसी अनेक अनुसंधान-शालाएँ बन गई हैं।

वैज्ञानिक ज्ञान तथा धार्मिक विश्वासों में भारी खाई खड़ी हो सकती है। भारत ऐसे धर्म प्रवृत्ति के देश के लिए यह विशेष उल्लेखनीय हो सकती हैं किन्तु विज्ञान तथा धर्म परस्पर विरोधी नहीं प्रत्युत उनके भिन्न मार्ग एक ही विश्वशक्ति के ज्ञान प्राप्त करने के हैं। एक तो नाप जोख का मार्ग ग्रहण करता है किन्तु दूसरा विश्वास तथा अनुभूति के मार्ग का अवलंबन करता है।

स्वास्थ्य मन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त का भाषण

कानपुर में ३१ दिसम्बर को इंडियन फार्मेस्युटिकल कांग्रेस के आयुर्वेद विभागीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए उ० प्र० के स्वास्थ्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने बताया कि उत्तर प्रदेश सरकार देशी चिकित्सा प्रणालियों की मान्यता प्रदान करने के उपरांत उनकी औषधियों के ठीक प्रकार से निर्माण की ओर भी भरसक ध्यान दे रही है। राज्य सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेदिक तथा यूनानी प्रणाली पुन संगठन समिति की सिफारिशों के आधार पर देशी दवाओं का एक प्रमाणित फार्मोकोपिया तैयार करने के लिए १० विद्वानों की एक समिति ने १००० आयुर्वेदिक तथा यूनानी योगों का विस्तृत "फार्मोकोपिया बनाने का निश्चय किया है। इस सम्बन्ध में कार्य आरम्भ हो चुका है और आशा है कि आगामी दो वर्षों में पूर्ण भी हो जायगा। साथ ही राज्य सरकार ने आयुर्वेदिक तथा यूनानी दवाओं के निर्माण के लिए अपनी एक औषधि निर्माणशाला स्थापित की है। यह देश में अपने ढंग की पहिली ही सरकारी निर्माणशाला है। इसने अपने गत केवल ढाई वर्ष के जीवनकाल में ही काफी प्रगति कर ली है। १९५१-५२ में निर्माणशाला में लगभग १,४०,००० रु० की १७० आयुर्वेदिक तथा ८४ यूनानी औषधियां बनी थीं। इस वर्ष आयुर्वेदिक औषधियों की संख्या बढ़कर १७७ और यूनानी की १६३ हो गई है। प्रदेश में फैले हुए ५२४ देशी औषधालयों और दवाखानों के लिए औषधियों की समस्या इस फार्मेसी द्वारा पूर्णतया हल हो गई है। इसके अतिरिक्त गवेषणा आदि के लिए एक प्रयोगशाला स्थापित की जा रही है, जिसमें औषधियों के विश्लेषण और शुद्धता की जांच का भी कार्य होगा।

भारत जड़ी-बूटियों का अक्षय भंडार है, किन्तु अभी तक इस निधि का पूर्ण सदुपयोग किसी सुनिर्धारित योजना के अन्तर्गत नहीं हो सका है। अलमोड़ा जिले के रानीखेत के क्षेत्र में सहकारिता विभाग के तत्वावधान में एक फार्मेस्यूटिकल विशेषज्ञ की देखरेख में औषधियों का संग्रह प्रारम्भ किया गया है। भविष्य में इस ओर और अधिक कार्य होने की आशा है।

आपने आगे कहा, आयुर्वेदिक विज्ञान के विकास की बहुत बड़ी जिम्मेदारी उन व्यापारिक औषधि निर्माणशालाओं पर भी है, जो देश के कोने-कोने में फैली हुई है और प्रतिवर्ष लाभ के रूप में काफी धन कमाती हैं। औषधियों का मान-निर्धारण तथा उनके निर्माण-प्रकार और मात्रा को स्थिर करने आदि के विषय में अनुसंधान करने में ये काफी योग दे सकती हैं। इन निर्माणशालाओं पर समुचित नियंत्रण रखने का प्रश्न प्रदेश सरकार के सम्मुख है। साथ ही, "फार्मोकोपिया" तैयार हो जाने के उपरान्त एलोपैथिक दवाओं की भांति देशी दवाओं पर भी नियंत्रण लागू करने के प्रश्न पर सरकार विचार करेगी।

औषधि निर्माता संघ की लखनऊ में वार्षिक बैठक

केन्द्रीय ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूटके डाइरेक्टर डा० बी० मुकर्जी ने भारतीय औषधि निर्माता संघ की वार्षिक बैठक में भाषण करते हुए कहा, औषधिनिर्माताओं को ऊँची शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और ज्ञान बढ़ाना चाहिए जिससे वे अपने ग्राहकों और चिकित्सकों को अच्छी सलाह दे सकें।

डाक्टर मुकर्जी ने कहा, आज कल औषधि निर्माण विज्ञान में बड़ी तेजी से उन्नति हो रही है। नुसखा लिखने की पुरानी प्रथा हटती जा रही है और उसके बजाय बनी बनायी दवाइयों, टिकियों, इंजेक्शनों का प्रयोग बढ़ रहा है। अस्पतालों में दवाइयां अधिक तैयार होने लगी है अतः फुटकल व्यक्तियों द्वारा बनाने का काम घटता जा रहा है। इस बात पर ध्यान रखकर औषधि निर्माताओं को बदली हुई परिस्थिति में अपनी सफलता की कोशिश करना चाहिए।

आपने कहा, कुछ औषधिनिर्माता चिकित्सा का काम भी बड़ा अच्छा कर रहे हैं। इस समय अधिक योग्य और बुद्धिमान औषधि निर्माताओं की जरूरत है, ऐसे लोगों की नहीं जो केवल विषों की खुराकें याद रखकर नुसखे लिखना जानते हैं।

मुझे इस देश में औषधि निर्माताओं का भविष्य आशाप्रद जान पड़ता है। इस समय औषधि निर्माण में जो प्रगति हो रही है वह यदि कायम रही तो जनता की स्वास्थ्य रक्षा में इससे बड़ा लाभ होगा। यदि औषधि निर्माता आशा और उत्साह के साथ इस काम में लग जांय तो पंच वर्षीय योजना की पांच वर्ष की अवधि में दवाइयों के निर्माण में विशेष उन्नति अवश्य होगी।

अमेरिका और ब्रिटेन आदि देशों ने इस काम में बड़ी उन्नति की है। भारत की स्थिति अभी बहुत असन्तोषजनक है।

विज्ञान तथा उद्योग-धन्धों का विकास

[पृष्ठ १८१ का शेषांक]

से उसका उपयोग करने के लिए उन्नति करने में इस प्रकार निश्शंक होकर हाथ लगाना संभव हो सकता है तथा धन तथा श्रम उसमें लगाया जा सकता है।

अतएव परिस्थितियों का सामना करने के लिए उद्योगपतियों को अपने वैज्ञानिक कार्यों की वृद्धि करने तथा अनुसंधान तथा उन्नति के लिए अधिक धन व्यय करने के लिए सन्नद्ध होना पड़ता है। ब्रिटिश विज्ञान सम्मेलन के सभापति डा० सर हेनरी टिज्जर्ड ने ठीक ही कहा था, "औद्योगिक व्यवहार में विज्ञान निरंतर अधिकाधिक प्रयोग पर औद्योगिक उत्कर्ष निर्भर होगा। हम जब तक अपने शिल्पज्ञान का स्तर न उठावें, जब तक हमें व्यवसाय की व्यवस्थापक स्थितियों में ऐसे अधिकाधिक व्यक्ति न मिलें जिनको वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त कर ही व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिला हो तब तक हम औद्योगिक राष्ट्रों के उच्च वर्गों में स्थान पा सकने में अंततः अक्षम हो जाएँगे।

द्वितीय महायुद्ध के बाद विज्ञान के आविष्कार

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद वैज्ञानिकों ने विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की है। उद्योगपतियों तथा सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये हजारों अनुसन्धान विशेषज्ञों ने ऐसी अनेक नई प्रभावशाली औषधियाँ तथा उद्योगों एवं कृषि के काम आने वाले रासायनिक द्रव्य तैयार किये हैं जिन से समस्त मानव जाति को अमित लाभ पहुँच रहा है।

विविध औषधियों के आविष्कार

औषधियों के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं। १९४५ में प्रथम कीटाणु-नाशक औषधि, 'पेनिसिलिन' व्यापक प्रयोग के लिए उपलब्ध हुई। पेनिसिलिन का आविष्कार सर्वप्रथम ग्रेटब्रिटेन में किया गया था और इस के बाद कई देशों में उस पर अनुसन्धान किये गये हैं।

पेनिसिलिन के बाद शीघ्र ही अन्य नई कीटाणु नाशक औषधियाँ मालूम की गयीं जो उस से भी अधिक प्रभावशाली हैं। १९४५ में स्ट्रेप्टो-माइसिन, १९४८ में औरियोमाइसिन बेसिट्रेसिन तथा क्लोरोमाइसिटिन और १९५० में टेरामाइसिन तैयार की गयीं। इन औषधियों से उन घातक तथा व्यापक रोगों का उत्तम उपचार सम्भव हो गया है जिन के लिए बहुत प्रभावशाली औषधियां उपलब्ध नहीं थीं। उन रोगों में निमोनिया, मोतीझरा, टाइफस, प्लीहाज्वर, क्षय, गर्दनतोड़ बुखार, पेचिश तथा काली खांसी आदि सम्मिलित हैं।

कुछ कीटाणु-नाशक द्रव्यों का प्रयोग बिल्कुल नये उद्देश्यों—यथा अनाज के पौधों तथा पशुओं की बढ़ोतरी में वृद्धि—के लिए किया जा रहा है। इन्हें इस प्रकार प्रयोग में लाने के फलस्वरूप संसार में खाद्यान्नों की वृद्धि होगी।

औषधियों के विषय में दूसरी उल्लेखनीय प्रगति १९४९ में होने वाली हारमोन के तत्वों (प्रणाली-विहीन ग्रन्थियों के रस में पाये जाने वाले विशिष्ट जीवन तत्वों), कार्टिजोन तथा ए-सी-टी-एच का पता लगना है। इन नई औषधियों की सहायता से आमवातिक सन्धि-शोथ का उपचार करना सम्भव हो गया है। इस से पूर्व इस के किये कोई प्रभावशाली औषधि नहीं थी। इन से चिकित्सक लोग आमवातिक ज्वर (गठिया), श्वास (दमा), 'हे—फीवर' तथा अन्य कई व्याधियों का सफलतापूर्वक उपचार कर सकेंगे।

गत वर्षों में प्रथम बार विभिन्न देशों में मलेरिया तथा टाइफस की रोकथाम करने के लिये डी-डी-टी का व्यापक प्रयोग किया गया है। डी-डी-टी मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों तथा टाइफस फैलाने वाले कृमियों को मार डालता है। पिछले वर्षों में कई देशों में विश्व स्वास्थ्य संघटन ने इन रोगों की रोकथाम के काम में बड़ी मदद दी।

अनुसन्धानकर्ता वैज्ञानिकों तथा चिकित्सकों ने गत वर्षों में शिशु पक्षाघात, क्षय (बी० सी० जी० तथा आइसोनियाजिड की सहायता से) तथा हृदय रोगों का उपचार करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है

वैद्युतिक यन्त्रों के आविष्कार

विज्ञान ने रेडियो, टैलिविजन, रेडार तथा गणित की मशीनों के लिये बिजली के यन्त्रों का आविष्कार करके महत्वपूर्ण उन्नति की है। बिजली के इन आविष्कारों में से कुछ आविष्कार उड्डयन-कार्यों के लिये विशेष महत्व रखते हैं। रेडार और रेडियो-यन्त्रों से हवाई जहाजों को दिशा मालूम करने और खराब मौसम में हवाई अड्डों पर पहुँचने आदि में बड़ी मदद मिलती है।

अब बहुत सी रेलवे लाइनों पर बिजली द्वारा सम्वाद वहन की व्यवस्था की जाती है। सम्वाद भेजने वाला अधिकारी एक बड़े रेलवे क्षेत्र में किसी भी जगह ट्रेन-अधिकारी से बातचीत कर सकता है।

बिजली के रेडार यन्त्र तथा पानी की गहराई बताने वाले विद्युत् यन्त्र की सहायता से अब व्यापारी जहाज पहले से अधिक सुरक्षित हो गये हैं। गहराई बताने वाले इस यन्त्र की सहायता से उस समुद्र की गहराई का पता लगता रहता है जहाँ से कोई जहाज गुजर रहा होता है। यह यन्त्र मछलियों के स्थानों का पता लगाने के लिये भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। सभी देशों के मछियारे इसे प्रयोग में लाते हैं।

टैलिविजन बिजली का एक अन्य यन्त्र है जिसका द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से उपयोग बहुत अधिक बढ़ गया है। इस समय सीमित क्षेत्र तक ही टैलिविजन द्वारा चित्र प्रसारित किये जा सकते हैं। हाल में किये गये अनुसन्धानों से प्रकट होता है कि दूरस्थ स्थानों के लिये

भी अन्तर्राष्ट्रीय टैलिविजन-व्यवस्था सम्भव हो सकेगी।

बिजली-यन्त्रों के आविष्कारों में ट्रान्सिस्टर का आविष्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह मटर जितना एक बहुत छोटा सा यन्त्र है, जिसमें जर्मेनियम का अंश रहता है, जो जस्त से प्राप्त करके प्लास्टिक में गाड़ दिया जाता है। यह यन्त्र वैकम ट्यूब का काम देता है, किन्तु इसमें बहुत कम शक्ति खर्च होती है और वह अनिश्चित समय तक कायम रहती है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यह ट्रान्सिस्टर जल्दी ही अच्छे रेडियो सेटों, टैलिविजनों, दूरवर्ती टैलिफोनों तथा अन्य ऐसे बड़े यन्त्रों में वैकम ट्यूबों का काम देने लगेगा जिनमें वैकम ट्यूबें इस्तेमाल होती हैं। इससे गणित करने वाली बिजली की तेज मशीनों अथवा "यन्त्रिक मस्तिष्कों" का उत्पादन भी सम्भव हो सकेगा।

औद्योगिक आविष्कार

विज्ञान ने उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं। कृत्रिम रबड़ बनाने की प्रक्रिया में बड़ा सुधार हुआ है। प्लास्टिक उद्योग का युद्ध से पूर्व किसी को कुछ ज्ञान नहीं था, किन्तु अब कुछ देशों में वह प्रमुख उद्योग बन गया है। कोयले तथा प्राकृतिक गैसोलीन बनाने तथा कोयले और पैट्रोलियम से रासायनिक द्रव्य बनाने के उन्नत तरीकों की अनेक त्रुटियाँ दूर की गई हैं। कागज बनाने में व्यर्थ जाने वाली वस्तुओं से बिल्कुल नये प्रकार के रासायनिक द्रव्य तैयार किये गये हैं। ये रासायनिक द्रव्य वस्त्र, धातु-शोधन, चमड़े पैट्रोलियम तथा रबड़-उद्योगों में काम आते हैं। ऐसे नये रासायनिक तरीके मालूम किये गये हैं जिनसे तैलक्षेत्रों के उत्पादन में वृद्धि हो गयी है।

धातु-उद्योगों के क्षेत्र में, वैज्ञानिकों ने विशेष प्रयोजनों के लिए कई प्रकार की मजबूत, हल्की और जंग न लगने वाली लौह मिश्रित धातुएँ बनाई हैं। इस प्रकार की लौह धातुओं से ऐसी ऐसी वस्तुएँ बनायी जा सकती हैं जो साधारण लोहे से नहीं बन सकती थीं। वैज्ञानिकों ने समुद्र के जल से निकाली जाने वाली "मैग्नेशियम" नामक धातु के कई नये उपयोग मालूम कर लिये हैं। यह धातु वजन में बड़ी हल्की होती है। अभी हाल में कम लागत पर "जिरकोनियन" नामक धातु का उत्पादन करने की प्रक्रिया पूरी की जा चुकी है। इसे भी जंग नहीं लगता और यह धात्वीय मिश्रणों में बहुत काम आने वाली धातु है।

गत वर्षों में वस्त्र-उद्योगों के लिये वैज्ञानिकों ने कुछ नये कृत्रिम "चमत्कारी तन्तु" तैयार किये हैं। इनमें से औरलोन, डाइनेल, डकरोन, एक्रिलान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मनुष्य ने सब से पहले रेयोन और नाइलोन नामक कृत्रिम तन्तुओं का आविष्कार किया था। अब विज्ञान द्वारा निर्मित इन सब कृत्रिम तन्तुओं से तरह-तरह के कपड़े बनाये जा रहे हैं। इन समस्त नये तन्तुओं में ऐसे विशेष तत्व हैं जिनसे कपड़े पर आभा आ जाती है और वह टिकाऊ बन जाता है। अमेरिका के वस्त्र-उद्योग के प्रमुख अर्थशास्त्री डा॰ रोबर्ट सी॰ शुक के कथनानुसार, १९५५ तक अमेरिका में स्त्रियों तथा पुरुषों के आधे से अधिक वस्त्र इन नये तन्तुओं से तैयार होने लगेंगे।

वैज्ञानिकों ने जेट-इंजनों में बड़े सुधार किये हैं और अंग्रेजों ने सर्वप्रथम एक ऐसे जेट इंजन वाले यात्री-विमान का आविष्कार किया है जो एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक ५०० मील प्रतिघण्टा की रफ्तार से उड़ान करता है। नये जेट इंजन में लगभग ७५ हजार घोड़ों की शक्ति होती है जब कि कुछ वर्ष पूर्व तक एक हजार घोड़ों की शक्ति वाले ही विमान होते थे।

कृषि सम्बन्धी आविष्कार

कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने उन वस्तुओं से अनेक उपयोगी चीजें बनाने के तरीके मालूम किये हैं जो खेतों में व्यर्थ चली जाया करती थीं और उनका कुछ भी व्यापारिक महत्व नहीं था। अब गेहूँ के भूसे से गत्ता तथा कागज, मक्का की छूंछ से डैक्स्ट्रोस, वेनिलिन, प्लास्टिक तथा अन्य वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। गन्ने की खोई घरों की भीतरी दीवारों के लिये गत्ता बनाने तथा विद्युत्-अवरोधक बनाने के काम में लाई जाती है तथा लकड़ी की छीलन और बुरादे से शीरा तथा खमीर तैयार किया जाता है।

विज्ञान समाचार

हमारी राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ

भारतीय वैज्ञानिक ऐसी अनेक समस्याओं का हल ढूँढ़ निकालने में व्यस्त हैं, जिनका समाधान राष्ट्र के उत्पादन तथा अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। विदेशों से मँगाये जाने वाली अथवा दुर्लभ वस्तुओं का उपयोग किफायत से करने के तरीकों की खोज, उस कच्चे माल के बदल निकालने का काम जो देश में पैदा नहीं होता, आर्थिक दृष्टि से लाभदायक पदार्थों की किस्म सुधारने के उपायों की जांच-पड़ताल, बेकार जाने वाली चीजों के सदुपयोग के लिए छानबीन, शक्ति तथा सम्पत्ति के नये-नये साधनों का संघटन और छोटे व बड़े, दोनों ही किस्म के उद्योगों के साथ निकट सम्पर्क की व्यवस्था, आदि वे बातें हैं, जिनकी पूर्ति के लिए भारत की बहु-संख्यक राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ तथा गवेषणा-संस्थाएँ दिन-रात कार्य-व्यस्त हैं।

इन संस्थाओं में से कोई ऐसी नहीं है, जो वर्तमान शताब्दी के चालू दशक से अधिक पुरानी हो स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद इनकी स्थापना की ओर विशेष ध्यान दिया गया और १९५० में, इनमें से कई की स्थापना हो गयी। नयी दिल्ली की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, पूना की राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, धनबाद की ईंधन-गवेषणा-शाला, कलकत्ता की कांच व मिट्टी-पात्र गवेषणा-शाला, जमशेदपुर की धातु-शोधन संबन्धी प्रयोगशाला और मैसूर की खाद्य प्रौद्योगिक गवेषणा शाला १९५० में खुल गयीं। केन्द्रीय औषध गवेषणा शाला १९५१ में तथा केन्द्रीय सड़क गवेषणा-शाला १९५२ में नयी दिल्ली में खोली गयी और केन्द्रीय वैद्युत-रासायनिक गवेषणा-शाला कराइकुडी में तथा केन्द्रीय चमड़ा-गवेषणा-शाला मद्रास में, जनवरी १९५३ में खोली गयी हैं। केन्द्रीय इमारती गवेषणा-शाला को रुड़की में, इसी वर्ष फरवरी मास में खोलने की योजना है।

कुछ उदाहरण

ये शालाएँ किस प्रकार से देश की सहायता करेंगी अथवा कर रही हैं इसका स्पष्टीकरण कुछ उदाहरण देकर किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, भारत में निकेल के भू-भंडार नहीं पाये जाते और साथ ही देश के वनस्पति उद्योग के लिए निकेल की काफी जरूरत पड़ती है। पूना की राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला ने ऐसी विधि निकाली है, जिसके जरिये वनस्पती उद्योग द्वारा काम में लाये जाने के बाद निकेल का जो बेकार अंश बचता है उससे फिर निकेल का एक यौगिक प्राप्त किया जा सकता है, जिसे फिर से निकेल की जगह काम में लाया जा सकता है। इस तरह विदेश से मँगायी जाने वाली इस वस्तु के उपयोग में काफी किफायत हो सकती है।

यही स्थिति उन चीजों के सम्बन्धी में भी है, जो विदेशों से तो नहीं मँगायी जातीं, पर जो इस देश में हमारी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में नहीं प्राप्त हैं। कोयले का ही उदाहरण लीजिए। भारत के लिए जरूरी है कि वह धातु-शोधन के काम आने वाले कोयले के अपने भंडार का उपयोग बड़ी सावधानी से करे। ईंधन के विषय में छानबीन करने के बाद ऐसा तरीका निकाला है, जिसके अनुसार ताप द्वारा २ लाख किलोवाट बिजली पैदा करने वाला बोकारो-केन्द्र अब धातु-शोधक कोयला खर्च न करके उसकी जगह सस्ता नीचे दर्जे का (बर्मी सीमका) कोयला इस्तेमाल करेगा।

इसी प्रकार, केन्द्रीय कांच व मिट्टी-पात्र गवेषणा-शाला ने ऐसा मसाला निकाला है, जो 'इनेमल' उद्योग के लिए बहुत उपयोगी है।

विशेष बात यह है कि इस मसाले में सुहागा (बोरेक्स) नहीं पड़ता, जो अभी विदेश से मँगाना पड़ता है। इसी तरह राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला (पूना) ने रंग-रोगन तैयार करने के लिये 'तुंग-तेल' की जगह कमल-बीज के तेल के उपयोग की खोज है। तुंग तेल चीन से मँगाया जाता है और काफी महँगा पड़ता है।

बैल गाड़ियों के पहिये

अब बैल-गाड़ियों के प्रश्न को लीजिये! ये सड़कों को बहुत खराब करती हैं। किन्तु इनका चलन वर्जित भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि सारे देश में लगभग ८०-लाख बैल गाड़ियाँ हैं, और उनकी परिवहन सामर्थ्य सारी रेल-गाड़ियों की सामर्थ्य की लगभग आधी बैठेगी। ऐसी स्थिति में, इन गाड़ियों के पहियों में सुधार करने की आवश्यकता है, और केंद्रीय सड़क-गवेषणा-शाला इस विषय में वैज्ञानिक ढंग पर जाँच-पड़ताल कर रही है।

राष्ट्रीय गवेषणा का काम करने वालों के सामने एक और समस्या बेकार जाने वाली चीजों का सदुपयोग कर सकने की है। सामान्यतः भारत प्रति वर्ष ४०० लाख टन अन्न पैदा करता है। किन्तु इसका लगभग १० प्रतिशत-यानी ४० लाख-टन अन्न प्रति वर्ष कीड़े, फफूंद, आदि लग जाने से तथा चूहों व अन्यपशु पक्षियों से नष्ट हो जाता है। जिस समय अन्न जमा किया जाता है, उस समय उसमें खराबी पैदा होने लगती है। मैसूर स्थित खाद्य-गवेषणा-शाला में इस विषय में छानबीन की गयी है, जिससे पता चला है कि पारे की वाष्प तथा अन्य चीजों का धुआँ देने से अन्न काफी अरसे तक सुरक्षित रखा जा सकता है। अब बोरियों को भी किसी रासायनिक द्रव्य से सिक्त करने के विषय में विचार किया जा रहा है; ताकि अन्न से भरी इन बोरियों से कीड़े-मकोड़े दूर रहें।

शक्ति के नये स्रोत

शक्ति के नये स्रोतों की भी खोज की जा रही है। एक ऐसा स्रोत वायु का है! जहाँ वायु तीव्र गति से बराबर चलती रहती है, वहाँ उसका उपयोग शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जा सकेगा! वायु-शक्ति का उपयोग कई देशों में, पानी को नीची सतहसे ऊँची सतह पर उठाने के लिए व्यापक रूप से किया जाता है।

मध्य-भारत और सौराष्ट्र में दो प्रयोग-केंद्र स्थापित किये जा रहे हैं, जहाँ इस विषय में पूरी जाँच की जायगी कि वायु-शक्ति को किस प्रकार से काम में लाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त नये प्रकार की मशीनें निकालने के सम्बन्ध में भी गवेषणा जारी है। इस सिलसिले में, 'फ्लैश स्टीम जेनरेटर' और 'मेटल डिजेक्टर' नाम की दो नयी तरह की मशीनें विकसित की गयी हैं! 'मेटल डिटेक्टर' एक विद्युत्कणीय यंत्र है, जिसे राष्ट्रीय भौतिक प्रयोग-शाला ने सीमा-शुल्क (कस्टम्स विभाग के लिए तैयार किया है। लुका-छिपाकर भारत में सोना लाने वालों को पकड़ने में इस यंत्र से सहायता मिलेगी। ऐसे दो यंत्र इन दिनों बन्दरगाहों में काम में लाये जा रहे हैं।

चमड़ा उद्योग केन्द्रीय गवेषणाशाला का उद्घाटन

केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने मद्रास में केन्द्रीय चमड़ा गवेषणा-शालाका उद्घाटन किया। अनुन्नत दशा में होने के बावजूद, चमड़ा कमाने के हमारे उद्योग ने १९५१-५२ में ५० करोड़ से अधिक मूल्य का चमड़ा या चमड़े का माल विदेशों को भेजा है, और इस उद्योग को सुव्यवस्थित बनाना ही उक्त गवेषणा-शाला का मुख्य उद्देश्य है।

कच्चे चमड़े व खालों को ठीक ढंग से कमाने और उनमें 'फिनिश' दे देने से उनका मूल्य लगभग दूना हो जाता है। भारत, काफी मात्रा में, विदेशों को खालें कच्चा चमड़ा तथा अधकमाया चमड़ा भेजता है। यदि इस व्यापार में उसे विदेशों के साथ सफलता पूर्वक प्रतियोगिता करनी है, तो उसे अपने चमड़े की किस्म सुधारनी होगी, क्योंकि चमड़ा कमाने के वैज्ञानिक तरीकों में विदेश हम से बहुत आगे बढ़े हुए हैं।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद पिछले कई वर्षों से इस दिशा में ध्यान देती आयी है। परिषद से प्रति वर्ष मिलने वाली ६०,००० रु० की आर्थिक सहायता से मद्रास विश्वविद्यालय के 'ए. सी. कालेज आफ टेक्नालोजी' ने चमड़ा प्रोद्योग के विषय में एक डिग्री-कोर्स चलाया है।

किन्तु फिर भी, एक केन्द्रीय संस्था के बिना गवेषणा का कार्य संतोष जनक रीति से कर सकना सम्भव नहीं था। इसीलिए उक्त गवेषणा शाला की स्थापना, कई हितों के योगदान से की जा रही है। यद्यपि गवेषणा-शाला का विधिवत् उद्घाटन अब किया जा रहा है, किन्तु अतीत में, प्रस्तुत विषय में काफी गवेषणा-कार्य हुआ है।

गवेषणा, प्रशिक्षण और चमड़ा उद्योग में टेक्निकल जानकारी का पूरा-पूरा प्रचार, इस शाला के मुख्य कार्य होंगे। समय-समय पर वैज्ञानिक तथा चमड़ा-उद्योग विषयक पत्रिकाओं में उपयोगी लेख छपाने की भी व्यवस्था होगी और बुलेटिनें भी निकाली जायंगी। प्रतिमास एक बुलेटिन निकालने का काम पहले से ही शुरू है। भारत के विभिन्न भागों से उद्योग की ओर से जो पूछताछ की जाती है, शाला की ओर से उन सबके उत्तर भेजने तथा इस प्रकार उद्योग की सहायता करने की व्यवस्था भी रहेगी।

विद्युत-रासायनिक गवेषणा शाला का उद्घाटन

रासायनिक प्रतिक्रियाओं से विद्युत शक्ति उत्पन्न हो सकती है और दूसरी ओर बिजली के उपयोग से रासायनिक परिवर्तन किये जा सकते हैं। इस दूसरे उपयोग में ही आज विद्युत-रसायन शास्त्र औद्योगिक प्रणालियों के लिये बहुत महत्वपूर्ण है।

सामान्यतः विद्युत-रासायनिक उद्योगों का बड़ा व्यापक क्षेत्र है और उसमें अलुमीनियम, मेग्नीशियम, जस्त, इलेक्ट्रोलाइटिकलेड, कास्टिक सोडा और क्लोरीन, केल्शियम कार्बाइड, रासायनिक खाद, एब्रेसिव्स, विशेष इस्पात, कार्बन और ग्रेफाइट की वस्तुएं आदि विभिन्न आधारभूत चीजें बनती हैं जो विमान, मोटर गाड़ियों, इंजन, रेल की सवारी गाड़ियों और मालगाड़ियों, खेती के यंत्रों, मशीनी औजारों, कागज आदि के कारखानों के लिये आधारभूत कच्चे माल का काम देती हैं।

जो वस्तुएं अन्य तरीकों से भी बन सकती हैं, उनके लिये भी विभिन्न कारणों से विद्युत-रासायनिक प्रणालियां ही उत्तम मानी जाती हैं। उदाहरण के लिये, बिजली की भट्टियां विशेष किस्म का इस्पात और धातुमिश्रित इस्पात बनाने के काम आती हैं और इस प्रकार धातुएँ गलाने के कोयले की बचत होती है। इसी तरह साधारण तरीके से जस्ता और तांबे को मिलाकर पीतल बनाते समय दोनों का ठीक अनुमान कायम नहीं रह पाता और विद्युत-रासायनिक प्रणाली का परिचय संतोषजनक रहता है।

कच्चे मालकी उपलब्धि

सस्ते दामोंपर बिजली की उपलब्धि पर विद्युत-रासायनिक उद्योगों की सफलता मुख्य रूप से निर्भर है। देश की बड़ी-बड़ी पनबिजली योजनाओं से निकट भविष्य में बिजली उपलब्ध होने की संभावना है और इस प्रकार के भारत में विद्युत रासायनिक उद्योगों के विकास का भविष्य भी उज्वल है। देश में कास्टिक सोडा और क्लोराइन, केल्शियम कार्बाइड और अन्य वस्तुओं, अलुमीनियम, बिजली से बना सच्चा लोहा, मेंगनीज, क्रोमियम और वेरीलियम सीरियम, लिथियम, जिर्कोनियम, थोरियम आदि दुलर्भ मिट्टी की धातुओं, लौह मिश्रित धातुओं जैसे फेरों-सिलिकन, फेरों-क्रोमियम, फेरों-मेंगनीज और विशेष इस्पात, मैग्नीशियम, नकली जवाहरात, रीफेक्टरीज और एब्रेसिव्स, ग्रेफाइट और कार्बन इलेक्ट्रोड्स, कार्बन बाइसल्फाइड, फास्फोरस और फास्फेटिक रासायनिक खाद, फ्लोराइन, आर्गेनो फ्लोराइन कम्पाउंड्स सिक्कों के लिये निकल मिश्रित धातुओं, पोटेशियम क्लोरेट, क्लोरोफार्म, परसाल्टस और पेरासिड्स जैसे विभिन्न रासायनिक उत्पादनों, बैटरियों, इलेक्ट्रो-प्लेटेड सामान, बिजली से शोधित धातुओं आदि के निर्माण के लिये पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है।

केन्द्रीय विद्युत-रसायनिक गवेषणाशाला वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा परिषद के अधीन नवीनतम शाला है। डा० अलगप्पा चेट्टियर ने इसके लिये १५ लाख रु० और ३०० एकड़ भूमि दी है। आधारशिला २५ जुलाई, १९४८ को प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा रखी गयी थी।

इस शाला में मुख्य मुख्य विषयों से सम्बन्धित विभाग बनाये गये हैं और उनके लिये अलग-अलग प्रयोग-शालाओं आदि की व्यवस्था की गयी है। एक कारखाना, एक भाषण शाला और एक सुन्दर पुस्तकालय भी बनाया गया है।

१९५२ में भारतीय उद्योगों की स्थिति

भारत के मुख्य-मुख्य उद्योगों के उत्पादन में १९५२ में वृद्धि हुई। इनमें कपड़ा, कोयला सीमेंट, कास्टिक सोडा, एमोनियम सल्फेट, लोहा और इस्पात, कागज, मद्यसार, प्लाइवुड, रीफ्रैक्टरीज, नमक, सिलाई की मशीन बाल बेयरिंग्स, बिजली के लैम्प, पावर ट्रांस्फार्मर्स और बिजली के मोटर उद्योग सम्मिलित हैं।

औद्योगिक उत्पादन का सूचक अंक (आधार वर्ष १९४६=१००) १९५२ के पहले १० महीने में औसतन १२७.०६ रहा जबकि १९५१ में यह ११७.२ था।

दिसम्बर १९५२ तक के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि इस वर्ष ३५६.२ लाख टन कोयले का उत्पादन हुआ जब कि १९५१ में ३४३ लाख टन कोयला निकाला गया था। इस प्रकार इस वर्ष नया रिकार्ड कायम हुआ है।

इस वर्ष कपड़ा उद्योगने अभूतपूर्व रिकार्ड कायम किया है। १९५१ में ४०,६६० लाख गज कपड़े और १३,०४० लाख पौंड सूतके उत्पादन के मुकाबिले में १९५२ में ४६,०८० लाख गज कपड़े और १४,४८० लाख पौंड सूत का उत्पादन हुआ।

जूट की वस्तुओं का उत्पादन भी ९,०६,२०० टन से बढ़कर १९५२ में ९,७८,००० टन हो गया।

सीमेंट का उत्पादन १९५१ में ३१,९५,६०० टन था जो १९५२ में ३५,१२,९७४ टन हो गया।

लोहे और इस्पात के उत्पादन में भी पिछले वर्ष के समान ही उत्पादन का उच्च स्तर कायम रखा गया। १९५२ का अनुमानित उत्पादन १०,८०,४५० टन है, जब कि १९५१ में यह संख्या १०,७६,००० टन थी।

कास्टिक सोडा का उत्पादन १९५१ में १४,७२४ टन हुआ था और १९५२ में १६,९४१ टन।

सिंदरी फर्टिलाइजर फैक्टरी खुल जाने के कारण अमोनियम सल्फेट के उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई। उत्पादन का परिमाण ९५१ के ५२७०५ टन से बढ़कर १९५२ में १,७७,१४५ टन होगया। मद्यसारका उत्पादन भी ५८,०६,००० गैलन से बढ़कर ८०,२२,२०२ गैलन हो गया।

१९५२ में १,३७,८६० टन कागज बनाया गया जब कि पिछले वर्ष १,३१,९१६ टन बनाया गया था। १९५१ में ६०६,४ लाख वर्ग फुट प्लाइवुड की चाय की पेटियां बनाई गयी थीं जबकि १९५२ में ७८०.७ लाख वर्ग फुट की बनायी गयीं। व्यापारिक उपयोग की प्लाइवुड का उत्पादन १०१.७ लाख वर्ग फुट से बढ़कर ११४.३ लाख वर्ग फुट हो गया।

इस वर्ष नमक उत्पादन का नया रिकार्ड कायम हुआ है। १९५२ में ८०४ लाख मन नमक बनाया गया जबकि १९५१ में ७४३ लाख मन बनाया गया था। इससे न केवल भारत नमक में आत्म भरित हो गया है वरन् १९५२ में ७२.४ लाख मन नमक का निर्यात करना भी सम्भव हो सका।

रीफ्रैक्टरीज का उत्पादन इस वर्ष २,४३,७९१ टन हुआ जबकि १९५१ में २,३७,६०० टन हुआ था। आलोच्य वर्ष में सिलाई की मशीनें भी अधिक संख्या में बनायी गयीं। १९५१ में ४४,४६० मशीनें बनी थीं जबकि १९५२ में ४८,९६२ मशीनें बनीं। साइकिलों के नये कारखाने खुल जाने के कारण १९५२ में १,९१,८२२ साइकिलें बनायी गयीं जो १९५१ की उत्पादन-संख्या से ७७,५४६ अधिक हैं।

इसी प्रकार बिजली के लैम्पों, पावर ट्रांस्फार्मरों और इलेक्ट्रिक मोटरों के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है।

निम्न तालिका में मुख्य-मुख्य उद्योगों के उत्पादन के सम्बन्ध में १९५१ और १९५२ के आनुपातिक आंकड़े दिये गये हैं:—

क्रम-संख्या उद्योग	यूनिट	उत्पादन १९५१	उत्पादन १९५२
१. सीमेंट	टन	३१,९५,६००	३५,१२,९७४
२. कास्टिक सोडा	टन	१४,७२४	१६,९४१

क्रम-संख्या उद्योग	यूनिट	उत्पादन १६५१	१६५२
३. कोयला	टन	३,४३,०८,०८	३,५६,२३,७३३
४. लोहा और इस्पात	टन	१०,७६,०००	१०,८०,४४०
५. कागज	टन	१,३१,६१६	१,३७,८६०
६. मद्यसार	गैलन	५८,०६,०००	८०,२२,२०२
७. चाय की पेटियाँ (प्लाई वुड)	वर्ग फुट	६,०६,४८,०००	७,८०,७६,७४१
८. व्यापारिक उपयोग में आने वाली प्लाई वुड	वर्ग फुट	१,०१,७६,०००	१,१४,३१,५२३
६. रिफ्रेक्टरीज़	टन	२,३७,६००	२,४३,७६६
१०. नमक	हजार मनों में	७४,३७६	८०,४६८
११. सूत (मशीनी)	हजार पौंड में	१३,०४,४००	१४,३५,६६३
१२. कपड़ा (मशीनी)	हजार गजों में	४०,६६,४००	४५,६६,०००
१३. रबड़के जूते	संख्या	२,३०,४०,०००	२,३४,२३,८१५
१४. रबड़ चढ़ा सामान	संख्या	१,१०,००,०००	१ ४५,६१,६३६
१५. सिलाई उद्योग	५० गुर्स के डिब्बों की पेटियाँ	५,७७,२००	६,०४,३६५
१७. सरेस उद्योग	हंडरवेट	१४,११२	१४,१८२
१७. रेयन धागा	टन	२,०८८	३ ५१८
१८. रेडियो सेट	संख्या	६८,१००	७५,४६४
१६. सीसा	टन	८५६	१ १२६
२०. चक्की के पाट	पौंड	७,८८,०००	८,५६,२६६
२१. इन्स्यूलेटर्स	संख्या	६,४४,८०० एच टी १४,३२,८०० एल टी	३,१३,५०६ एच टी ३०,७२,०७३ एल टी
२२. पत्थर के बर्तन	टन	३०,०००	३३,४४६
२३. साबुन	टन	८३,४३६	८५,४१४
२४. मशीनों की ढिबरियां	गुर्स	१,२७,२००	१,५०,४७७
२५. सिलाई की मशीनें	संख्या	४४,४६०	४८,६६२
२६. लकड़ी की ढिबरियां	गुर्स	७,६६,८००	१५,०१,७२१
२७. बाइसिकल	संख्या	१,१४,२७६	१,६१,८२२
२८. बाल बेयरिंग	संख्या	२,३४,०००	३,८६,२७२
२६. बिजली के लैम्प	संख्या	१,५५,१६,०००	२,०७,१६,२७४
३०. पावर ट्रांस्फर्मर्स	किलोवाट	१,६४,०००	२,०६,४६४
३१. बिजली के मोटर	हार्स पावर्स	१,४२,०००	१,५८,८००
३२. पट्टे	टन	६७३	६६८
३३. अस्बेस्टस सीमेंट	टन	८१,६००	८६,८३७
३४. एब्रेसिव्स (रेगमार आदि)	रीम	३७,२००	४५,१८८
३५. अमोनियम सल्फेट	टन	५२,७०५	१,७७,६४५

मशीनी औज़ारों तरल क्लौरीन, कापर सल्फेट, रोगनों, अलुमीनियम, कताई की मशीनों के ढाँचों, आयल प्रेशर लैम्पों, बिजली के पंखों आदि के कुछ उद्योगों का उत्पादन-स्तर प्रायः १६५३ के उत्पादन के आस-पास ही रहा।

१६५२ के शुरू के महीनों से बाज़ार का रूख विक्रेताओं के हाथ से निकल कर खरीदारों के हाथ में आ जाने और उसके कारण कीमतों में कमी हो जाने के दृष्टि कोण से उत्पादन की वह स्थिति अत्यन्त प्रशंसनीय है। क्रय-शक्ति कम थी और कीमतें कम होने पर भी मांग कम हो रही थी और इससे बहुत से लोग मंदे की आशंका करने लगे थे।

मांग में कमी होने के कारण कुछ उद्योगोंके उत्पादन में कमी भी हुई। ये उद्योग हैं गंधक सुपरफास्फेट, डीजल इंजन, मोटर गाड़ियाँ, ब्लीचिंग पाउडर, बाइक्रोमेट् सुरमा, ताला, लालटेन, सिगरेट, शक्ति चालित पम्प, सूखी बैटरी, रबर युक्त तारें, कंड्यू इट पाइप और रेज़र ब्लेड।

यद्यपि मोटर गाड़ियों के टायरों और ट्यूबों के उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा लेकिन साइकिलों के नये कारखानों खुल जाने के कारण साइकिल टायरो का उत्पादन ३६.४ लाख से बढ़कर ४१.६ लाख हो गया।

सोडा ऐशका उत्पादन ४७.५३२ टन से कम हो कर ४३.६४ टन और सल्फ्यूरिक एसिडका १.७७.६३२ टन से घट कर ६३.०२२ टन रह गया। ट्विस्ट ड्रिलोंका उत्पादन अपेक्षाकृत कम हुआ।

किन्तु जिन उद्योगों में उत्पादन कम हुआ, उनके उत्पादनों का देश में प्राप्त स्टाक होने के कारण उन को साधारणतया कोई कठिनाई नहीं हुई।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—*विज्ञान प्रवेशिका, भाग १*—विज्ञान की प्रारम्भिक बातों की उत्तम पुस्तक—ले० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम, एस, सी; ।=)

२—*चुम्बक*—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी; मू० ।।।=)

३—*मनोरंजन रसायन*—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी; २)

४—*सूर्य सिद्धान्त*—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सब से सुलभ उपाय—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; छः भाग मूल्य ८)। इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—*वैज्ञानिक परिमाण*—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; १)

६—*समीकरण मीमांसा*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—*निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपालकृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी; ।।।)

८—*बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित*—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले०—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—*वर्षा और वनस्पति*—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—*सुवर्णकारी*—ले० श्री० गंगाशंकर पचौली; ।=)

११—*विज्ञान का रजत जयन्ती अंक*—विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का ईतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह १)

१२—*व्यङ्ग-चित्रण*—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम ए०; १७५ पृ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द २)

१३—*मिट्टी के बरतन*—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द २) (अप्राप्य)

१४—*वायुमंडल*—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले०—डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द, २)

१५—*लकड़ी पर पालिश*—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का ब्योरेवार वर्णन। ले०-डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन-भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; ५) (अप्राप्य)

१६—*कलम पेवंद*—लेखक श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी, सजिल्द; २)

१७—*जिल्दसाजी*—इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम ए० सजिल्द, २)

१८—*तैरना*—तैरना सीखने की रीति अच्छी तरह समझाई गई है। ले०—डा० गोरखप्रसाद, मूल्य १)

१९—*सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग*—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जन्तुओं के विचित्र संसार, पेड़ों पौधों की अचरज-भरी दुनिया सूर्य, चन्द्र, और तारों की जीवन-कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। सजिल्द मूल्य ६) (अप्राप्य)

२०—*वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ*—ले०—डा० संतप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२१—*खाद्य और स्वास्थ्य*—ले०—डा०—ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२२—*फोटोग्राफी*—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), फोटोग्राफी सिद्धान्त और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, सजिल्द मूल्य ४)

२३—*फल संरक्षण*—फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार, चटनी, सिरका, आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी० कृषि-विशारद, सजिल्द मूल्य २।)

२४—*शिशु पालन*—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई। गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल, शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार-विहार आदि का वैज्ञानिक विवेचन। मूल्य ४)

२५—*मधुमक्खी पालन*—द्वितीय संस्करण। ले०—पंडित दयाराम जुगड़ान; क्रियात्मक और व्यौरेवार; मधुमक्खी पालकों या जन-साधारण को इस पुस्तक का अधिकाँश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा, मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। २८५ पृष्ठ; अनेक चित्र, सजिल्द; ३)

२६—*घरेलू डाक्टर*—लेखक और सम्पादक-डाक्टर जी, घोष, एम० बी० बी० एस, डी० टी० एम०, प्रोफेसर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। १५० चित्र, सजिल्द, ४)

२७—*उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर*—संपादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। मूल्य ३।।)

नवीन पुस्तकें

२८—*फसल के शत्रु*—लेखक श्री शंकर राव जोशी मू० ३।)

२९—*साँपों की दुनिया*—ले० श्री रामेश वेदी मू० ४)

३०—*पोर्सलीन उद्योग*—ले० प्रो० हीरेन्द नाथ बोस मू० ।।।)

३१—*राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ*—मू० २)

३२—*गर्भस्थ शिशु की कहानी*—ले० मारग्रेट शी गिल्बर्ट (अनु० प्रो० नरेन्द्र) मू० २।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखीपुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—*साबुन-विज्ञान*—विद्यार्थियों और व्यवसाइयों के लिये एक सरल और सुबोध पुस्तक, जिनमें साबुन तैयार करने की विभिन्न विधियाँ और नाना प्रकार के साबुन तैयार करने की रीतियां हैं, विवरण के साथ-साथ सैकड़ों के साथ-साथ अनुभूत और प्रमाणित नुसखे भी दिये गये हैं। लेखक श्री श्याम नारायण कपूर बी० एस-सी, ए० एच० बी० टी० आई०, फेलो, आयल टेकनोलोजिस्ट एसोसिएशन मूल्य ६)

२—*भारतीय वैज्ञानिक*—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियां—ले०—श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ६८० पृष्ठ, सजिल्द; मूल्य ३)

३—*वैक्युमब्रेक*—ले०—श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राईवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २)

४—*यांत्रिक चित्रकारी*—ले० ओंकारनाथ शर्मा, मूल्य २।।)

५—*विज्ञान के महारथी*—लेखक श्री जगपति चतुर्वेदी। संसार भर के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के जीवन व खोजपूर्ण कार्यों का विस्तृत वर्णन है। मूल्य २)

६—*पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ*—ले० श्री जगपति चतुर्वेदी। जितने प्रमुख भौगोलिक अन्वेषण हुए हैं उन सबका रोचक वर्णन है। मूल्य १।।)

७—*विज्ञान जगत की झाँकी*—ले० प्रो० नारायण सिंह परिहार। सामान्य ज्ञान तथा विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। मूल्य २)

८—*खोज के पथ पर*—ले० श्री शुकदेव दुबे—जान को हथेली पर रखकर दुर्गम स्थानों एवं पर्वतों के खोज करने वालों का रोमांचकारी वर्णन। मूल्य ।।)

पता—विज्ञान परिषद, प्रयाग

साँपों की दुनियाँ

लेखक—श्री० रमेश वेदी आयुर्वेदालंकार

"साँपों की दुनियाँ" श्री रमेश वेदी द्वारा रचित सर्पविज्ञान सम्बन्धी एक मौलिक रचना है। सापों का रहन-सहन, भोजन आदतें, आकस्मिक आक्रमण से बचाव सर्प-विप के प्रकार, उसका मनुष्य एवं अन्य प्राणियों पर प्रभाव, सर्पविष चिकित्सा आदि विषयों पर लेखक ने अभी तक किये गये प्रयोगों एवं अनुसंधानों का सरल भाषा में सारांश दिया है।

भारतवर्ष में बहुतायत से पाये जाने वाले विषहीन एवं विषैले सापों का विस्तृत एवं सचित्र वर्णन भी दिया है तथा प्रत्येक जाति के सांप की शरीर-रचना, उसकी आदतें, रहन-सहन, भोजन, मनोविज्ञान इत्यादि का सुन्दर चित्र खींचा है। लेखक की भाषा रोचक है, और शैली सुन्दर। हमारे पूर्वजों का सर्प सम्बन्धी ज्ञान, प्राचीन संस्कृत साहित्य में विभिन्न जाति के सर्पों का उल्लेख, सर्पों का वर्गीकरण विषैले एवं निर्विष साँपों की पहिचान, साँपों के विष-दन्त एवं विष ग्रन्थियों की रचना, सर्प-विष का मनुष्य और दूसरे प्राणियों पर प्रभाव, सर्प-विष चिकित्सा और सापों की आर्थिक उपयोगिता इत्यादि पर लेखक ने विस्तृत प्रकाश डाला है।

"सापों की दुनियाँ" साँपों से सम्बन्धित वैज्ञानिक अनुसन्धान, अवैज्ञानिक किम्वदन्तियाँ एवं अन्ध विश्वास, प्राचीन साहित्य में सापों का उल्लेख एवं तत्सम्बन्धी ज्ञान का निचोड़ है।
मूल्य ४)

फसल के शत्रु

लेखक—श्री० शंकरराव जोशी

बहुत से कीट मानव-समाज का अहित करते हैं, कुछ कीट इन कीटों का ही संहार कर डालते हैं तथा कुछ कीट अन्य रूप से मनुष्य का हित करते हैं। सिद्धहस्त और अनुभवी लेखक ने इस पुस्तक में उन कीटों का वर्णन किया है जो फसलों को विशेष हानि पहुँचाते हैं। वैज्ञानिक कृषि तथा व्यापारिक प्रतियोगिता के इस युग में इन जंतुओं के करतब का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य ही है। फसलें बो लेना और प्रति एक पैदावार बढ़ा लेना मात्र ही कृषि व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर लेना नहीं माना जा सकता। खेत में खड़ी फसलों और बीचे के पौधों की शत्रु से रक्षा करना तथा गोदाम में रक्खी गई पैदावार को कीड़ों और रोगों से बचा लेना भी आवश्यक है।

इस पुस्तक में फसलों, लकी, कोठरों में भरे नाज, सा, तरकारी आदि सभी वस्तुओं की इन शत्रुओं से सुलभ साधनों द्वारा प्रभावोत्पादक रूप से रक्षा पा लेने की विधिय तथा उन शत्रु रूपी कीटों तथा रोगों की पूरी पहचान भी दी गई है। डल फुलसकेप सोलहपेजी आकार के लगभग ३५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ३॥)

पता—विज्ञान परिषद्, बैंक रोड, इलाहाबाद

Reg. NO. 372

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी

सभ्य

२३—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२४—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम

सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद् बैंक रोड, इलाहाबाद